जातकभूषणम्

(प्रणवरचना हिन्दीव्याख्या संस्कृतटीकयाचोपेतम्)

मूल लेखक

आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय'

व्याख्याकार

डॉ॰ सुरेश चन्द्र मिश्र

ज्योतिषाचार्य, एम॰ ए॰, पी-एच॰डी॰

रंजन पब्लिकेशन्स

16, अन्सारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

।। विषयावतारः ।।

1. राशिशीलाध्यायः 9-35
मंगलाचरण, राशिपर्याय, शीर्षोदयादि विभाग, वर्गोत्तम नवांश, प्रकृति, वर्ण, दिशा, चतुष्पदादि संज्ञा, दिग्बल, राशि की बलवत्ता, उच्च-नीच विचार, मूलत्रिकोण, सप्तवर्ग, होरादिसाधन, केन्द्रादि संज्ञा, पीड़ा स्थान।

2. ग्रहशीलाध्यायः 36-66
कालपुरुष, ग्रह पर्याय, आत्मादि विभाग, शुभ-पाप निर्णय, पूर्णचन्द्र-विवेक, प्रकृति विभाग, काल व वर्ण, अधिदेव व दिशा, ग्रहों की ऋतुरस-धात्वादि विवेक, दिग्बल दृष्टि, ग्रहमैत्री, मारकेश विचार, ग्रह-भाव कारक, कारक वर्ष, ग्रहों की परस्पर बाधकता।

3. तनुभावाध्यायः 67-87
ग्रहकारकत्व, लग्न के शुभयोग, शरीर विचार, अधिक पसीने के योग, क्रोधी व वामन योग, हास्यप्रियता, बन्धु कलह, गंजापन।

4. धनभावाध्यायः 88-105
धनी योग, महाधनी योग, निर्धन योग, धन-नाश, सुन्दर नेत्र योग, जन्मान्धादि योग, काण योग, अश्रुपात, मुख दुर्गन्ध योग।

5. सहजभावाध्यायः 106-112
भ्रातृसुख, भ्रातृनाश योग, पराक्रमी व दास योग, भुजा कष्ट योग।

6. सुखभावाध्यायः 113-130
सुख विचार, दुःखी योग, अधीरता योग, माता की दीर्घायु, मातृ कष्ट-योग, वाहन योग, विविध वाहन, वाहन हानि, हृदय रोग, मकान कोठी के योग, अकस्मात् गृह प्राप्ति, गृह नाश।

7. सुतभावाध्यायः 131-149
पुत्रप्राप्ति योग, सन्तान कारक ग्रह, अन्य योग, पाँच पुत्र योग, एक पुत्र योग, पुत्रहीन योग, सन्तानोत्पत्ति में विलम्ब व निराकरण, जार-जात योग, पुत्रनाश, वंश विच्छेद योग, विद्या बुद्धि विचार।

8. **रोगभावाध्यायः** **150-171**
सामान्य रोग योग, वात रोग, पित्त कफादि रोग, गम्भीर रोग योग, दन्त रोग, मुख रोग, दाद होने का योग, प्लीहा रोग, श्वेत कुष्ठ रोग, रक्त कुष्ठ, गण्ड रोग, ग्रहों के व्रण स्थान, शत्रुविनाशादि योग।

9. **जायाभावाध्यायः** **172-190**
विवाह होने का योग, शीघ्र विवाह, विवाह संख्या, बहुपत्नी योग, स्त्री विनाश योग, स्त्री हानि संख्या, बाँझ पत्नी, पत्नीहीन योग, अल्पकाम शक्ति, कामेच्छा विचार, गुदगामी या व्यभिचारी योग, नपुंसक योग।

10. **आयुर्भावाध्यायः** **191-214**
आयु विचार के उपकरण, दीर्घायुर्योग, मध्याल्पायुर्योग, हीनायुर्योग, बीस वर्ष से सौ वर्ष की आयु के योग, पूर्णायुर्योग, दशायु व मृत्यु कारण, युद्ध विजयी योग, अण्डवृद्धि।

11. **भाग्यभावाध्यायः** **215-221**
भाग्योदय योग, भ्रातृ धन से भाग्योदय, भाग्य विचार, पुण्यवान् योग।

12. **कर्मभावाध्यायः** **222-242**
राजाधिराज योग, राजयोग कथन, राजतुल्य योग, भूमिपति योग, राजकुलोत्पन्न राजयोग, राजपूज्य योग, सिंहासन प्राप्ति, पिता का विविध विचार, जीविका, ग्रहों की वृत्ति, चिन्तादि ज्ञान।

13. **लाभभावाध्यायः** **243-248**
बहुलाभ योग, धन लाभ, जंघा विचार, विविध लाभ योग विचार।

14. **व्ययभावाध्यायः** **249-255**
शुभाशुभ व्यय, धन हानि व ऋणी योग, ऋणदाता व दानी योग, लंगड़ापन, बन्धन योग।

15. **भावसारांशाध्यायः** **256-265**
भाव विचार की पद्धति, भाव फल का स्पष्टीकरण, वर्ग से शुभाशुभ निर्णय, भाव व भावेश बल से शुभाशुभत्व, त्रिकगत ग्रह।

16. प्रकीर्णविषयाध्यायः 266-302
कारकांश लग्न विचार, जपध्यान समाधि योग, स्त्री नाश व सन्यास योग, दयालु प्रवृति योग, कुटुम्ब विषयक योग, सर्प जलाग्नि भय, जन्म समय, माता पिता मरण योग, भाई की सम्पत्ति लाभ के योग, अहंकारी, इंगित कुशल व मानी योग, व्यक्तित्त्व विषयक योग, कुनखी अस्थिभंग योग, गुप्त रोगी व भिक्षावृत्ति योग, मूत्रकृच्छ्रादि रोग योग, नीच वृत्ति (जीविका) योग, स्त्री भ्रातृहीनता, उपसंहार।

दो शब्द

जातकभूषणनामा, मुकुन्दकृतीनामनर्ध्यः सुमणिः।
भ्राजेत् लोकहृदये, सुरेशकृतप्रणवरचनाप्रोतः।।

प्रस्तुत ग्रन्थ श्री मुकुन्द दैवज्ञ पर्वतीय के प्रकाशित विशिष्ट ग्रन्थों में अभिनव मौक्तिक है। परम्परागत शैली में जातक शास्त्र की भाव विचार शाखा पर सुन्दर सारसंक्षेप यहाँ मिलेगा।

भावफल विचार की श्रेष्ठ व सर्वमान्य पद्धतियों का युक्तियुक्त प्रस्तुतिकरण, ग्रन्थकार ने जिस प्रकार **'भावमंजरी'** में किया था, तद्वत् यहाँ भावों के विभिन्न योगायोगविचार पर विशेष बलाधान किया गया है।

सोलह अध्यायों व 314 स्वरचित श्लोकों में ग्रन्थकार ने प्रायः अवश्य पठनीय एवं कार्यसाधक विषय को प्रस्तुत कर दिया है। बारह अध्यायों में द्वादश भावफल व उनके योग तथा शेष चार अध्यायों में ग्रहराशिशील, भावसारांश एवं बहुत से प्रकीर्ण आवश्यक विषयों का संकलन भी किया है।

अतः मानसागरी, **जातकालंकार, सर्वार्थचिन्तामणि, लघुजातक, चमत्कार-चिन्तामणि** तथा खेटकौतुक आदि के समक्ष प्रस्तुत **'जातकभूषण'** बीच के एक रास्ते का इंगित विधान सा करता प्रतीत होता है। सच कहूँ तो ग्रन्थकार की यह 'मज्झिमा पग्गविधा' आपको खूब भाएगी।

प्रस्तुत प्रणवरचना हिन्दी व्याख्योपेत यही संस्करण इसकी सर्वप्रथम प्रस्तुति है। इसे ग्रन्थकार द्वारा स्वयं लिपिबद्ध एवं श्लोकबद्ध पाण्डुलिपि के आधार पर इसके सम्पूर्ण मौलिक रूप की सुरक्षा करते हुए प्रकाशित किया गया है। अतः निःसन्देह इस विस्तृत व्याख्या संस्करण को प्रस्तुत करने में स्वयं ग्रन्थकार ही उत्तमर्णता के भागी हैं। हम तो द्वारशाखावत् मध्यस्थ मात्र हैं।

सभी आनुषंगिक विषयों से सम्पृक्त प्रणवरचना हिन्दी व्याख्या के माध्यम से पाठकों का यत्किंचित् मार्गदर्शन हो सका तो हमारा परिश्रम अन्वितार्थक हो जाएगा।

अज्ञान या प्रमाद के कारण रह गई भूलों को विज्ञजन क्षमा करेंगे।

वि.सं. 2047 आषाढ़ शु. 2
(रथयात्रा)

सुरेशचन्द्र मिश्र
21/4732, दयानन्द मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली

।। श्रीः ।।

नमस्तस्मै गणेशाय सूक्ष्मदर्शनशालिने।
यत्कृपा तनुते शश्वद् अमन्दानन्दसंहतिम्।। 1।।

तमः सन्दोहमाहृत्य प्रशस्तामर्थपद्धतिम्।
प्रकाशयन्तं तं नित्यं, वन्देऽहं गुरुमव्ययम्।। 2।।

विविधभूषणभूतिविभूषितां
　　विधुविभामृतसेकसभाजिताम्।
धवलपंकजमध्यगतां वरां
　　तव नमामि मृतीश! तनोर्विभाम्।। 3।।

श्रीमन्मुकुन्दविबुधेन कृते निबन्धे,
　　गूढार्थज्ञापनपरामविगूढशब्दाम्।
रम्यां प्रणव्यरचनामिह मिश्रलक्ष्मा,
　　व्याख्यां धिया वितनुते हि सुरेशचन्द्रः।। 4।।

सा जयति परा वाणी, मूलं सकलवाङ्मयप्रपञ्चस्य।
चतुर्दशत्वमवाप्ता, प्राप्ता स्यान्मे हृदयविवरे।। 5।।

जातकभूषण संज्ञे, प्रथते व्याख्यां सुरेशमिश्रोऽयम्।
प्राचामाचार्याणां, वचनसार आहृतो यस्मिन्।। 6।।

एक दृष्टि में

ग्रह राशि शील विवेचन।

द्वादश भावों का विविध विचार।

पृथक् पृथक् भाव के योगों का वैशिष्ट्य।

ग्रहों का संक्षिप्त भाव फल।

ग्रह एक-दूसरे के प्रभाव को काटते हैं।

भाव फल विचार की सर्वमान्य व संगत पद्धति।

बहुत से प्रकीर्ण विषयों का संकलन।

शुभ पाप ग्रह व राशि का तार्किक निर्णय।

मान्य फलित ग्रन्थों का सार संक्षेप।

प्रामाणिक व मौलिक अभिनव ग्रन्थ।

सोलह अध्याय: 314 श्लोक: कमनीय सारांश।

पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय।

अभिनव ग्रन्थ: रमणीय प्रस्तुति

[१]

राशिशीलाध्यायः

मंगलाचरण :

नत्वा पादयुगं सरोरुहनिभं संसेवितं देवता-
संघैर्योगिजनैरतीव कुशलैः श्रीकृष्णचन्द्रस्य तत् ।
आलोक्याखिलजातकं मुनिवरैर्यत्प्राक्तनैः कीर्त्तितं
कुर्व्वे 'जातकभूषणं' बुधजनप्रीत्यै 'मुकुन्दद्विजः' ॥१॥

नत्वेति । अहं मुकुन्दद्विजः जातकभूषणं कुर्व्वे = विदध इति। कथं भूतं यत्प्राक्तनैः = पुराणैः, मुनिवरैः = मुनिमुख्यैः, अखिल जातकं न खिलमखिलं च तज्जातकं, कीर्त्तितम् = कथितम्, तत्सर्वमालोक्य = समीक्ष्य, किं कृत्वा, श्रीकृष्णचन्द्रस्य = श्री देवकया नन्दनस्य, पादयुगम् = चरणद्वयम्, किं भूतं, सरोरुहनिभम् = सरसः कासारस्य, रूहमुत्पन्नं तन्निभं, तत्सदृशम्' पुनः किं भूतं, देवता संघैः = देवताना-मिन्द्रादीनां संघाः समूहास्तैः संसेवितं सम्यक् सेवनीयमाराधनीयमित्यर्थः, पुनः किं भूतं, अतीव कुशलैः = अत्यन्तचतुरैः, योगिजनैः = योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, योग एषामस्तीति योगिनस्त एव जनास्तैरपि संसेवितम् तद् नत्वा = प्रणम्य, किमर्थं कस्मै प्रयोजनाय वा, बुधजनप्रीत्यै = बुधाः पण्डिताः, ते एव जना लोकास्तेषां प्रीत्यै मुदे इति ।

भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र के कमल सदृश चरणयुगल में, जिनकी सेवा अनेक देवतागण एवं चतुर योगिजन सदैव करते हैं, मैं ब्राह्मण मुकुन्द दैवज्ञ प्रणाम करके, विद्वानों की प्रसन्नता के लिए सम्पूर्ण मुनि-प्रोक्त प्राचीन जातकशास्त्र का अवलोकन कर प्रस्तुत 'जातक भूषण' नामक ग्रन्थ की रचना करता हूं ।

राशियों के विभिन्न नाम :

मेषः क्रियस्तुबुरतुम्बरविश्वबस्त-
छागाव्यजच्छगलकप्रथमादिमाद्याः ।

गोसौरभेयवृषगोरमणर्षभोक्ष—
गोपानुडुद्वृषभताबुरिगोकुलानि ॥२॥

मेष इति। मेषः, क्रियः, तुबुर, तुम्बरः, विश्वः, बस्तः, छागः, अविः, अजः, छगलकः, प्रथमः, आदिमः, आद्यः, एते मेषराशेः पर्य्याया ज्ञेयाः। गवेति। गौः सौरभेयः, वृषः, गोरमणः, ऋषभः, उक्षा, (उक्षन्), गोपः, अनड्वान्, (अनुडुह्), वृषभः, ताबुरिः गोकुलम् एते वृषराशेः पर्य्याया ज्ञेया इति।

मेष, क्रिय, तुबुर, तुम्बर, विश्व, बस्त, छाग, अवि, अज, छगलक प्रथम, आदिम, आद्य ये मेष राशि के पर्याय हैं।

गौ, सौरभेय, वृष, गोरमण, ऋषभ, ऊक्षन्, गोप, अनुडुह, वृषभ, ताबुरि, गोकुल ये वृषभ के पर्याय हैं।

द्वन्द्वो नृयुङ् मिथुनवैणिकयुग्मकाम-
जित्मा नृयुग्मयुगले यमयुग्युगानि।
कर्काटकः कटककर्कटकर्किकर्का-
जम्बालनीडकुलिरौ मभषोडशांघ्री ॥३॥

द्वन्द्व इति। द्वन्द्वः नृयुक्, मिथुनम्, वैणिकम्, युग्मम्, कामम्, जित्मः नृयुग्मम्, यमलम्, यमम् युक्, युगम् एते मिथुनस्य पर्यायाः। कर्काटक इति। कर्काटकः, कटकः, कर्कटः, कर्की (कर्किन्), कर्कः, जम्बालनीडः, कुलिरः, मभम्, षोडशांघ्रिः एते कर्कस्य पर्याया ज्ञेयाः।

द्वन्द्व, नृयुक्, मिथुन, वैणिक, युग्म, काम, जित्मा, नृयुग्म, युगल, यम, युक्, युग ये मिथुन राशि के पर्याय हैं।

कर्काटक, कटक, कर्कट, कर्किन्, कर्क, जम्बालनीड, कुलीर, मभ, षोडशांघ्रि ये कर्क के पर्याय हैं।

कण्ठीरवो मृगरिपुर्हरिसिंहलेय-
पञ्चास्यपञ्चनखकेसरिचित्रकायाः।
कन्याकुरङ्गनयनाप्रमदातरुण्यः
पाथोनषष्ठवनिता युवतिः कुमारी ॥४॥

कण्ठीरव इति। कण्ठीरवः, मृगरिपुः, हरिः सिंहः लेयः, पञ्चास्यः, पञ्चनखः, केसरी (केसरिन्), चित्रकायः एते सिंहस्य पर्य्याया ज्ञेयाः। कन्येति। कन्या, कुरङ्गनयना, प्रमदा, तरुणी, पाथोनः, षष्ठः, वनिता, युवतिः कुमारी एते कन्यायाः पर्य्याया ज्ञेयाः।

कण्ठीरव, मृगरिपु, हरि, लेय, सिंह, पंचास्य, पंचनख, केसरिन्, चित्रकाय ये सिंह राशि के पर्याय हैं।

कन्या, कुरंगनयना, प्रमदा, तरुणी, पाथोनं, षष्ठ, वनिता, युवती, कुमारी ये कन्या राशि के पर्याय हैं।

तौली तुलाधरतुलावणिजस्तुलाभृ-
ज्जूकोघटोधटगतिः पिचुसार्थवाहौ।
कौर्प्यालिवृश्चिकसरीसृपकौर्पिकीटाः
पुष्पन्धयो मधुकरोऽष्टमचञ्चरीकौ ॥५॥

तौलीति। तौली (तौलिन्), तुलाधरः, वणिक्, तुलाभृत्, जूकः, धटः, धटगतिः, पिचुः, सार्थवाहः एते तुलायाः पर्य्याया ज्ञेयाः। कौर्प्यः अलिः वृश्चिकः, सरीसृपः कौर्पिः, कीटः, पुष्पन्धयः, मधुकरः, अष्टमः, चञ्चरीकः एते वृश्चिकस्य पर्य्याया ज्ञेयाः।

तौली, तुलाधर, तुला, वणिक्, तुलाभृत्, जूक, धट, धटगति, पिचु, सार्थवाह ये तुला राशि के पर्याय हैं।

कौर्प्य, अलि, वृश्चिक, सरीसृप, कौर्पि, कीट, पुष्पन्धय, मधुकर, अष्टम, चंचरीक ये वृश्चिक राशि के पर्याय हैं।

कोदण्डकार्मुकधनुर्धरधन्विधन्व-
चापा धनुर्हयशरासनतौक्षितौक्षाः।
कुम्भीर एणमकराजिनयोनिनक्र-
णास्या मृगो मृगमुखो हरिणः कुरङ्गः ॥६॥

कोदण्डेति। कोदण्डम्, कार्मुकम् धनुर्धरः, धन्वी (धन्विन्), धन्वा (धन्वन्), चापः, धनुः (धनुस्), हयः शरासनम्, तौक्षी (तौक्षिन्), तौक्षः एते धनूराशेः पर्याया ज्ञेयाः। कुम्भीर इति। कुम्भीरः एणः मकरः, अजिनयोनिः नक्तः, एणास्यः, मृगः, मृगमुखः, हरिणः, कुरङ्गः एते मकरस्य पर्याया ज्ञेयाः।

कोदण्ड, कार्मुक, धनुर्धर, धन्विन्, धन्वा, चाप, धनु, हय, शरासन तौक्षिन्, तौक्ष ये धनु राशि के पर्याय हैं।

कुम्भीर, एण, मकर, अजिन योनि, नक्र, एणास्य, मृग, मृगमुख, हरिण आर कुरंग ये मकर राशि के पर्याय हैं।

कुम्भो घटो घटधरः कलशो मनोरुग्
हृद्रोगकुम्भधरतोयधराः कुटो बः ।
मीनानिमेषपृथुरोमविसारमत्स्याः
प्रोष्ठीत्थसिः शफरशल्किझषाण्डजान्त्याः ॥७॥

कुम्भ इति । कुम्भः, घटः, घटधरः कलशः, मनोरुक्, हृद्रोगः, कुम्भधरः तोयधरः, कुटः बः एते कुम्भस्य पर्याया ज्ञेयाः । मीनति । मीनः, अनिमेषः, पृथुरोमा (पृथुरोमन्), विसारः, मत्स्य, प्रोष्ठि (प्रोष्ठिन्) इत्थसि, शफरः, शल्की (शल्किन्) झषः, अण्डजः अन्त्यः एते मीनस्य पर्याया ज्ञेयाः ।

कुम्भ, घट, घटधर, कलश, मनोरूक्, हृद्रोग, कुम्भधर, तोयधर, कुट, ब ये कुम्भ राशि के पर्याय हैं।

मीन, अनिमेष, पृथुरोमा, विसार, मत्स्य, प्रोष्ठी, इत्थसि, शफर, शल्किन्, झष, अण्डज, अन्त्य ये मीन राशि के पर्याय हैं।

शीर्षोदय एवं दिनबली राशियों का विभाग :

कन्यातौल्यलिलेयकामकलशाः शीर्षोदया राशयः
स्युः पृष्ठोदयसंज्ञिता मकरगोकोदण्डकर्कक्रियाः ।
मीनःस्यादुभयोदयोऽश्व्यजनृयुक्कुम्भीरगोकर्किणो
रात्रौ वीर्य्ययुताः परे दिनबलाः कालस्य काद्याः क्रियात् ॥८॥

कन्येति । कन्यातौल्यलिलेयकामकलशाः = कन्या—तुला—वृश्चिक—सिंह—मिथुन—कुम्भ एते षड्राशयः शीर्षोदयाः स्युर्भवन्ति, शिरसोदयं यान्तीत्यर्थः। मकरगोकोदण्डकर्कक्रियाः = मकर—वृष—धनु—कर्क—मेषाः पृष्ठोदयसञ्ज्ञिताः सन्ति, पृष्ठेनोदयं यान्तीत्यर्थः। मीनस्तु उभयोदय उभयतः पृष्ठशीर्षाभ्यामुदयं यान्तीत्यर्थः।

अश्वीति । अश्व्यजनृयुक्कुम्भीरगोकर्किणः = धनु—मेष—मिथुन—मकर—वृष—कर्का एते षड्राशयो रात्रौ = निशि वीर्य्ययुता = बलिनो भवन्ति । परे = अन्ये पूर्वोक्तेभ्योऽवशिष्टाः—सिंह—कन्या—तुला—वृश्चिक—कुम्भ दिन-बलाः = दिवाबलिनो भवन्ति ।

कालस्येति । क्रियादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी । क्रियो मेषस्तमारभ्य द्वादशराशयः कालस्य कालपुरुषस्य काद्याः शीर्षाद्यवयवाः क्रमशो विचिन्त्या इति ।

कन्या, तुला, वृश्चिक, सिंह, मिथुन एवं कुम्भ ये ६ राशियां शीर्षोदय होती हैं।

मकर, वृषभ, धनु, कर्क, मेष ये पांच राशियां पृष्ठोदय होती हैं।

मीन राशि उभयोदय अर्थात् एक साथ ही शीर्षपृष्ठोदय है।

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु, मकर ये ६ राशियां रात्रिबली अर्थात् रात्रि में वलवान् होती हैं।

शेष राशियां(सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ) ये राशियां दिन बली होती हैं। मीन राशि उभय सम बली है।

मेष राशि से प्रारम्भ करके मीन पर्यन्त बारह राशियां काल-पुरुष के शीर्ष (सिर) आदि अंगों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

शीर्षोदय राशि से तात्पर्य है, जो राशि सिर की ओर से उदय होती हो। राशियों के जैसे आकार को वेध द्वारा प्राचीनों ने देखा था, तत्सदृश ही नाम राशि को दिया गया है। जैसे भेड़ के समान दिखने से मेष, बैल के समान दिखने से वृष इत्यादि।

शीर्षोदय राशि कहने का आशय यह है कि उक्त राशियों का सिर वाला भाग उदय क्षितिज पर प्रथम दृष्टिगोचर होता है।

इसी तरह पृष्ठोदय राशियां पृष्ठभाग से पिछले हिस्से से उदित होती हैं। मीन राशि का स्वरूप दो मछलियों वाला है। ये दोनों मछलियां एक-दूसरे से विपरीत दिशा में अपना मुख रखे हुए हैं। इसी कारण एक मछली का मुख जिस दिशा में रहता है, उसी दिशा में दूसरी मछली की पूंछ भी रहती है। उदय के समय एक साथ सिर व पूंछ दिखने से इसे उभयोदय अर्थात् सिर व पूंछ से एक साथ उदित होने वाली कहा है।

सभी पृष्ठोदय राशियां मिथुन सहित रात्रिबली एवं शीर्षोदय राशियां मिथुन रहित होने पर दिनबली भी होती हैं। मीन में दोनों गुण ही पाए जाते हैं। अतः पृथुयशा इसे सन्ध्या बली मानते हैं। हमारे विचार से मीन राशि सन्ध्या समय विशेष बली एवं दिन-रात में मध्यम बली होती है। पाराशर मत में उभयोदय राशि को सन्ध्या बली ही माना गया है। ग्रन्थकार इसे दिन बली कहते हैं।

मेषादि बारह राशियां काल पुरुष के क्रमशः सिर, मुख, छाती,

हृदय, पेट, कमर, बस्ति, लिंग, दोनों जांघ, घुटने, पिण्डली, पैर इन अंगों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

इन सब विषयों को कहने का प्रयोजन यह है कि प्रश्न विचार में शीर्षोदय कार्यसाधक, पृष्ठोदय कार्यनाशक हैं। दिन बली दिन में व रात्रि बली रात में शक्तियुक्त होती हैं। नष्टजातक, विविध प्रश्न आधानादि में इनका विचार किया जाता है।

चरस्थिरादि संज्ञा एवं वर्गोत्तम नवांश :

तौली कुलीरो हरिणः क्रियश्चराः
कौर्प्यो वृषः कुम्भधरो हरिः स्थिराः ।
द्व्यंगानि कन्यान्त्यधनुर्युगान्यथो
वर्गोत्तमाः स्वीयलवाः स्वराशिषु ॥६॥

तौलीति । तौली=तुला, कुलीरः=कर्कः हरिणः=मकरः क्रियः=मेषः एते चराः सन्ति । कौर्प्यः=वृश्चिकः, वृषः प्रसिद्धः, कुम्भधरः=कुम्भः, हरि=सिंहः एते स्थिराः सन्ति । कन्यान्त्यधनुर्युगानि=कन्या, मीन, धनु, मिथुनानि एतानि=द्विस्वभावाः सन्ति । प्रयोजनं च चरराशिषु जाताश्चरस्वभावाः, स्थिरेषु स्थिरस्वभावाः, द्विस्वभावेषु मिश्रस्वभावा भवन्ति ।

वर्गोत्तमा इति । स्वराशिषु=स्वे स्वे गृहेषु, स्वीयलवाः=स्वनवांशः, वर्गोत्तमाः सन्ति ।

मेष, कर्क, तुला, मकर ये चार राशियां चर; वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ स्थिर राशियां एवं मिथुन, कन्या, धनु, मीन द्विस्वभाव राशियां हैं।

अपनी राशि में अपना ही नवांश वर्गोत्तम नवांश कहलाता है।

यहां पाठकों की सुविधा हेतु श्लोकोक्त क्रम के स्थान पर राशि क्रम अपनाया गया है। इससे याद रखने में सुविधा रहती है। इन चर स्थिरादि संज्ञाओं का प्रयोजन व्यक्ति के स्वभाव, प्रश्न की प्रकृति आदि के निर्णय में निहित है। यथा स्थिर लग्न में यात्रा नहीं, चर में स्थिरता नहीं, स्थिर में स्थिर कार्यों की सिद्धि, चर में चर कार्यों की सिद्धि कही जाती है।

वर्गोत्तम नवांश क्रमशः चर राशियों में पहला, स्थिर राशियों में पांचवां एवं द्विस्वभाव राशियों में अन्तिम नवांश होता है। जिस राशि

में ग्रह हो, नवांश में भी उसी राशि में हो तो वर्गोत्तमी कहलाता है। इसका प्रयोग आयुर्निर्णय, भाग्यवत्ता एवं मुख्यता निर्णय में होगा। वर्गोत्तमी ग्रह की प्रदत्तायु को दुगुना कर दिया जाता है। वर्गोत्तम नवांश लग्न में जन्म होने पर जातक भाग्यवान् एवं मुखिया होता है। सत्याचार्य ने कहा है—

चरभवनेष्वाद्यंशाः स्थिरेषु मध्या द्विमूर्तिषु तथान्त्याः।
वर्गोत्तमाः प्रदिष्टाः तेष्विह जाताः कुले मुख्याः॥

यवनाचार्य भी वर्गोत्तम नवांश का विभाग इसी प्रकार मानते हैं।

प्रकृति-वर्ण-दिशा-समादि विभाग :

पित्ताभिधं पवनधातुसमौ कफस्त्रि-
र्मेषाद्भुजोद्भवविडंघ्रिभवद्विजेन्द्राः।
तद्वत्सुरेशहरितो भनिवासकाष्ठाः
क्रूरः शुभः क्रिग्रत ओजसमौ नृनार्य्यौ॥१०॥

पित्ताभिधमिति। पित्ताभिधं=पित्तं मायुरित्यर्थः, पवनधातुसमौ=वायु-त्रिदोषौ, कफः=श्लेष्मा। मेषमारभ्य मीनपर्यन्तं चतुष्कं कृत्वा त्रिरावृतं, भवति, एते राशयो ज्ञातव्याः। त्रिरिति सुजन्तमव्ययम्। अर्थान्मेषः पित्तं, वृषो वातः, मिथुनो धातुसमः कर्कः कफी, सिंहः पित्तं, कन्या वायुः, तुला धातुसमः, वृश्चिकः कफः, धनुः पित्तं, मकरो वायुः, कुम्भो धातुसमः, मीनः कफीति।

तथा च नीलकण्ठ

पित्तानिलौ धातुसमः कफश्च त्रिर्मेषतः सूरिभिरूहनीया' इति।

भुजोद्भवेति। भुजोद्भवः=क्षत्रियः, विड्=वैश्यः अंघ्रिभवः=शूद्रः, द्विजेन्द्र=ब्राह्मणः, एते द्वादशराशिषु त्रिरावृत्तिर्ज्ञातव्याः तद्यथा—मेषः क्षत्रियः, वृषो वैश्यः, मिथुनः शूद्रः कर्को ब्राह्मणः, सिंहः क्षत्रियः कन्या वैश्यः तुला शूद्रः, वृश्चिको ब्राह्मणः, धनुः क्षत्रियः, मकरो वैश्यः, कुम्भः शूद्रः, मीनो ब्राह्मण इति, एतेषां सर्वफलं राश्यनुसारतो राशिस्वरूपसदृशं फलं स्यादित्यर्थः।

तद्वदिति। तद्वत्=तेनैव प्रकारेण, सुरेशहरितः सुराणामीश इन्द्रस्तस्य हरिद् दिक् पूर्वा तामारभ्य चतसृषु दिक्षु क्रमेण भनिवासकाष्ठा भानां राशीनां निवासकाष्ठा निवासदिशो ज्ञेया इति।

क्रूर इति। क्रूर: शुभ: क्रियतो मेषमारभ्य द्वादशराशिषु यथाक्रमं क्रूरशुभसञ्ज्ञा:। तत्र मेष: क्रूर:, वृष: शुभ:, मिथुन: क्रूर:, कर्क: शुभ:, एवं सर्वेषां योजनीयम्। तेन विषमराशय: क्रूरसञ्ज्ञा:, समराशय: शुभसञ्ज्ञा:। प्रयोजनं च 'क्रूरेषूत्पन्ना: क्रूरस्वभावा:, शुभेषु सम्भवा: सौम्यस्वभावा भवन्तीति।

ओजसमाविति। ते मेषादयो राशयो यथाक्रममोजसमसञ्ज्ञा:। तत्र मेष ओज:, वृष: सम: मिथुन ओज: कर्क: सम:। एवं शेषेष्वपि। तेन विषमसंख्यका राशय ओजसञ्ज्ञा:, समसंख्याका राशय: समसञ्ज्ञा भवन्तीति। नृनार्याविति। त एव मेषादयो राशयो यथासंख्यं नृनारीसञ्ज्ञा ज्ञेया:। तेन मेषो नर: पुरुष:, वृषो नारी स्त्री, मिथुनो नर:, कर्क: स्त्री। एवं सर्वत्र। तेन षड् विषमराशय: पुरुषसञ्ज्ञा:, षट् समराशय: स्त्री संज्ञा: प्रयोजनं च नृभेषु सम्भवास्तेजस्विन:, वनिता गृहेषूत्पन्ना मृदवो भवन्तीति।

मेषादि क्रम से चार-चार राशियां क्रमश: पित्त, वात, त्रिदोष, कफ संज्ञक होती हैं। यहां तीन आवृत्तियां होंगीं।

इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्राह्मण ये मेषादि राशियों के क्रमश: वर्ण विभाग होंगे।

इसी प्रकार पूर्वदिशा से प्रारम्भ कर मेषादि चार राशियों की क्रमश: दिशाएं होती हैं।

पुनश्च मेषादि राशियां क्रमश: क्रूर, शुभ एवं पुरुष स्त्री अथवा विषम सम संज्ञक भी होती हैं।

प्रकृत विषय को स्पष्ट किया जा रहा है।

मेष, वृष, मिथुन, कर्क ये चार राशियां क्रमश: पित्त, वात, त्रिदोष एवं कफ संज्ञक हैं। इसी प्रकार सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक एवं धनु, मकर, कुम्भ, मीन ये राशियां भी क्रमश: उक्त पित्त, वात, त्रिदोष एवं कफ का प्रतिनिधित्व करती हैं।

इसी प्रकार मेष, सिंह, धनु, क्षत्रिय, वृष, कन्या, मकर, वैश्य, मिथुन, तुला, कुम्भ, शूद्र एवं कर्क, वृश्चिक, मीन, ब्राह्मण राशियां हैं।

इसी प्रकार मेष, सिंह धनु पूर्व में, वृष कन्या मकर दक्षिण में मिथुन, तुला, कुम्भ पश्चिम में एवं कर्क, वृश्चिक, मीन उत्तर में वास करती हैं।

मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, कुम्भ ये ६ राशियां विषम क्रूर एवं पुरुष संज्ञक तथा शेष राशियां सम, सौम्य एवं स्त्री संज्ञक हैं।

लग्न व चन्द्रादि की राशियों के आधार पर उक्त फल कहा जाता है। दिशा ज्ञान से नष्ट वस्तु की दिशा का ज्ञान होता है। कहा है—

'राशिभ्यः कालदिग्देशाः।'

(पृथुयशा)

चन्द्रवास का विचार भी इसी से होता है। क्रूर राशियों में उत्पन्न क्रूर एवं सौम्य में सौम्य स्वभाव वाले होते हैं। नर राशियों में तेजस्वी एवं स्त्री राशियों में मृदु होते हैं। सारावली में कहा गया है—

पुंराशिगैः शुभखगैर्धीराः संग्रामरक्षिणो बलिनः।
निश्चेष्टैः सुकठोराः क्रूराः मूर्खाश्च जायन्ते॥
युवती भवन स्थितेषु च मृदवः संग्रामभीरुकाः पुरुषाः।
जलकुसुमवस्त्रनिरताः सौम्याः कल्याः स्वजनहृष्टाः॥

(कल्याण वर्मा)

'बली ग्रह पुरुष राशि में हों तो मनुष्य धीर, सांग्रामिक, तेजस्वी होता है। कमजोर ग्रहों की स्थिति हों तो कठोर स्वभाव, क्रूर, मूर्ख होता है।

सम राशियों में मनुष्य मृदु, युद्धभीत, विलासप्रिय, सौम्य एवं स्वस्थ तथा अपने लोगों को चाहने वाला होता है।'

राशियों की चतुष्पदादि संज्ञा :

नक्राद्यचापपरभागवृषाजसिंहा-
स्तुर्य्यांघ्रयो जलचरौ समृगान्त्यभागौ।
कर्काण्डजावथ नरा हयपूर्वभाग—
स्त्रीकामतौलिकलशा इतरस्तु कीटः॥११॥

नक्राद्येति। नक्राद्यचापपरभागवृषाजसिंहा=मकरपूर्वार्द्ध, धनुः—परार्द्ध—वृष—मेष—सिंहाः, तुर्यांघ्रयः=पशवः, समृगान्त्यभागौ मृगस्य मकरस्यान्त्यभागेन परार्द्धेन सहितौ, कर्काण्डजौ=कर्क, मीनौ, जलचरौ ज्ञेयौ। अथानन्तर्य्यार्थे हयपूर्वभाग स्त्रीकामतौलिकलशाः=धनुः पूर्वार्द्ध—कन्या—मिथुन—तुला—कुम्भाः, नराः=मनुष्या राशयः सन्ति। इतरः=अन्यो वृश्चिक एव कीटोऽस्ति।

मकर राशि का पूर्वार्ध, धनु का परार्ध, वृष, मेष, सिंह ये राशियां चतुष्पद कहलाती हैं।

मकर का परार्ध, कर्क एवं मीन ये जलचर राशियां हैं। धनु का पूर्वार्ध, कन्या, मिथुन, तुला एवं कुम्भ ये द्विपद राशियां हैं। वृश्चिक राशि की कीट संज्ञा है।

राशियों की आकृति एवं स्वरूप के आधार पर उक्त निर्णय किया जाता है। वराहमिहिर ने 'स्वचराश्च सर्वे' कहकर अपने-अपने स्थानों में इनका वास माना है। जैसे वृष, मेष, सिंह ये लोक में चौपाए होते हैं। धनु का पिछला भाग घोड़े की आकृति वाला है और मकर राशि का पूर्वार्ध हिरण जैसा है। अतः इनकी भी चतुष्पद संज्ञा की है। मकर पूर्वार्ध, मीन एवं कर्क (केकड़ा) पानी में रहते हैं, अतः ये जलचर ही कही गई हैं।

वृश्चिक अर्थात् बिच्छू कीट (कीड़ा) है। अतः उसकी कीट संज्ञा हैं। शेष राशियां द्विपद राशियां हैं। अर्थात् वे मनुष्याकृति हैं।

यहां पाठकों को ध्यान में रखना चाहिए कि सम राशि स्त्री राशि एवं विषम राशि पुरुष राशि हैं। अतः फलित ग्रन्थों में प्रायः पुरुष या ओज शब्द से विषम राशि एवं नर, नृ या द्विपद शब्द से मनुष्याकृति राशियां गृहीत हैं।

घटमिथुनतुलाकन्याश्चापस्यार्धं मनुष्यसंज्ञाः स्युः ॥
पुं स्त्री संज्ञे भवतो राशीनामस्थिराचलद्विगुणाः ॥
(होरासारः १/११,१६)

राशियों का दिग्बल :

प्राचीं प्रयाता द्विपदास्तनूपगा-
स्तुर्य्यांघ्रिसञ्ज्ञा दिवि दक्षिणाश्रिताः ।
कीटाभिधः पाशि दिशि द्युनं गतो
बन्धौ वनोत्था बलवन्त उत्तरे ॥२१॥

प्राचीमिति। द्विपदाः=मनुष्यराशयः, प्राचीं=पूर्वां, प्रयाताः=गतास्तथा तनूपगाः=लग्नगता बलिनः=वीर्यवन्तो भवन्ति। तुर्य्यांघ्रिसंज्ञाः=चतुष्पदराशयः, दिवि=दशमस्थाने, तथा दक्षिणाश्रिताः=दक्षिणदिशं गताः, बलवन्तः=

बलिनो भवन्ति। कीटाभिधः=वृश्चिकः, पाशिदिशि, पश्चिमायां, तथा द्युनं= सप्तमं गतः=प्राप्तः सन् बलवान् भवति। वनोत्थाः=जलजाः (वनं जलं तस्मिन्नुत्था उत्पद्यन्ते ते) बन्धौ=चतुर्थभवने, उत्तरे=उत्तरदिशि च बलवन्तो भवन्तीति।

पूर्वोक्त मनुष्य राशियां पूर्व दिशा में बली होती हैं। साथ ही लग्न में बली होती हैं। चतुष्पद राशियां दशमस्थान या दक्षिण दिशा में बली होती हैं।

कीट राशि (वृश्चिक) पश्चिम दिशा या सप्तम स्थान में बली होती है। सभी जलचर राशियां चतुर्थ स्थान या उत्तर दिशा में बली होती हैं।

लग्न कुण्डली में लग्न भाव पूर्व दिशा, दशम दक्षिण, सप्तम पश्चिम एवं चतुर्थ उत्तर दिशा है। इन दिशाओं में क्रमशः मनुष्य, चतुष्पद, कीट एवं जलचर राशियां पूर्ण दिग्बल प्राप्त करती हैं। ऊपर संस्कृत टीका में भगवान् गार्गि के वचन द्वारा पुष्टि की गई है। यदि उक्त स्थानों से सप्तम में हो तो शून्य दिग्बल प्राप्त होता है। मध्य में होने पर अनुपात द्वारा राशियों का दिग्बल जानना चाहिए। इसकी विधि जातक पद्धति ग्रन्थों में बताई गई है।

राशियों की अन्य प्रकार से बलवत्ता :

यो राशिरीशेन निजेन दृष्ट-
युक्तो विदावाक्पतिनेक्षितः सः।
वेद्यो बली नो सहितेक्षितोऽन्यैः
स्वीयस्य शीलात्स्वफलं विशेद्यः॥१३॥

राशिर्नखेटेक्षितसंयुतः स
सन्सौम्ययुक्तेक्षित उग्रराशिः।
सद्रा शिरुग्रान्वितलोकितोऽसन्
केन्द्रादिगाः पूर्णसमोनवीर्य्याः॥१४॥

य इति। राशिरिति च। यो राशिर्निजेन=स्वकीयेन, ईशेन=स्वामिना, दृष्ट-युक्तः=ईक्षितः-सहितः, विदा=बुधेन, वाक्पतिना=बृहस्पतिना च, ईक्षितः=

दृष्टः, अन्यैः=शेषैर्ग्रहैरर्थात्स्वस्वामिबुधजीवातिरिक्तग्रहैः, नो, सहितेक्षितः=युक्त—दृष्टः, तदा स राशिर्बली=बलवान्, वेद्यः=ज्ञेयः।

स्वीयस्येति। यो राशिः खेटेक्षितसंयुतो ग्रहैर्दृष्टो युक्तश्च न भवति, स स्वीयस्य=निजस्य, शीलात्=स्वभावात्, स्वफलं=निजफलं, दिशेद्=यच्छेत्। सन्निति। य उग्रराशिः पापग्रहस्य राशिः सौम्ययुक्तेक्षितः शुभग्रहैरपापबुधपूर्णचन्द्रगुरुशुक्रैर्युक्तदृष्टश्चेत्स सन् शुभो भवति। सद्राशिरति। सतां शुभग्रहाणां, राशिर्यदि उग्रान्वितलोकितः पापग्रहैर्युक्तदृष्टो भवति, तदाऽसन्नशुभो ज्ञेयः।

केन्द्रेति। केन्द्रादिगाः केन्द्रमादौ येषां ते केन्द्रादयस्तत्रगता अर्थात्केन्द्रपणफरापोक्लिमगता राशयः क्रमेण पूर्णसमोनवीर्य्याः=पूर्णबलि—मध्यबलि—हीनबलिनो भवन्ति, अर्थात्केन्द्र (१,४,७,१०) गता राशयः पूर्णबलिनः पणफर (२,५,८,११) गता राशयो मध्यबलिन, आपोक्लिम (३,६,९,१२) गता राशयो हीनबलिनः स्युरित्यर्थः।

जिस राशि को उसका स्वामी देखता हो या जो राशि अपने स्वामी से युक्त हो अथवा जो राशि बुध एवं बृहस्पति से दृष्ट या युक्त हो तो उस राशि को बलवान् समझना चाहिए। लेकिन उक्त स्वामी, बुध, गुरु की दृष्टि या युति होने पर अन्य ग्रहों की दृष्टि या योग नहीं होना चाहिए। दृग्याग हीनराशि अपने स्वाभाविक फल को देती है।

यदि पापग्रह की राशि पर शुभग्रहों की दृष्टि या योग हो तो वह शुभ राशि मानी जाएगी।

जो शुभग्रहों की राशि पापग्रहों से युक्त या दृष्ट होगी वह राशि 'पाप' मानी जाएगी।

सभी राशियां केन्द्र में पूर्णवली, पणफर में मध्यवली एवं आपोक्लिम में अल्पवली होती हैं।

राशि के वल का ज्ञान करने हेतु इन बातों का ध्यान रखें—

(i) केवल अपने स्वामी या बुध गुरु से दृष्ट युक्त राशि बलवान् है।

(ii) शुभ ग्रहों से दृष्ट युक्त राशि बलवान् या शुभ एवं पाप दृष्टयुक्त राशि अशुभ या निर्बल है।

(iii) केन्द्रगत राशियां पूर्ण बली; पणफरगत मध्य वली, आपोक्लिमगत हीन बली होती हैं।

(iv) किसी की भी दृष्टि या युति से रहित राशि अपने स्वभावानुसार फल देती है। शुभराशि शुभ एवं पापग्रह की राशि पाप फल देती है।

साथ ही वराहमिहिर प्रोक्त दिवारात्रि बल का भी ध्यान रखना चाहिए। तदनुसार द्विपद राशियां दिन में, चतुष्पद राशियां रात्रि में एवं शेष जलचर कीट राशियां सन्ध्या समय में बलवान् हैं।

होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नान्यैश्च वीर्योत्कटा।
केन्द्रस्था द्विपदादयोऽह्नि निशि च प्राप्ते च सन्ध्याद्वये॥
(बृहज्जातक, राशिभेद)

यहां प्रसंगवश राशियों के आकार (परिमाण) के विषय में बताया जा रहा है। इस विषय में कई मत प्रचलित हैं। हमें सारावली का मत अधिक समुचित प्रतीत होता है। मनोरञ्जनार्थ प्रचलित मतों का विहगावलोकन करें—

(i) वराहमिहिर ने राशिभेद श्लोक १६ में जो कहा है तदनुसार ७.३० अंगुल पलभा वाले देश में राशियों के ये अंशात्मक मान अर्थात् उदय मान बताए हैं। मेष व मीन=२०, बृष कुम्भ=२४, मिथुन मकर=२८, कर्क धनु=३२, सिंह वृश्चिक=३६, कन्या तुला=४०। इसी मत को सत्याचार्य एवं वैद्यनाथ ने भी माना है—

चतुरुत्तरोत्तराः स्युर्विंशतिभागा भवन्ति मेषाद्ये।
मानमिहार्धे पूर्वे मीनाद्ये चोत्क्रमादपरे॥
(सत्याचार्य)

वास्तव में ये मान ७.३० पलभा वाले स्थानों के लिए सामान्य प्रयोगार्थ आचार्यों ने निर्दिष्ट किए हैं। लंकोदय मान में से ७.३० पलभा से साधित चरपल (७५, ६०, २५) को घटाने से व जोड़ने से उक्त मान प्राप्त होता है। इस मान को १० से भाग देने पर अंश प्राप्त हो जाते हैं। यह बात ब्रह्मगुप्त ने बताई है। स्वयं देखिए—

लंकोदय मान		चरखण्ड		७.३० पलभा सन्न देशोदय		अंशात्मक मान
२७८	—	७५	=	२०३÷१०	=	२० लगभग
२९९	—	६०	=	२३९÷१०	=	२४ "
३२३	—	२५	=	२९८÷१०	=	२८ "
३२३	+	२५	=	३४८÷१०	=	३२ "
२९९	+	६०	=	३५९÷१०	=	३६ "
२७८	+	७५	=	३५३÷१०	=	४० "

इसी कारण सत्याचार्य ने २० से आगे चार-चार जोड़कर उदय मान बताए हैं। लेकिन हमारे विचार से यह अत्यन्त स्थूल गणना है तथा केवल राशियों के ह्रस्वत्व व दीर्घत्व के निर्णय में उपयोगी होती है।

(ii) यवनाचार्य बिल्कुल निराली बात कहते हैं। मेष मीन राशियों का मान दो-दो मुहूर्त्त निश्चित होता है। एक मुहूर्त्त ४८ मिनट या २ घड़ी का होता है। अतः ४ घड़ी मान मेष व मीन का हुआ। इसी मान को क्रमशः ५, ६, ७, ८, ९, १० से गुणा करने पर अन्य राशियों के मान आते हैं। यहां भी परिणाम वराहमिहिर सदृश ही आएगा। विधि विलक्षण है।

तदनुसार मेष, वृष, कुम्भ, मीन ह्रस्व। मिथुन, कर्क, धनु, मकर, मध्यम। सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक दीर्घ राशियां हैं।

(iii) सारावलीकार ने इस द्रविण प्राणायम से पाठकों को बचाकर सरल मार्ग से यही बात कह दी है—

ह्रस्वास्तिमिगोजघटा मिथुनधनुर्ककिमृगमुखाश्च समाः।
वृश्चिककन्यामृगपतिवणिजो दीर्घाः समाख्याताः।।
एभिर्लग्नादिगतैः शीर्षप्रभृतीनि सर्वजन्तूनाम्।
सदृशानि च जायन्ते गगनचरैश्चैव तुल्यानि।।
(सारावली)

'मेष, वृष, कुम्भ, मीन ह्रस्व हैं, मिथुन धनु, कर्क, मकर सम अर्थात् मध्यम हैं। वृश्चिक, कन्या, सिंह, तुला दीर्घ हैं। जिस भाव में जैसी राशि हो तदनुसार ही जातक का वह अंग होता है।' वैद्यनाथ ने तो अध्याय १, श्लोक १३ में मीन को सम मान लिया है, जो युक्ति विरुद्ध है। साथ ही स्वयं विरुद्ध भाषित है। अतः सारावली का मत वास्तव में सारभूत व युक्तिसंगत है।

राशिस्वामि विचार :

कान्तः कलेट् कर्किण एणकुम्भयोः
कोणः कुजोऽजालिभयोर्विभुर्हरेः।
भानुर्भृगुर्गोतुलयोर्युगस्त्रियो-
र्नाथो बुधः कार्मुकमीनयोर्गुरुः ॥१५॥

कान्त इति। कर्किणः कर्कराशेः कलेट् कलानामीशश्चन्द्रः कान्तः स्वामी अस्ति। एणकुम्भयोः=मकर—कुम्भयोः, कोणः=शनिः स्वामी, अजालिभयोः=मेष—वृश्चिकयोः, कुजः=भौमः, विभुः=स्वामी, हरेः=सिंहस्य, भानुः=सूर्यः स्वामी, गोतुलयोः,=वृष—तुलयोः, भृगुः=शुक्रः स्वामी, युगस्त्रियोः=मिथुनः—कन्ययोः बुधो नाथः=स्वामी, कार्मुकमीनयो धनुमीनयोः, गुरुः स्वामी अस्तीति।

कर्क का स्वामी चन्द्रमा, मकर व कुम्भ का शनि, मेष व वृश्चिक का मंगल, सिंह का सूर्य, वृष व तुला का शुक्र, मिथुन व कन्या का बुध एवं धनु व मीन का गुरु स्वामी है।

ग्रहों की उच्च नीचादि व्यवस्था :

ब्रध्नोऽवौ वृषभे विधुर्मृगमुखे वक्रः स्त्रियां बोधनो
जीवः कर्किणि भार्गवोऽनिमिषभे जूके जगज्जन्मजः।
एत्युच्चं निजतुङ्गतोऽस्तभवने याति ग्रहो निम्नतां
दिग्रामा मनुयुक्तिथीषुभनखास्तुङ्गांशकाः स्यू रवेः ॥१६॥

ब्रध्न इति। ब्रध्नः=सूर्यः अवौ=मेषे। विधुः=चन्द्रः, वृषभे=वृषे। वक्रः= भौमः, मृगमुखे=मकरे। बोधनः=बुधः, स्त्रियां=कन्यायाम्। जीवः= बृहस्पतिः कर्किणि=कर्के। भार्गवः=शुक्रः अनिमिषभे=मीने। जगतां जन्मा

सूर्यस्तस्माज्जायत इति जगज्जन्मजः शनिः, तुलायाम्। उच्चं=तुङ्गम्, एति=गच्छति। निजतुङ्गतो निजोच्चराशेः सकाशाद् अस्तभवने=सप्तमराशौ, ग्रहो निम्नतां=नीचत्वं, याति=गच्छति। दिशश्च रामाश्च ते दिग्रामाः दिशो दश, रामास्त्रयः, मनुयुक्तिथीषुभनखाः=अष्टाविंशति—पञ्चदश—पञ्च—सप्तविंशति—विंशतयः, रवेरिति ल्यब्लोपे पञ्चमी। रविमारभ्य शनिपर्यन्तानां सप्तग्रहाणां क्रमेण तुङ्गांशकाः=उच्चांशा अर्थात्परमोच्चांशास्तथा परमनीचांशाः सन्तीत्यर्थः।

सूर्य मेष में, चन्द्रमा वृषभ में, मंगल मकर में, बुध कन्या में, गुरु कर्क में, शुक्र मीन में, शनि तुला में उच्चगत होता है। उक्त उच्च राशियों से सातवीं राशि में ग्रह नीचगत होता है। सभी ग्रहों के उच्च नीच के परम अंश सूर्यादि क्रम से इस प्रकार हैं—१०, ३, २८, १५, ५, २७, २० अंश।

उक्त नीचोच्च व्यवस्था वराहमिहिर, यवनाचार्य, कल्याण वर्मा आदि आचार्यों के बहुप्रचलित मत के आधार पर की गई है। सम्पूर्ण राशि ही फलादेश में उच्च होती है। जैसे सूर्य मेष में किसी भी अंश पर हो उच्चगत ही माना जाएगा। लेकिन परमोच्च जानने के लिए उक्त अंश व्यवस्था बनाई गई है।

ग्रह	परमोच्च	परम नीच
सूर्य	मेष १०°	तुला १०°
चन्द्रमा	वृष ३°	वृश्चिक ३°
मंगल	मकर २८°	कर्क २८°
बुध	कन्या १५°	मीन १५°
गुरु	कर्क ५°	मकर ५°
शुक्र	मीन २७°	कन्या २७°
शनि	तुला २०°	मेष २०°

उच्च व नीच में सदैव १८० अंशों का अन्तर होता है। स्वोच्च व मूल त्रिकोण में ग्रह अच्छा फल देता है। नीच में अशुभ फल देता है।

मूल त्रिकोण राशियों का ज्ञान :

मूलत्रिकोणानि गृहाणि केसरि-
गोमेषकन्याश्विवणिग्घटा रवेः ।
खोष्ठा भभान्विन्द्रियपक्त्यहर्नखाः
प्रोक्ताः स्वतुङ्गात्परतस्तदंशकाः ॥१७॥

मूलेति । केसरिगोमेषकन्याश्विवणिग्घटाः = सिंह—वृष—मेष—कन्या—धनु—तुला—कुम्भाः, रवेरिति ल्यब्लोपे पञ्चमी । रविमारभ्य शनिपर्य्यन्तानामेतानि मूलत्रिकोणानि गृहाणि राशयः स्युः । रवोष्ठः = विंशतिः, भभान्विन्द्रियपंक्त्यहर्नखाः = सप्तविंशति—द्वादश—पञ्चदश—पञ्चदश—विंशतयः, एते क्रमात्, स्वतुङ्गान्निजोच्चांशकतः परतोऽग्रे तदंशका मूलत्रिकोणराशीनामंशाः प्रोक्ताः कथिता बुधैरिति शेषः ।

सूर्यादि ग्रहों की मूलत्रिकोण राशियां क्रमशः सिंह, वृष, मेष, कन्या, धनु, तुला, कुम्भ हैं ।

इनमें से सिंह में २०° तक सूर्य का, वृषभ में ४°—२७° अंश तक चन्द्रमा का, मेष में १२° अंश तक मंगल का, कन्या में १६°—२०° तक बुध का, धनु में १०° अंश तक गुरु का, तुला में १५° तक शुक्र का, कुम्भ में २०° अंश तक शनि का मूल त्रिकोण है ।

उक्त मूल त्रिकोण व पूर्वोक्त उच्चांशकों को छोड़कर यथावसर शेषांश स्वगृह होता है ।

यह मत सारावली, पुंजराज, वराहमिहिर, शम्भु होराप्रकाश, एवं पाराशर होरा से मेल खाता है । यही मत आजकल सर्वाधिक प्रचलित है ।

कुछ आचार्यों ने अन्य प्रकार से भी व्यवस्था दी है ।

(i) सूर्य, मंगल, गुरु, शुक्र, शनि उक्त राशियों में १°—२०° तक मूल त्रिकोण का फल देते हैं—

सूर्यारजीवभृगुभानुभवा नवांशैः मूल त्रिकोण भवनमिति ।

(होरामकरन्द)

(ii) मन्त्रेश्वर ने फलदीपिका में शुक्र का मूल त्रिकोण तुला में ५° अंश तक माना है । विद्यामाधवीय नामक ग्रन्थ में भी तुला के ५° अंश तक शुक्र का मूल त्रिकोण कहा गया है—

जूके पंचघटे तु विंशतिरमी मूलत्रिकोणाह्वयाः ।

(विद्यामाधवीयम्)

(iii) वैद्यनाथ यद्यपि **'संगृह्य सारावलिमुख्यतन्त्रम्'** की प्रतिज्ञा करके भी सारावली से भिन्न बात कहते हैं—

सूर्य, बृहस्पति, शुक्र, शनि का मूलत्रिकोण सिंह, धनु, तुला, कुम्भ में २०° अंश तक मानते हैं। अंशों में भेद है, राशि में नहीं है। शेष ग्रहों की मूलत्रिकोण व्यवस्था सर्वसम्मत ही है।

लेकिन सारावली का मत सर्वाधिक प्रचलित एवं बहुमत सम्मत है, अतः वही ग्राह्य है। ग्रन्थकार ने भी इसी मत को ग्रहण किया है।

राहु केतु की स्वमूलत्रिकोणादि व्यवस्था :

राहोः क्षेत्रं स्त्रीघटः स्यात्त्रिकोण-
मुच्चं युग्मं खाश्विनस्तुङ्गभागाः ।
केतोर्मीनो मन्दिरं तुङ्गमश्वी
खोष्ठा उच्चांशास्त्रिकोणं मृगेन्द्रः ॥१८॥

राहोरति। स्त्री = कन्याराशी राहोः क्षेत्रं = गृहमस्ति, घटः = कुम्भराशिस्त्रिकोण मूलत्रिकोणं स्यादित्यर्थः। युग्मं = मिथुनं, राहोरुच्चं तुङ्गमस्ति, खाश्विनः = विंशतिस्तुङ्गभागा उच्चांशाः स्युः। मीनः केतोर्मन्दिरं = स्वगृहमस्ति, अश्वी = धनुः, तुङ्गं = उच्चमस्ति, खोष्ठाः = विंशतिः, उच्चांशा, सन्ति। मृगेन्द्रः = सिंहः, त्रिकोणं मूलत्रिकोणं ज्ञेयम्।)

कन्या राशि राहु का स्वगृह है। कुम्भ राशि मूलत्रिकाण है। मिथुन राहु की उच्च राशि है। २०° उच्चांश माने गए हैं।

इसी प्रकार तत्सप्तम मीन राशि केतु का स्वगृह, धनु राशि उच्च एवं सिंह मूलत्रिकोण राशि हैं। उच्चांश २०° ही हैं।

जैमिनीय मत में चरदशानयन के समय राहु की स्वराशि कुम्भ एवं केतु की वृश्चिक मानी गई है। यह विरोधी मत नहीं है। केवल चरदशा में ऐसी व्यवस्था रहेगी। अन्यत्र उक्त श्लोकोक्त ढंग ही अपनाया जाएगा। उक्त मत पाराशर भिन्न होने पर भी अधिक प्रचलित है।

ग्रहों के सप्तवर्ग :

> **गेहं ततो राशिदलं त्रिभागो**
> **नन्दांशको द्वादशभागनामा ।**
> **त्रिशांश एते रसवर्गसञ्ज्ञास्ते**
> **सप्तवर्गा नगभागयुक्ताः ॥१६॥**

गेहमिति। गेहं गृहं (लग्नकुण्डली जन्माङ्गं जन्माक्षरं वा), राशिदलं राशीनां दलमर्द्धं होरा चक्रदलं त्रिभागो द्रेष्काणः नन्दांशको नवांशः द्वादशभागनामा द्वादशांशः त्रिशांशः त्रिशल्लवः एते रसवर्गसञ्ज्ञाः षड्वर्गाः स्युः, ते नगभागयुक्ता नगभागेन सप्तमांशेन युक्ताः सहिताः सन्तः सप्तवर्गाः सप्तगणा भवन्तीति । यद्यस्य ग्रहस्य क्षेत्रं राशिः स तस्य वर्गः 'क्षेत्रं च यद्यस्य स तस्य वर्ग इत्याचार्य्योक्तेः ।

तथा च लघुजातके

"गृहहोराद्रेष्काणा नवभागो द्वादशांशकस्त्रिशः ।
वर्गः प्रत्येतव्यो ग्रहस्य यो यस्य निर्दिष्टः" ॥ इति

गृह, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश एवं त्रिशांश ये षड्वर्ग कहलाते हैं। इन्हीं में सप्तमांश जोड़ने से सप्तवर्ग हो जाते हैं।

होरादिसाधन परिज्ञान :

> **ओजेऽर्केन्द्वोश्चन्द्रभान्वोरनोजे**
> **होरेस्वेष्वङ्काधिपानां त्रिभागाः ।**
> **स्वर्क्षादोजेऽनङ्गगेहादनोजे**
> **सप्तांशाः स्युर्द्वादशांशाः स्वभाद्याः ॥२०॥**

ओज इति। ओजे विषमराशौ मेषमिथुनसिंहतुलाधनुःकुम्भानामन्यतमे राशौ, अर्केन्द्वोरर्कः सूर्य इन्दुश्चन्द्रस्तयोर्यथाक्रमं होरे भवतः। प्रथमा होरा सूर्यस्य, द्वितीया होरा चन्द्रस्य, अत्र होराशब्देन राश्यर्द्धमुच्यते। अनोजे समराशौ वृषकर्ककन्या-वृश्चिकमकरमीनानामन्यतमे राशौ चन्द्रभान्वोर्होरे भवतः। प्रथमा होरा चन्द्रस्य, द्वितीया होरा भानोः सूर्यस्य ज्ञेयेति ।

स्वेष्विति । द्रेष्काणा राशित्रिभागास्ते, स्वेष्वङ्काधिपानां = प्रथम-पञ्चमनवमेशानां भवन्ति । प्रथमो द्रेष्काणः स्वस्य स्वगृहेशस्यात्मीयगृह-स्वामिनः। द्वितीय इषुपस्य पञ्चमेशस्य। तृतीयोऽङ्काधिपस्य नवमेशस्य द्रेष्काणो

भवति। यथा मेषराशौ दशांशं यावन्मेषपस्य कुजस्य। ततः परं विंशत्यंशावसानं मेषतः पञ्चमस्य सिंहपस्य सूर्यस्य। ततः परं मेषावसानं यावन्मेषतो नवमस्य धनुःपतेर्जीवस्य द्रेष्काणः। एवं शेषेष्वपि ज्ञेयमिति।

ओज इति। ओजे विषमराशौ मेषमिथुनसिंहतुलाधनुःकुम्भानामन्यतमे राशौ स्वर्क्षात् स्वराशेर्ग्रहाधिष्ठितराशेः सकाशादित्यर्थः। सप्तांशाः (राशेः सप्तमो भागः ४° १७′ ८″) गणनीयाः। अनोजे समराशौ वृषकर्ककन्यावृश्चिकमकरमीनानामन्यतमे राशौ अनङ्गगेहात्सप्तमस्थानाद् ग्रहाधिष्ठितराशेः सकाशाद् यो सप्तमराशिस्तस्मात्सप्तांशा (४°, १७′ ८″) गणनीया इति।

स्वभाद्या इति। स्वभमादौ येषां ते स्वभाद्याः स्वराशिपूर्वका ग्रहाधिष्ठितराशेः सकाशादित्यर्थः। द्वादशांशा गणनीया अर्थाद्राशेर्लवानां ३० मितानां द्वादशो भागः २° ३०′ १०″ द्वादशांशो बोध्य इति।

विषम अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, कुम्भ राशियों में ०—१५° अंशों तक सूर्य की होरा तथा १६°—३०° तक चन्द्रमा की होरा होती है। सम राशियों में पहले चन्द्रमा की व बाद में सूर्य की होरा होती है।

राशि के तीसरे हिस्से को द्रेष्काण कहते हैं। ये क्रमशः प्रत्येक राशि में प्रथम, पंचम व नवम राशियों के होते हैं।

सप्तम भाग को सप्तमांश कहते हैं। विषम राशि में उसी राशि से एवं समराशि में सातवीं राशि से सप्तमांश गिने जाते हैं।

एक राशि में १२ द्वादशांश होते हैं। प्रत्येक राशि में उसी राशि से द्वादशांश गिने जाते हैं।

राशि का आधा भाग होरा होता है। द्रेष्काण १०° का होता है। अतः ०°—१०° अंश तक उसी राशि का, ११°—२०° तक पांचवीं राशि का व २१°—३०° अंश तक नवीं राशि का द्रेष्काण होगा।

इसी प्रकार ४°,१७′,८″ अंशादि का एक सप्तमांश विषम राशि में उसी राशि से और सम में सातवीं राशि से गिना जाएगा।

एक द्वादशांश २°—३०′ अंशादि का होता है। अतः प्रत्येक राशि में उसी राशि से गिने जाएंगे।

नवांश साधन :

मेषे सिंहे कार्मुकेऽजान्नवांशा
नक्रान्नक्रे गोपतौ कन्यकायाम्।
कामे कुम्भे तौलिसञ्ज्ञे तुलायाः
कर्कात्कर्के वृश्चिके मीनयुग्मे ॥२१॥

मेष इति। राशेर्नवमो भाग: ३°, २०′ ०″ नवांश:। एकस्मिन् राशौ नव नवांशा भवन्ति। मेषे, सिंहे, कार्मुके=धनुषि च, अजात्=मेषान्नवांशा गण्या: नक्रे=मकरे, गोपतौ=वृषे, कन्यकायां च, नक्रात्=मकरान्नवांशा गण्या:। कामे=मिथुने, कुम्भे, तौलिसञ्ज्ञे=तुलायां च, तुलाया: सकाशान्नवांशा गण्या:। एवं कर्के, वृश्चिके, मीनयुग्मे=मीने च, कर्कात्सकाशादेषु त्रिषु राशिषु नवांशा गण्या:।

एक राशि का नवम भाग ३°—२०′ नवांश कहलाता है। मेष, सिंह, धनु में मेष राशि से; वृष, कन्या, मकर में मकर से एवं मिथुन, तुला, कुम्भ में तुला से नवांश गिने जाएंगे। कर्क, वृश्चिक, मीन में कर्क से नवांश गणना होगी।

त्रिंशांश साधन :

बाणाद्रिहीषुविषया: क्रमत: कविज्ञ-
जीवेनजक्षितिभुवां समराशिमध्ये।
पंचेष्विभागपवना विषमेषु भेषु
भागा: कुजार्किगुरुबोधनभार्गवाणाम् ॥२२॥

बाणेति। समराशिमध्ये=समराशौ वृषकर्ककन्यावृश्चिकमकरमीनराशीनामन्यतमे राशौ, कविज्ञजीवेनजक्षितिभुवां=शुक्र—बुध—गुरु—शनि—भौमानां, क्रमत: परिपाट्या बाणाद्रिहीषुविषया:=पञ्च-सप्ताष्ट-पञ्च-पञ्च, भागा:=अंशा भवन्ति। तद्यथा—पञ्चांशा: शुक्रस्य। तत ऊर्ध्वं सप्तांशा बुधस्य एवं द्वादश। अत ऊर्ध्वमष्टांशा गुरोरेवं विंशति:। तत: परं पञ्चभागा: शनेरेवं पञ्चविंशति:। तत ऊर्ध्वं पञ्चभागा भौमस्य एवं त्रिंशत्। पञ्चेति। विषमेषु=ओजेषु, भेषु=राशिषु, कुजार्किगुरुबोधनभार्गवाणाम्=भौम-शनि-गुरु-बुध-शुक्राणाम्, क्रमत:=परिपाट्या, पञ्चेष्विभागपवना:=पंच—पञ्चा—ष्ट—सप्त—पञ्च भागा:=अंशा भवन्ति। तद्यथा—पंचभागा भौमस्य। तत ऊर्ध्वं पंचांशा: शनेरेवं दश। तत: परमष्टांशा गुरोरेवमष्टादश। तत ऊर्ध्वं सप्तभागा बुधस्यैवं पञ्चविंशति:। अत: ऊर्ध्वं पंचांशा: शुक्रस्यैवं त्रिंशत्। अयं त्रिंशांशक इति शेष:।

प्रत्येक राशि में पांच त्रिशांश होते हैं। सम राशि में क्रमश: ०—५° तक शुक्र का, ६°—१२° तक बुध का, १३°—२०° तक गुरु का, २१°—२५° तक शनि का, २६°—३०° तक मंगल का त्रिशांश होता है।

विषम राशि में यही त्रिशांशेश विपरीत क्रम से होंगे। ०°—५° तक मंगल, ६°—१०° तक शनि, ११°—१८° तक गुरु, १९°—२५° तक बुध, व आगे शुक्र का त्रिशांश होगा।

समराशि में ग्रह की सम राशि व विषम राशि में विपम राशि समझनी चाहिए। यह विषय चक्र में स्पष्ट है—

विषम त्रिशांश चक्र

अंशा :	राशय : मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, कुम्भ
०—५°	मेष
६°—१०°	कुम्भ
११°—१८°	धनु
१९°—२५°	मिथुन
२६°—३०	तुला

समराशि त्रिशांश

अंशा :	राशय : वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन
०—५°	वृष
६°—१२°	कन्या
१३°—२०°	मीन
२१°—२५°	मकर
२६°—३०°	वृश्चिक

द्वादश भावों के पर्याय :

कायः कुटुम्बं सहजो जनित्री
पुत्रो विपक्षो वनिता विनाशः।
भाग्यं ततः कर्म भवोऽवसानं
भावा इमे द्वादश सद्भिरुक्ताः॥२३॥

काय इति। लग्नस्य कायो देह इत्याख्या। द्वितीयस्य कुटुम्बं परिजनः तृतीयस्य सहजो भ्राता। चतुर्थस्य जनित्री माता। पंचमस्य पुत्रः प्रसिद्धः। षष्ठस्य विपक्षः शत्रुः। सप्तमस्य वनिता जाया। अष्टमस्य विनाशो मृत्युः। नवमस्य भाग्यं शुभाशुभसूचककर्म। दशमस्य कर्म सदसत्। एकादशस्य भवो विद्यादिगुण-सम्पत्प्राप्तिः। द्वादशस्यावसानं विरामः। इमे तन्वादयो द्वादशभावाः सद्भिः शिष्टैरुक्ताः कथिताः।

तनु, कुटुम्ब, सहज, माता, पुत्र, शत्रु, स्त्री, मृत्यु, भाग्य, कर्म, भव, हानि ये द्वादश भावों के नाम हैं।

प्रथम द्वितीय भाव के पर्याय :

लग्नोद्गमाद्यतनुकायकलेवराङ्ग-
होरावपुःप्रथममूर्त्तिविलग्नकल्पाः ।
वित्तं धनं द्रविणकोशकुटुम्बभुक्ति-
स्वार्थद्वितीयवसुवाङ्नयनाननानि ॥२४॥

लग्नेति। लग्नम्, उद्गमः आद्यः तनुः, कायः, कलेवरम्, अङ्गम्, होरा, वपुः (स्) प्रथमम्, मूर्त्तिः, विलग्नम् कल्प एते लग्नस्य पर्यायाः सन्ति।

वित्तमिति। वित्तम्, धनम्, द्रविणम् कोशः, कुटुम्बम् भुक्तिः, स्वम्, अर्थः, द्वितीयम् वसु, वाक् (च्) नयनम् आननम् एते द्वितीयस्य पर्यायाः सन्ति।

लग्न, उद्गम, आद्य, तनु, काय, कलेवर, अंग, होरा, वपुष्, प्रथम, मूर्ति, विलग्न, कल्प ये लग्न के पर्याय हैं।

वित्त, धन, द्रविण, कोश, कुटुम्ब, भुक्ति, स्व, अर्थ, द्वितीय, वसु, वाक्, नयन, आनन ये द्वितीय भाव के नाम हैं।

तृतीय चतुर्थ के पर्याय :

भ्राता सहोदरपराक्रमकर्णधैर्य्य—
दुश्चिक्यशौर्य्यबलविक्रमदोःसहोत्थाः।
सौख्यं सुखं हिबुकमित्ररसातलाम्बा—
ऽम्भोबान्धवालयनिकेततुरीयतुर्य्याः ॥२५॥

भ्रातेति। भ्राता, सहोदरः, पराक्रमः, कर्णः, धैर्य्यम् दुश्चिक्यम्, शौर्य्यम्, बलम्, विक्रमः, दोः (स्) सहोत्थः एते तृतीयभावस्य पर्यायाः सन्ति।

सौख्यमिति। सौख्यम्, सुखम्, हिबुकम्, मित्रम् रसातलम्, अम्बा, अम्भः (स्), बान्धवः, आलयः, निकेतम्, तुरीयः, तुर्य्यः एते चतुर्थभावस्य पर्यायाः सन्ति।

भाई, सहोदर, पराक्रम, कर्ण, धैर्य, दुश्चिक्य, शूरता, वल, विक्रम, भुजा, सहज, ये तृतीय भाव के पर्याय हैं।

सुख, सौख्य, हिबुक, मित्र, रसातल, अम्बा, जल, बान्धव, गृह, निकेत, तुरीय, तुर्य ये चतुर्थ भाव के नाम हैं।

पंचम षष्ठ के पर्याय :

सन्तानसन्ततिसुतात्मजनन्दनात्म-
पुत्रप्रबन्धतनया मतिमंत्रविद्याः।
वैरी विपक्षरिपुशात्रवशत्रुषष्ठ-
द्वेष्याः सपत्नपररुक्क्षतमान्द्यरोगाः ॥२६॥

सन्तानेति। सन्तानः, सन्ततिः, सुतः, आत्मजः, नन्दनः, आत्मा (आत्मन्), पुत्रः, प्रबन्धः, तनयः, मतिः मंत्रः, विद्या एते पुत्रभावस्य पर्यायाः सन्ति।

वैरीति। वैरी (वैरिन्), विपक्षः, रिपुः, शात्रवः, शत्रः, षष्ठम्, द्वेष्यः, सपत्नः, परः, रुक् (ज्) क्षतम्, मान्द्यम्, रोगः एते शत्रुभावस्य पर्यायाः सन्ति।

सन्तान, सन्तति, सुत, पुत्र, आत्मज, नन्दन, प्रबन्ध, तनय, मति, मंत्र, विद्या ये पंचम भाव के नाम हैं।

वैरी, विपक्ष, रिपु, शात्रव, शत्रु, षष्ठ, द्वेष्य, सपत्न, पर, रोग, क्षत, मान्द्य, रुक् ये षष्ठ भाव के नाम हैं।

सप्तमाष्टम के पर्याय :

कामः कलत्रमदनास्तमयास्तजाया-
जामित्रमन्मथमदद्युनदारमाराः ।
मृत्युर्मृतिः प्रलययाम्यनिमीलनायू-
रन्ध्राष्टमक्षयवधाहवनैधनानि ॥२७॥

काम इति। कामः, कलत्रम्, मदनः, अस्तमयम् अस्तम्, जाया, जामित्रम्, मन्मथः, मद, द्युनम्, दाराः (बहुवः) 'दाराः पुंभूम्नीत्यमरः। मारः, एते सप्तमभावस्य पर्यायाः सन्ति।

मृत्युरिति। मृत्युः, मृतिः, प्रलयः, याम्यम्, निमीलनम्, आयुः (स्) रन्ध्रम्, अष्टमम् क्षयः, वधः, आहवम्, नैधनम्, एतेऽष्टमभावस्य पर्यायाः सन्ति।

काम, कलत्र, मदन, अस्तमय, अस्त, जाया, जामित्र, मन्मथ, मद, द्यून, दारा, मार ये सप्तम भाव के पर्याय हैं।

मृत्यु, मृति, प्रलय, याम्य, निमीलन, आयु, रन्ध्र, अष्टम, क्षय, वध, आहव, नैधन ये अष्टम भाव के पर्याय हैं।

नवम दशम के पर्याय :

भाग्यं विधिर्नियतिपुण्यतपःशुभाध्वा-
ङ्कत्रित्रिकोणकरुणागुरुतीर्थधर्म्माः ।
कर्मास्पदं जनकराज्यपदाम्बराज्ञा-
मेषूरणक्रतुखमाननभोवणिज्याः ॥२८॥

भाग्यमिति। भाग्यम्, विधिः, नियतिः, पुण्यम्, तपः (स्) शुभम्, अध्वा (अध्वन्), अङ्कः, त्रित्रिकोणम्, करुणा, गुरुः, तीर्थम्, धर्मः एते नवमभावस्य पर्यायाः सन्ति।

कर्मेति। कर्म (कर्मन्) आस्पदम्, जनकः, राज्यम्, पदम् अम्बरम्, आज्ञा, मेपूरणम्, क्रतुः, खम्, मानम्, नभः (स्), वणिज्या एते दशमभावस्य पर्यायाः सन्ति।

भाग्य, विधि, नियति, पुण्य, तप, शुभ, अध्वन्, अंक, त्रित्रिकोण, करुणा, गुरु, तीर्थ, धर्म ये नवम भाव के पर्याय हैं।

कर्म, आस्पद, जनक, राज्य, पद, अम्बर, आज्ञा, मेपूरण, क्रतु, ख, मान, नभ, वणिज्या ये दशम भाव के पर्याय हैं।

एकादश द्वादश भाव के पर्याय :

एकादशोलभनलब्धिभवायलाभो-
पान्त्यागमानि समवाप्तिरवाप्तिराप्तिः ।
प्रान्त्यावसान चरमव्ययरिःफबाधा-
ऽपायव्यथाव्यथनपीडनमंत्रिणोऽकम् ।।२९।।

एकादश इति । एकादशः, लभनम् लब्धिः, भवः, आयः, लाभः उपान्त्यम्, आगमम्, समवाप्तिः, अवाप्तिः, आप्तिः, एते एकादशभावस्य पर्यायाः सन्ति ।

प्रान्त्येति । प्रान्त्यः, अवसानम्, चरमम्, व्ययः, रिफः, बाधा, अपायः, व्यथा, व्यथनम्, पीडनम्, मंत्री (मंत्रिन्), अकम्, एते द्वादशभावस्य पर्यायाः सन्तीतिः ।

एकादश, लभन, लब्धि, भव, आय, लाभ, उपान्त्य, आगम, समवाप्ति, अवाप्ति, आप्ति ये ग्यारहवें भाव के नाम हैं ।

प्रान्त्य, अवसान, चरम, व्यय, रिःफ, बाधा, अपाय, व्यथा, व्यथन, पीडन, मन्त्रिन्, अक ये द्वादश भाव के नाम हैं ।

केन्द्रादि संज्ञा ज्ञान :

खाङ्गाम्बुकामभवनानि चतुष्टयानि
केन्द्राण्यथो पणफरं मृतिधीभवस्वम् ।
आपोक्लिमं चरमशात्रवदोस्तपोऽथो
त्र्यायारिखान्युपचयानि जगुर्ग्रहज्ञाः ।।३०।।

खेति । खाङ्गाम्बुकामभवनानि = दशम—लग्न—चतुर्थ—सप्तमगेहानि, चतुष्टयानि केन्द्राणि च कथितानि दैवज्ञैरिति शेषः । अन्यैः कण्टकं कीचकं च पर्यायद्वयमपि कथितम् ।

अथो इति । अथो आनन्तर्य्यार्थे । मृतिधीभवस्वम् = अष्टम—पञ्चम—लाभ—धनं, पणफरं ज्ञेयम् । चरम शात्रवदोस्तपः = व्यय—षष्ठ—तृतीय—नव—मापोक्लिमं कथितम् ।

अथो इति । अथो आनन्तर्य्यार्थे । त्र्यायारिखानि = तृतीय—लाभ—षष्ठ—दशमानि, उपचयानि = वृद्धिसंज्ञकानि, ग्रहज्ञाः = गणकाः, जगुः = आहुरिति ।

दशम, लग्न, चतुर्थ एवं सप्तम स्थानों की चतुष्टय, केन्द्र ये दो संयुक्त संज्ञाएं हैं ।

२, ५, ८, ११ भावों की संयुक्त संज्ञा पणफर है। ३, ६, ९, १२ भावों की संयुक्त संज्ञा आपोक्लिम है।

३, ६, १०, ११ भावों की उपचय संज्ञा है। ऐसा दैवज्ञों का कथन है।

पीड़ादि स्थानों का विभाग :

वृद्धीतराणि भवनानि च पीडभानि
दुष्टं त्रिकं व्ययरुजायुरथो त्रिकोणम्।
धीमङ्गलं सुखमृती चतुरस्रसंज्ञे
लीनं त्र्यकारिनिधनं पतितं रुजाकम् ॥३१॥

वृद्धीति। वृद्धीतराणि=उपचयातिरिक्तानि, भवनानि=गेहानि, पीडभानि=पीडसंज्ञकानि भवन्ति।

दुष्टमिति। व्ययरुजायु:=व्यय—षष्ठ—निधनं दुष्टं=दुष्टसंज्ञं, त्रिकं त्रिकसंज्ञं च भवति।

अथो इति। अथो आनन्तर्यार्थे। धीमङ्गलं=पंचम—नवमं, त्रिकोणं ज्ञेयम्

सुखेति। सुखमृती=चतुर्थाष्टमे, चतुरस्रसञ्ज्ञे भवतः।

लीनमिति। त्र्यकारिनिधनं=तृतीय—द्वादश—षष्ठा—ष्टमं, लीनं ज्ञेयम्।

पतितमित्ति। रुजाकम्=षष्ठ व्ययं पतितं ज्ञेयम्। एवं त्रिकोणशब्देन पंचमं त्रित्रिकोणशब्देन नवममन्ये ब्रुवन्ति।

उपचय स्थानों के अतिरिक्त अर्थात् (१, २, ४, ५, ७, ८, ९, १२) स्थान अनुपचय या पीड़ा संज्ञक होते हैं।

६, ८, १२ भावों की दुष्ट व त्रिक संज्ञा है।

५, ९ भावों की त्रिकोण संज्ञा है। ४, ८ भावों की चतुरस्र संज्ञा है।

३, ६, ८, १२ भावों की लीन संज्ञा है। ६, १२ भावों की पतित संज्ञा है।

॥ इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां राशिशीलाध्यायः प्रथमोऽवसितः ॥

[२]

ग्रह शीलाध्याय:

कालपुरुषांग में ग्रह विभाग :

सूरः शिरोवदनयोर्गलवक्षसोग्लौः
पृष्ठोदरेऽवनिजनिः प्रभुतां विधत्ते ।
सौम्योंऽघ्रिदोस्सु धिषणःकटिजंघयोर्भो
गुह्याण्डयोरसित ऊरुकजानुभागे ।। १ ।।

यः खेचरो जनुरनेहसि चेत्प्रसव्यः
प्रश्नक्षणे किमुत गोचरके निजेन ।
दोषेण सोऽम्बरचरः कुरुते निजाङ्गे
बाधामतो बुधजनैः स समर्चनीयः ।। २ ।।

सूर इति। य इति च। शिरोवदनयोः=शीर्षमुखयोः, सूरः=सूर्यः। गलवक्षसोः=कण्ठहृदययोः, ग्लौश्चन्द्रः। पृष्ठोदरे=पृष्ठ—जठरे, अवनिजनिः=भौमः। अंघ्रिदोस्सु=पाद—बाहुषु, सौम्यः=बुधः। कटिजंघयोः=श्रोणि—जघनयोः, धिषणः=गुरुः गुह्याण्डयोः=गुप्तेन्द्रियाण्डकोषयोः, भः शुक्रः। ऊरुक-जानुभागे=सक्थि—जानु प्रदेशे, असितः=शनिः प्रभुतां स्वामित्वमधिकारमिति यावत्। विधत्ते=कुरुते। यः खेचरः=ग्रहः, जनुरनेहसि=जन्मकाले, प्रश्नक्षणे=अनुयोगावसरे, किमुत=अथवा, गोचरके=गोचारे, चेद्यदि, प्रसव्यः=प्रतिकूल-वर्ती भवेत्, सोऽम्बरचरः=ग्रह, निजेन=आत्मीयेन, दोषेण=पित्तादिना, निजाङ्गे=स्वस्वावयवे, बाधां=पीड़ां, कुरुते=विधत्ते। अतोऽस्मात्कारणात्, बुधजनैः=ज्योतिर्विद्भिः, सदोषकृद् ग्रहः, समर्चनीयः=सम्यक् पूजनीयः, तत्तुष्टो जपदानपूजादि कर्त्तव्यमित्यर्थः।)

काल पुरुष के सिर व मुख पर सूर्य, गले व छाती पर चन्द्रमा, पीठ व पेट पर मंगल, हाथों व पैरों पर बुध, कटिप्रदेश एवं पिण्डलियों पर वृहस्पति, गुप्तांग पर शुक्र एवं घुटने व जांघों पर शनि का आधिपत्य है।

जो ग्रह जन्म के समय प्रतिकूल हो अथवा प्रश्न या गोचर में प्रतिकूल हो तो वह ग्रह अपने अंग में अपने स्वाभाविक दोष को उत्पन्न करता है। अतः विद्वानों को उसी ग्रह की शास्त्रोक्त शान्ति करानी चाहिए।

ग्रहों के पर्याय :

सूर्य्येनभान्वर्कभगारुणार्य्यम-
मार्त्तण्डभास्वद्रविसूरभास्कराः ।
चन्द्रः शशीग्लौर्विधुरिन्दुचन्द्रम-
स्सोमाब्जशीतांशुभपक्षपाकराः ॥ ३ ॥

सूर्येति। सूर्यः, इनः, भानुः, अर्कः, भगः, अरुणः अर्य्यमा (अर्यमन्), मार्त्तण्डः, भास्वान् (भास्वत्) रविः, सूरः भास्कर एते सूर्यस्य पर्यायाः सन्ति।

चन्द्र इति। चन्द्रः, शशी (शशिन्), ग्लौ, विधुः, इन्दुः चन्द्रमाः (चन्द्रमस्), सोमः, अब्जः, शीतांशुः, भपः, क्षपाकर एते चन्द्रमसः पर्यायः सन्ति।

सूर्य, इन, भानु, अर्क, भग, अरुण, अर्यमा, मार्त्तण्ड, भास्वत्, रवि, सूर, भास्कर ये सूर्य के नाम हैं।

चन्द्र, शशी, ग्लौ, विधु, इन्दु, चन्द्रमा, सोम, अब्ज, शीतांशु, भप, क्षपाकर इत्यादि चन्द्र के पर्याय हैं।

मंगल बुध के संज्ञान्तर :

भौमारवक्रास्रमहीजमङ्गला
अङ्गारकासृक्कुजलोहितांशवः ।
सौम्यैन्दवज्ञा बुधचान्द्रिबोधना-
विद्रौहिणेयेन्दुजहेम्नकोविदाः ॥ ४ ॥

भौमेति। भौमः आरः, वक्रः, अस्रः, महीजः, मङ्गलः, अङ्गारकः, असृक् (ज्), कुजः, लोहितांशुः एते भौमस्य पर्यायाः सन्ति।

सौम्येति। सौम्यः, ऐन्दवः, ज्ञः, बुधः, चान्द्रिः, बोधनः, विद्, रौहिणेयः, इन्दुजः, हेम्न, कोविद एते बुधस्य पर्यायाः सन्ति।

मंगल, वक्र, अस्र, महीज, मंगल, अंगारक, असृक्, कुज, लोहितांशु ये मंगल के पर्याय हैं।

सौम्य, ऐन्दव, ज्ञ, बुध, चान्द्रि, बोधन, विद् रौहिणेय, इन्दुज, हेम्न एवं कोविद ये बुध के पर्याय हैं।

गुरु शुक्र के पर्याय :

बृहस्पतीज्यामरमन्त्रिवाक्पति-
सुरेज्यजीवाङ्गिरसार्च्चिता गुरुः।
सितोशनोऽच्छासुरवन्द्यभार्गव-
भकाव्यशुक्रास्फुजितो भृगुः कविः ॥ ५ ॥

बृहस्पतीति। बृहस्पतिः, इज्यः, अमरमंत्री, (अमरमंत्रिन्), वाक्पतिः सुरेज्यः, जीवः, आङ्गिरसः, अर्चितः, गुरुरेते गुरोः पर्यायाः सन्ति।

सित इति। सितः, उशना, अच्छः, असुरवन्द्यः, भार्गवः, भः, काव्यः, शुक्रः, आस्फुजित् भृगुः कविरेते शुक्रस्य पर्यायाः सन्ति।

बृहस्पति, इज्य, अमरमंत्री, वाक्पति, सुरेज्य, जीव, आंगिरस, अर्चित गुरु के पर्याय हैं।

सित, उशना, अच्छ, असुरवन्द्य, भार्गव, भ, काव्य, शुक्र, आस्फुजित्, भृगु, कवि ये शुक्र के पर्याय हैं।

शनि राहु के पर्याय :

मन्दो मृदुः कृष्णशनी शनैश्चर-
च्छायाजकोणासितसौरिसूर्य्यजाः ।
स्वर्भाणुसिंहीजतमोऽसुराह्यगु-
राहूरगाः केत्वनिलध्वजाः शिखी ॥ ६ ॥

मन्द इति। मन्दः, मृदुः, कृष्णः, शनिः, शनैश्चरः छायाजः, कोणः, असितः, सौरिः, सूर्यज एते शनेः पर्यायाः सन्ति।

स्वर्भाण्विति। स्वर्भाणुः, सिंहीजः, तमः (स्) असुरः, अहिः, अगुः, राहुः, उरगः एते राहोः पर्यायाः सन्ति।

केत्विति। केतुः, अनिलः, ध्वजः, शिखी (शिखिन्) एते केतोः पर्यायाः सन्तिः।

मन्द, मृदु, कृष्ण, शनि, शनैश्चर, छायाज, कोण, असित, सौरि, सूर्यज ये शनि के पर्याय हैं।

स्वर्भानु, सिंहीज, तम, असुर, अहि, अगु, राहु, उरग ये राहु के पर्याय हैं।

केतु, अनिल, ध्वज, शिखिन् ये केतु के पर्याय हैं।

ग्रहों का आत्मादि विभाग :

आदित्य आत्मा हिमगुर्मनोऽसृक्
सत्वं गुरुर्ज्ञानसुखे बुधो वाक्।
शुक्रं सितो दुःखमशुभ्ररोचि-
श्चेदात्ममुख्या बलिनो विहङ्गाः॥ ७॥

तर्ह्यात्मपूर्वा बलवत्तराः स्यु-
र्वीर्य्यैर्विरिक्ता यदि ते विवीर्य्याः।
व्यस्तं विचिन्त्यं फलमर्कजस्य
नृपौ रवीन्दू सचिवौ सितार्य्यौ॥ ८॥

शीतद्युतेः कायभवः कुमारः
पृथ्वीतनूजः पृतनाधिनाथः।
प्रैष्यः पतङ्गात्मभवो बलीयो
वृत्तिं तदीयां जनितो लभेत॥ ९॥

आदित्य इति। तर्हीति। शीतद्युतेरिति च। आत्मा = कालपुरुषस्यात्मा, आदित्यः = सूर्यः। हिमेन तुहिनेन सदृशाः शीतला गावो रश्मयो यस्य स हिमगुश्चन्द्रस्तस्य मनो हृदयम्। सत्वं शौर्य्यमसृग् भौमः। सत्वस्य लक्षणम्—'अधिकारकरं सत्वं वासनाभ्युदयागमे।' इह सत्वशब्दः शौर्यपर्यायः। यच्च सिंहादीनामस्ति।

गुरुरिति। गुरुर्बृहस्पतिर्ज्ञानं च सुखं च ते। बुधः प्रसिद्धः, वाग् वाणी। सितः = शुक्रः, शुक्रं = वीर्यम्। अशुभ्ररोचि = शनिः, दुखं = कष्टं बोध्यमिति।

चेदिति। चेद्यदि आत्ममुख्या आत्मादयो विहङ्गा ग्रहा बलिनो बलवन्तो भवेयुः। तर्हि आत्मपूर्वा आत्मादयो बलवत्तरा बलिष्ठाः स्युः। यदि ते, वीर्यैर्बलैः, विरक्ता विहीनाः, तर्हि ते, आत्मादयो विवीर्या विबलाः स्युः। अर्कजस्य शनेः फलं व्यस्तं विपरीतं, विचिन्त्यं विचार्यम्। यदि शनिर्बली तर्हिदुःखाभावः, चेत्सबलविहीनः, तदा बहुदुःखञ्ज्ञेय इत्यभिप्रायः।

राजाविति, रवीन्दू = सूर्य —चन्द्रौ, नृपौ = राजानौ । सितार्य्यौ = शुक्र—गुरू, सचिवौ = मन्त्रिणौ । शीतद्युते: = चन्द्रस्य, कायभव: = देहादुत्पन्नो वुध इत्यर्थ:, कुमार: = युवराज:, राजपुत्र इति केचित् । पृथ्वीतनूज: = भौम:, पृतनाधिनाथ: = सेनापति: । प्रैष्य इति । पतङ्गात्मभव: = शनि:, प्रैष्य = दास: इत्यमर: । एषु आत्मादिग्रहेषु यो बली वलवान्, तस्य या वक्ष्यमाणवृत्तिराजीवा, तां जनितो-जात:, लभेत प्राप्नुयात् ।

इह निजजातके विशेषमाह 'भगवान्सूर्य्य'—

"अहं राजा शशी राज्ञी नेता भूमिसुत: खग: ।
सौम्य: कुमारो मन्त्री च गुरुस्तद्वल्लभा भृगु: ॥
प्रेष्यस्तथैव संप्रोक्त: सर्वदा तनुजो मम " इति ।

सूर्य कालपुरुष की आत्मा है । चन्द्रमा मन, मंगल सत्त्व अर्थात् शौर्य, गुरु ज्ञान व सुख, बुध वाणी, शुक्र वीर्य या कामशक्ति एवं शनि दु:ख है ।

मनुष्य के जन्म समय जो ग्रह वलवान् हो वही वस्तु अधिक वलवान् होती है । ये आत्मादि ग्रह निर्बल हों तो मनुष्य के आत्मादि भी निर्वल होंगे ।

लेकिन शनि के विषय में विपरीत समझना चाहिए । अर्थात् बली शनि दु:खहर्ता एवं निर्वल शनि दु:खकर्ता होगा ।

इसके अतिरिक्त सूर्य व चन्द्रमा राजा हैं । शुक्र व गुरु मन्त्री हैं । वुध कुमार है । मंगल सेनानायक है । शनि नौकर है । जन्म के समय जो ग्रह वलवान् हो वह अपने अनुसार ही राजा या भृत्यसदृश स्वभाव, व्यक्तित्व आदि देता है ।

ग्रहों की शुभ पाप व्यवस्था :

पापाः पतङ्गारपतङ्गपुत्र-
पाताः पताको गलितान्जिजश्च ।
पापो युतस्तैर्विबुधोऽपि सौम्या
भेज्याखिलेन्दुप्रवियुक्तहेम्नाः ॥१०॥

पापा इति । पतङ्गारपतङ्गपुत्रपाता: = सूर्य—भौम—शनि—राहव:, पताक: = केतु:, गलितान्जिज: = क्षीणचन्द्र:, एते पापा: सन्ति । तै: पापै:, युत: = सहित:,

विबुध:=बुधोऽपि पापो भवति । **भेज्याखिलेन्दुग्रवियुक्तहेम्ना:**=शुक्र—गुरु—**पूर्णचन्द्र**--पापरहितबुधा:, सौम्या:=शुभा: सन्ति ।

सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु एवं क्षीण चन्द्रमा पाप श्रेणी में आते हैं। बुध यदि पापग्रहों से युक्त हो तो वह भी पाप माना जाता है।

शुक्र, गुरु, पूर्ण चन्द्रमा एवं पापरहित बुध ये शुभग्रह हैं।

सामान्यतया मंगल, शनि, राहु पापग्रह हैं एवं गुरु, शुक्र शुभ ग्रह हैं। इनके शुभत्व व पापत्व में कोई शर्त नहीं हैं।

बुध पापी ग्रहों के साथ पापी एवं शुभ ग्रहों के साथ शुभ माना जाता है।

चन्द्रमा क्षीण होने पर पापी एवं पूर्ण होने पर शुभ होता है।

सूर्य को पाप ग्रह कहा गया है लेकिन यवनाचार्य इसे पाप न मानकर क्रूर मानते हैं। कहा गया है—

क्रूर ग्रहोऽर्क: कुजसूर्यजौ च पापौ शुभा: शुक्रशशांकजीवा: ।
सौम्यस्तु सौम्यो व्यतिमिश्रितोऽन्यवर्गस्तु तुल्यप्रकृतित्वमेति ।।
(यवनाचार्य)

उत्तर कालामृत में शुभाशुभत्व निर्णय का एक अन्य निराला प्रकार बताया गया है—

क्षीण चन्द्रमा, बुध, शुक्र, पूर्ण चन्द्रमा व गुरु क्रमश: २५%, ५०%, ७५% व शतप्रतिशत शुभ फल करते हैं।

गुरु व शुक्र शुभभावेश या शुभराशिस्थ होने पर विशेष शुभ होते हैं।

क्षीण चन्द्रमा, पापी बुध, सूर्य, राहु व मंगल, केतु व शनि क्रमश: पाद वृद्धि से पूर्वोक्त प्रकार से अशुभ फल करते हैं।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि गुरु व पूर्ण चन्द्रमा, शुक्र, बुध चन्द्रमा उत्तरोत्तर कम शुभ हैं।

इसी प्रकार केतु व शनि, राहु व मंगल, सूर्य, पापी बुध व क्षीण चन्द्रमा उत्तरोत्तर कम अशुभ हैं।

पूर्ण व क्षीण चन्द्र का ज्ञान :

मध्यो मृगाङ्क: सितपक्षपक्षते:
कालस्य तिथ्यन्तमथाखिल: शशी।

एकादशीतोऽह्नितिथेरिहान्तिमं
कृष्णस्य षष्ठ्याः कृश इन्दुरुच्यते ॥११॥

मध्य इति। शुक्लपक्षस्य प्रतिपदः कालस्य तिथ्यन्तं शुक्लदशम्यवसानं यावन्मध्योऽर्द्धबिम्बः, मृगाङ्कः=चन्द्रो ज्ञेयः। एकादशीतः शुक्लपक्षस्यैकादशी-तिथेरह्नितिथेरन्तिमं कृष्णपंचमीपर्य्यन्तं, अखिलः परिपूर्णबिम्बः पूर्णबलीति यावत्। शशी=चन्द्रो ज्ञेयः। कृष्णस्यासितपक्षस्य षष्ठीतिथेरमावास्यान्तं यावत् कृशः क्षीणः, अल्पबिम्बो वा अल्पबलीति यावत्। इन्दुः=चन्द्रः, उच्यते=कथ्यते। बुधैरिति शेषः।

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से शुक्ल पक्ष की दशमी तक चन्द्रमा आधा बिम्ब लेकिन वर्धमान होने से **मध्य चन्द्र** होता है।

शुक्ल एकादशी से कृष्ण पक्ष की पंचमी तक **पूर्ण चन्द्र** होता है।

कृष्ण पक्ष की षष्ठी से अमावस्या तक **क्षीण चन्द्र** होता है।

उक्त मत जातक पारिजात एवं यवन मत के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। दोनों ही मतों में शुभदृष्ट चन्द्रमा सदैव शुभ माना गया है—

सौम्यैस्तु दृष्टो बलवान् सदैव ॥
(यवन)

ग्रहों का प्रकृत्यादि विभाग :

आचार्य्येनकुजा नरा मृदुविदौ षण्ढौ स्त्रियौग्लौकवी
नाथा वाडवतो गुरू कुजरवी ज्ञेन्दूशनिः स्युः क्रमात्।
भौमाद्या वशिनोऽनलक्षितिनभःपाथोऽनिलानां स्मृता
स्तज्ज्ञैः सत्वतमोरजांसि तरणीन्द्विज्याः कुजार्कौ ज्ञभौ ॥१२॥

आचार्य्येति। आचार्य्येनकुजाः=गुरु—रवि—भौमाः, नराः=पुरुषाः। मृदु-विदौ=शनि—बुधौ, षण्ढौ=नपुंसकौ। ग्लौकवी=चन्द्र—शुक्रौ, स्त्रियौ बोध्यौ।

तथोक्तं बृहज्जातके—

"बुधसूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ शशिशुक्रौ युवती नराश्च शेषाः" इति।

नाथा इति। गुरू=गुरु—शुक्रौ, कुजरवी=भौमसूर्यौ, ज्ञेन्दू=बुध—चन्द्रौ, शनिः=सौरिः, एते क्रमात्=परिपाट्याः, वाडवतः=ब्राह्मणवर्णतः, नाथाः=स्वामिनः स्युः।

प्रकृत्यादि चक्र

	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
पुरुष-स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	नपुंसक	पुरुष	स्त्री	नपुंसक
वर्ण	क्षत्रिय	वैश्य	क्षत्रिय	वैश्य	ब्राह्मण	ब्राह्मण	शूद्र
पंचतत्त्व	—	—	अग्नि	भूमि	आकाश	जल	वायु
त्रैगुण्य	सतोगुण	सतोगुण	तमोगुण	रजोगुण	सतोगुण	रजोगुण	तमोगुण
काल	अयन	क्षण	दिन	ऋतु	मास	पक्ष	वर्ष
रंग	रक्तश्याम	गौर	गौररक्त	दूर्वाश्याम	गौर	श्यामल	कृष्ण
वर्ण स्वामित्व	ताम्र	श्वेत	रक्त	हरा	पिंगल	चित्र	कृष्ण
अधिदेवता	अग्नि	वरुण	कार्तिकेय	विष्णु	कृष्ण	पार्वती	ब्रह्मा

भौमाद्या इति। अनलादीनां पञ्चानां महाभूतानां पञ्च ग्रहा भौमाद्याः क्रमेण वशिनः। तद्यथा—अनलस्याग्नेर्भौमो मङ्गलो वशी, भौमोऽग्नेः स्वामीत्यर्थः। एवं क्षितेर्भूमेर्बुधः। नभस आकाशस्य गुरुः। पाथसो जलस्य शुक्रः। अनिलस्य वायोः शनिः स्वामी। तज्ज्ञैर्ज्योतिर्विद्भिः स्मृताः कथिताः।

सत्वेति। तरणीन्द्विज्याः=सूर्य—चन्द्र—गुरवः। कुजार्कौ=भौम—शनी। ज्ञभौ=बुधशुक्रौ। एते यथाक्रमं सत्वादिगुणाधिपतयो ग्रहा ज्ञेयाः। अर्थात्सूर्यचन्द्र-गुरवः सत्वसंज्ञाः। भौमशनी तमःसज्ञौ। बुधशुक्रौ रजःसज्ञौ बोध्यौ।

सूर्य, मंगल व गुरु पुरुष ग्रह हैं। शनि व बुध नपुंसक हैं। चन्द्रमा व शुक्र स्त्री ग्रह हैं।

गुरु व शुक्र ब्राह्मणों के, बुध व चन्द्रमा वैश्यों के, मंगल व सूर्य क्षत्रियों के व शनि शूद्रों के स्वामी हैं।

मंगल अग्नि तत्त्व का, बुध पृथ्वी तत्त्व का, गुरु आकाश तत्त्व का, शुक्र जल तत्त्व का व शनि वायु तत्त्व का स्वामी है।

सूर्य, चन्द्र व गुरु सतोगुण प्रधान, मंगल शनि तमोगुण प्रधान, बुध, शुक्र रजोगुण प्रधान ग्रह हैं।

ग्रहों का काल वर्णादि विभाग :

तिग्मांशोरयनं क्षणो दिनमृतुर्मासो दलं हायनो
रक्तश्याम इनो यमोऽसिततनुर्गौरास्र आरोऽथवित्।
दूर्वाश्यामसमः शशाङ्कसचिवौ गौरौ सितः श्यामलो
भानोस्ताम्रसितक्षतानि हरितः पीतः सुचित्रोऽसितः ॥१३॥

तिग्मांशोरिति। तिग्मांशोः सूर्यात्प्रभृत्ययनानि कालनिर्देशः। तत्रायननिर्देश-स्तिग्मांशोः सूर्यात्, क्षणो मुहूर्त्तस्तन्निर्देशश्चन्द्रात्, दिनं दिवसस्तन्निर्देशो मङ्गलात्, ऋतुर्मासद्वयात्मकस्तन्निर्देशो बुधात्, मासनिर्देशो गुरोः, दलं मासार्द्ध पक्षस्त-न्निर्देशः शुक्रात्, हायनः नसंव्वत्सरस्तन्निर्देशः शनेः।

तथा च मणित्थः

"लग्नांशकपतितुल्यः कालो लग्नोदिनांशसमसंख्यः।
वक्तव्यो रिपुविजये गर्भाधानेऽथ कार्यसंयोगे।।" इति।

रक्तश्याम इति। रक्तश्चासौ श्यामश्च रक्तश्यामः पाटलपुष्पवर्ण इत्यर्थः। एवं विध इनः सूर्यः। यमः शनिः, असिततनुः कृष्णशरीरः। गौरश्चासावस्रश्च गौरास्रः

पद्मपत्राभः, एवं विध आरो भौमः। अथानन्तव्यार्थे। विद्बुधः, दूर्वाश्यामसभः शाद्वलवर्णः। शशाङ्कसचिवौ=चन्द्र—गुरू, गौरौ श्वेतवर्णौ अवदातः सितो गौर इत्यभिधानात्। सितः शुक्रः श्यामलः श्यामवर्णो नातिगौरो नातिकृष्ण इति।

तद्यथा—ताम्रवर्णस्य सूर्यः स्वामी, सितस्य श्वेतवर्णस्य चन्द्रः, क्षतस्य रक्तस्य भौमः, हरितस्य शुकवर्णस्य बुधः, पीतस्य हरिद्रासदृशस्य गुरुः, सुचित्रस्य नानावर्णस्य शुक्रः, असितस्य कृष्णवर्णस्य शनिः स्वामी अस्ति।

प्रयोजनम्—हृतनष्टादिद्रव्यवर्णज्ञानं, जननेऽनुयोगे चोक्तद्रव्याप्तिरन्यथा हानिः, पुष्करपूजायां तद्वर्णपुष्पपूजेति।

सूर्य अयन का, चन्द्रमा क्षण का, मंगल दिन का, बुध ऋतु का, गुरु मास का, शुक्र पक्ष का व शनि वर्ष का स्वामी है।

सूर्य रक्तश्याम वर्ण का, चन्द्रमा गौर वर्ण का, मंगल लालिमा लिए गौर वर्ण का, बुध का घास के समान सांवला, गुरु का गोरा, शुक्र का साधारण सांवला, शनि का काला रंग है।

लेकिन सूर्य ताम्र वर्ण का स्वामी है। चन्द्रमा सफेद रंग वाली वस्तुओं का स्वामी है। मंगल लाल रंग का, बुध हरे रंग का, गुरु का हल्दी के समान पीला, शुक्र बहुरंगी वस्तुओं का, शनि काली वस्तुओं स्वामी है।

प्रश्न के समय या नष्टजातक ज्ञान के समय गर्भाधान, रिपु विजय, कार्य-सिद्धि आदि में प्रश्नलग्न में जिस ग्रह का नवांश हो उस नवांशेश के आधार पर नवांश संख्यातुल्य अयनादि काल बताना चाहिए।

अर्थात् लग्न में यदि दूसरा नवांश सूर्य का हो तो दूसरे अयन में कार्य सिद्ध होगा। यही प्रचलित मत है। कुछ विद्वान् कहते हैं कि प्रश्न लग्न का नवांशेश लग्न नवांश से जितने नवांश आगे हो, उतने ही संख्यक अयन क्षणादि काल में कार्य सिद्ध होता है। यह गौण मत है। इन दोनों मतों का उल्लेख भट्टोत्पल ने किया है।

हमारे विचार से प्रश्न लग्न में जो नवांश उदित हो, उस नवांश की संख्या तुल्य काल में कार्य सिद्धि होती है। इस मत का समर्थन मणित्थाचार्य एवं कल्याणवर्मा के मत से होता है। मणित्थ का वचन उद्धृत है। कल्याणवर्मा का भी यही कथन है। सारावली के श्लोक का पाठ मणित्थ के उक्त संस्कृत टीकोद्धृत श्लोक से बहुत कुछ मिलता है।

कल्पना कीजिए कि दिनांक १०-६-१६६० ई० को दोपहर १२.१५ बजे किसी ने कार्य मिद्धि का प्रश्न किया। उस समय सिंह लग्न में वृश्चिक का आठवां नवांश है। नवांशेश मंगल है। मंगल दिन का अधिपति है, अतः प्रश्न दिन से आठवें दिन (नवांश संख्यातुल्य) कार्य सिद्ध होगा। यदि लग्न में कार्य सिद्धि के अन्य योग न दिखें तो आठ दिनों तक भी कार्य सिद्ध नहीं होगा। अतः पहले सामान्य प्रश्न शास्त्र के नियमों से कार्य की सिद्धि का निश्चय कर सिद्धि के काल का निर्णय करने में उक्त नियम का प्रयोग करना चाहिए।

प्रकृत श्लोक में आगे ग्रहों के स्वाभाविक वर्ण एवं वर्णस्वामित्व बताया गया है। प्रश्न या जातक में सर्वाधिक बली ग्रह के वर्णतुल्य नष्ट वस्तु, चोर आदि का वर्ण निश्चय किया जाता है।

ग्रहों के अधिदेवता व दिशाएं :

शिखिवरुणविशाखोपेन्द्रकृष्णागकन्याः
कमलभव इभास्यो विश्वकर्म्माऽधिदेवाः।
इनत इनसितासृक्सैंहिकेयार्कसूनु-
विधुविधुभवपूज्याः पर्वतः स्वामिनः स्युः॥१४॥

शिखीति। इनतः सूर्याद् अर्थाद्रविमारभ्य केत्वन्तानां नवानामधिदेवा ग्रहस्वामिनः स्युरित्यर्थः। सूर्यस्य शिखग्निरधिदेवः स्वामी, चन्द्रस्य वरुणो जलमिति यावत्, भौमस्य विशाखः कार्त्तिकेयः, बुधस्योपेन्द्रो विष्णुः, गुरोः कृष्णो वासुदेवः, शुक्रस्यागकन्या अगस्य पर्वतस्य हिमवतः कन्या पुत्री पार्वतीत्याशयः। शनेः कलभवः कमलाद् भवतीति कमलभवो ब्रह्मा। राहोरिभास्यः, इभो हस्ती इभ आस्यं मुखं यस्य च इभास्यो गणेशः। केतोर्विश्वकर्मा देवरथकारः, अधिदेवोऽस्ति।

तथा च ग्रन्थान्तरे

"अतः परं प्रवक्ष्यामि यो देवो यो ग्रह स्मृतः।
अग्निरर्कः स्मृतो धीरैः सोमो वरुणः प्रकत्तितः॥

अङ्गारकः कुमारश्च बुधश्च भगवान् हरिः।
बृहस्पतिः स्मृतो विष्णुः शुक्रो देवी च पार्वती॥

प्रजापतिः शनिश्चैव राहुर्ज्ञेयो गणाधिपः।
विश्वकर्मा स्मृतः केतुर्ये ग्रहास्ते सुराः स्मृताः॥" इति।

इनेति। पूर्वत इति ल्यब्लोपे पञ्चमी। पूर्वमारभ्येशानान्तानामष्टानां दिशां क्रमेण इनसितासृक्सैंहिकेयार्कसूनुविधुविधुभवपूज्याः=सूर्य— शुक्र— भौम— राहु— शनि—चन्द्र—बुध—गुरवः स्वामिनः पतयः स्युः। तत्र प्राच्यां दिशि इनः सूर्योऽधिपतिः। पूर्वदक्षिणस्यां सितः शुक्रः, दक्षिणस्यामसृग् भौमः, दक्षिणपश्चिमायां सैंहिकेयो राहुः, पश्चिमायामर्कसूनुः शनिः, पश्चिमोत्तरस्यां विधुश्चन्द्रः, उत्तरस्यां विधुभवो बुधः, उत्तरपूर्वस्यां पूज्यो गुरुः।

तथाचामरसिंह

"रविः शुक्रो महीसूनुः स्वर्भाणुर्भानुजो विधुः।
बुधोबृहस्पतिश्चैते दिशामीशास्तथा ग्रहाः।" इति।

सूर्य का अग्नि, चन्द्रमा का वरुण, मंगल का कार्त्तिकेय, बुध का विष्णु, गुरु का वासुदेव, शुक्र का पार्वती, शनि का ब्रह्मा ये ग्रहों के अधिदेवता हैं। राहु का गणेश एवं केतु का विश्वकर्मा अधिदेव हैं।

पूर्व दिशा का अधिपति सूर्य, अग्नि कोण का शुक्र, दक्षिण का मंगल, नैऋत्य का राहु, पश्चिम का शनि, वायव्य का चन्द्र, उत्तर का बुध, ईशान का बृहस्पति अधिपति है।

सारावली व बृहज्जातक में अधिदेवता पृथक् बताए गए हैं। यहां हमने प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुरोध से ही ऐसा लिखा है। जिस ग्रन्थान्तर को प्रमाण रूप में संस्कृत टीका में उद्धृत किया गया है, उसकी प्रामाणिकता नाम जाने बिना नहीं की जा सकती।

बृहज्जातक में अग्नि, जल, कार्त्तिकेय, केशव, इन्द्र, इन्द्राणी व प्रजापति ये सूर्यादि क्रम से देवता माने हैं। यही बात कल्याणवर्मा भी कहते हैं—

पावकजलगृहकेशवशक्रशचीवेधसः पतयः।

(सारावली)

अनिष्ट ग्रह निवारण में उक्त अधिदेवों की पूजा करनी चाहिए। चोर का या प्रश्नगत व्यक्ति का नाम जानने में भी बलवान् ग्रह के अधिदेव के पर्यायों में से नाम जानना चाहिए, ऐसा प्राचीन सम्प्रदाय है।

दिशा बताने का प्रयोजन है कि जिस दिशा में यात्रा, चढ़ाई आदि करनी हो, उसी दिशा के अधिपति एवं तदधिदेवता की पूजा कर यात्रा प्रवासादि करने से लाभ होता है। कहा गया है—

पूर्वादिग्रहदेवां स्तन्मन्त्रैः समभिपूज्य तामाशाम्।
कनकगजवाहनादीन् प्राप्नोति नृपोऽरितः शीघ्रम्॥
(सारावली)

ग्रहों की ऋतुएं :

हेमन्त इज्यस्य कवेर्वसन्तो
ग्रीष्मोऽस्रभास्वत्तमसां सुधांशोः।
वर्षाऽर्कसूनोः शिशिरो बुधस्य
शरत्त्रिभागैस्तनुगेषु तेषु॥१५॥

हेमन्त इति। इज्यस्य गुरोर्हेमन्तः प्रशल ऋतुः। कवेः शुक्रस्य वसन्तः पुष्पकालः। अस्रो भौमः, भास्वान् रविः, तमोराहुस्तेषां ग्रीष्म उष्मागमः। सुधांशोश्चन्द्रस्य वर्षा प्रावट्। अर्कसूनोः शनेः शिशिरः शैषः। बुधस्य शरद् घनात्यय ऋतुर्ज्ञेयः। तेषु गुर्वादिषु तनुगतेषु लग्नगतेषु ऋतुर्विज्ञेयः।

तथा च श्रीबादरायणः

"ग्रीष्ममथ प्रवदन्ति कुजार्कौ।" इति।

त्रिभागैरित्यस्य वा इत्यनेन व्यवहितेन सम्बन्धः, त्रिभागै (द्रेष्काणैः) र्वोदयद्भिर्गुर्वादिसम्बन्धिभिर्हेमन्तादय ऋतवो ज्ञेयाः। एतदुक्तं भवति। लग्ने ग्रहाभावे गुरुद्रेष्काणे लग्नगते हेमन्तः, एवं शुक्रद्रेष्काणे वसन्तः, भौमरव्योर्द्रेष्काणे ग्रीष्मः, चन्द्रद्रेष्काणे वर्षा, शनिद्रेष्काणे शिशिरः, बुधद्रेष्काणे शरद्।

तथा च ग्रन्थान्तरे

"द्रेष्काणपैस्तद्गतवस्तु वाच्यं प्रश्ने प्रसूतावपि नष्टसंज्ञे।" इति।

तत्रैतज्जातं लग्ने यो ग्रहः स्थितस्तदुक्त ऋतुर्वाच्यः, बहुषु लग्नगतेषु यो बलवान्, तदृतुनिर्देशः, ग्रहाभावे द्रेष्काणपतेर्ऋतुनिर्देशः। प्रयोजनम्—नष्टजातके ऋतुर्निर्देशो हृतनष्टादिचिन्तायां च, यो ग्रहो व्याधिप्रश्ने दुःस्थस्तदृतौ तद्रोगविकार इति।

बृहस्पति की हेमन्त ऋतु, शुक्र की वसन्त ऋतु, शनि की शिशिर ऋतु, सूर्य, मंगल व राहु की ग्रीष्म ऋतु एवं बुध की शरद् ऋतु होती है। चन्द्रमा की वर्षा ऋतु है।

नष्टजातकादि में प्रश्नलग्न में जो सर्वाधिक बली ग्रह हो उसकी ऋतु में जन्म समझना चाहिए। यदि लग्न में कोई ग्रह न हो तो लग्नगत

द्रेष्काणेश के आधार पर ऋतु का निर्णय करना चाहिए। नष्टजातक, प्रश्न या जातक में यथावसर इसका प्रयोग किया जा सकता है।

ग्रहों का रसनिर्देश :

चान्द्रेः कषायः कटुरर्य्यमासृजो-
स्तीक्ष्णोऽगुपंग्वोर्मधरो बृहस्पतेः।
अम्लोरसो भस्य विधोः पटूरस-
सौख्यं वदेद्वीर्य्यवतो द्युचारिणः।।१६।।

चान्द्रेरिति। चान्द्रेर्बुधस्य कषायस्तूवरः। अर्यमासृजोः=सूर्य—भौमयोः, कटुर्मरीचादि। अगुपंग्वोः=राहु—शन्योः, तीक्ष्णः प्रसिद्धः, बृहस्पतेर्मधुरो मिष्टः। भस्य शुक्रस्य अम्लो रसः प्रसिद्धः। विधोश्चन्द्रस्य पटुर्लावण्यं रसो बोध्यः।

तथोक्तं ग्रन्थान्तरे

"बुधः कषायः कटुकौ कुजार्कौ पटुर्विधुर्मन्दतमौ च तीक्ष्णौ।
अम्लोभनाख्यो मधुरः सुरेज्यः प्रोक्ता अमी षड्रसनायकाश्च।।" इति।

'प्रयोजनम्'—निषेकावसरे यो बलवान् ग्रहस्तदुक्तरसदोहदो गुर्विण्या भवति। भोजनाश्रये चानुयोगे खेटोदये तन्नवभागोदये वा तत्कथितरसान्वितभोजनज्ञानमिति।

बुध का कसैला रस, सूर्य मंगल का कटु रस, राहु व शनि का तीखा रस, बृहस्पति का मीठा, शुक्र का खट्टा रस, चन्द्रमा का लवण रस जानना चाहिए।

सभी स्वादों को ६ भागों में बांटा गया है। मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय ये ६ रस हैं। इनके अधिपतियों के आधार पर तीसरे मास में गर्भवती की इच्छा, भोजन प्रश्न में भोजन का स्वाद, गर्भाधान के समय से बालक की तत्तत् रसप्रियता का निर्णय किया जाता है।

कसैला स्वाद केम्पाकोला, आंवला आदि का है। कटु रस से कड़वी चीजें सुरा, करेला, खीरा आदि, तीक्ष्ण रस से तीखे स्वाद वाली वस्तुएं चाट, मिर्च, मसाला आदि का ग्रहण होता है।

इस विषय में एक अन्य मत भी प्रचलित है। वराहमिहिर उसी मत को मानते हैं। तदनुसार सूर्यादि ग्रहों के रस क्रमशः इस प्रकार हैं—

कटु, लवण, तिक्त, मिश्रित, मधुर, अम्ल, कषाय।

कल्याणवर्मा भी बिल्कुल वही कहते हैं। ग्रन्थकार का उक्त मत भुवनदीपक पर आधारित है।

ग्रहों की धातु मज्जा आदि :

स्नायुः शनेर्भस्य मदं विदस्त्वग्-
गुरोर्वसाऽसृक्छशिनोऽस्थि भानोः।
मज्जाऽसृजो यस्त्रिकपः स्वधातु-
वशादुपाधिं स खगो विधत्ते॥१७॥

स्नायुरिति। शनेः शनैश्चरस्य स्नायुर्वस्नसा सारः। भस्य शुक्रस्य मदं वीर्यं सारः। विदो बुधस्य त्वक् चर्म सारः। गुरोर्बृहस्पतेर्वसा मेदः सारः। शशिनश्चन्द्रस्यासृग् रक्तं सारः। भानोः सूर्यस्य अस्थि कीकसं (हड्डीति भाषायाम्) सारः। असृजो भौमस्य मज्जा अस्थ्यान्तर्गतो धातुविशेषः (मींग इति भाषायाम्) सारो बोध्यः। यः खगस्त्रिकपः षडष्टमव्ययान्यतमस्य स्वामी स स्वदशादिषु स्वधातुवशाद् उपाधिं चिन्ताजन्यकष्टं विधत्ते कुरुते। जन्मनीतिशेषः।

प्रयोजनं तु जन्मकाले यो ग्रहो बलवांस्तत्प्रकृतिकस्तद्धातु सारश्च तत्कालजातो भवति। यद्वा हृतनष्टप्रश्ने एवं विधरूपश्चौरादयः। व्याधितप्रश्ने च लग्नस्वामि-लग्ननवांशस्वामिवशेन तद्दोषोद्भवा पीडा भवेत्।

शनि स्नायु (नाड़ी मण्डल) का, शुक्र वीर्य का, बुध खाल का, मंगल मज्जा का, गुरु चर्बी का, चन्द्रमा रक्त का, सूर्य हड्डी का, त्रिक स्थानों के स्वामी अपनी दशान्तर्दशा में अपनी-अपनी धातु में विकार या कष्ट उत्पन्न करते हैं।

जन्म के समय जो ग्रह बलवान् होता है उसी ग्रह की धातु का प्रभाव अधिक रहता है। रोगप्रश्न में रोगस्थान का ज्ञान इससे हो सकता है। अन्य मत से अष्टमस्थ ग्रह की उक्त धातु से मरण कारण का निर्णय होता है।

ग्रहों का दिग्बल का ज्ञान :

प्राच्यां बलिष्ठौ ज्ञगुरू विलग्नेऽवाच्यां
कुजेनौ दिवि शक्तिमन्तौ।
पातङ्गिरस्ते बलवान् प्रतीच्यां
बन्धौ कवीन्दू बलिनावुदीच्याम्॥१८॥

प्राच्यामिति। प्राच्यां=पूर्वस्यां विलग्ने=उदये च, ज्ञगुरू=बुध—बृहस्पती, बलिष्ठौ=बलवत्तरौ भवतः। आवाच्यां=दक्षिणस्यां, दिवि=दशमे च, कुजेनौ=भौम—रवी, शक्तिमन्तौ बलवन्तौ भवतः। प्रतीच्यां=पश्चिमस्यां, अस्ते=सप्तमे च, पातङ्गिः=शनिः 'पतङ्गस्यापत्यं पुमान् पातङ्गिः 'अत इञ्' अपत्यर्थे। बलवान्=शक्तिमान् भवति। उदिच्यां=उत्तरस्यां, बन्धौ=चतुर्थे च, कवीन्दू=शुक्र—चन्द्रौ, बलिनौ भवतः।

तथा च पुञ्जराजः

"लग्ने बुधेज्यौ बलिनौ तु पूर्वे वीर्ये यमे तद्दशमेऽर्कभौमौ।
कामेऽर्कसूनुर्बलवान् जलेशे बन्धौ निशानाथकवी कुबेरे॥" इति।

पूर्व दिशा या लग्न में बुध गुरु, दक्षिण दिशा या दशम स्थान में सूर्य मंगल, सप्तम स्थान या पश्चिम दिशा में शनैश्चर, चतुर्थ स्थान या उत्तर दिशा में शुक्र चन्द्रमा दिशा बल प्राप्त करते हैं।

उक्त ग्रह प्रोक्त स्थानों में पूर्ण दिग्बल प्राप्त करते हैं। दिग्बल-दायक स्थान से सातवें स्थान में ग्रह शून्य बली होता है। अतः मध्य में स्थित ग्रह का दिगादि बल अनुपात से जानना चाहिए।

ग्रन्थकार ने ग्रहों के शेष आवश्यक बलों को यहां नहीं बताया है। अतः पाठक वक्ष्यमाण बलों को भी मस्तिष्क में बिठा लें।

स्वोच्च, स्वमित्र नवांश राशि, मूल त्रिकोण, स्वराशि में ग्रह स्थान बली होता है। शुक्र व चन्द्रमा समराशि में व शेष विषमराशि में स्थान बली होते हैं। यह **स्थान बल** कहलाता है।

चन्द्र, मंगल, शनि रात्रि में व बुध सर्वदा एवं सूर्य, बृहस्पति, शुक्र दिन में **काल बल** प्राप्त करते हैं। शुभग्रह शुक्लपक्ष में एवं पापग्रह कृष्णपक्ष में काल बली होते हैं। साथ ही होरा में होरेश, मास में मासेश, वर्ष में वर्षेश, दिन में दिनेश बली होता है। यह काल बल है।

युद्ध में विजयी, वक्री, सम्पूर्ण किरणों वाले या चन्द्रमा के साथ समागम करने से मंगलादि पांच ग्रह चेष्टा बली होते हैं।

सूर्य व चन्द्रमा उत्तरायण में चेष्टा बली होते हैं। यह सत्याचार्योक्त सर्वप्रसिद्ध **चेष्टा बल** है।

इसके अतिरिक्त शुक्र, मंगल, सूर्य, गुरु उत्तरायण में बली होते हैं। चन्द्र व शनि दक्षिणायन में बली होते हैं। बुध स्ववर्ग में होने पर दोनों ही अयनों में बली होता है। यह **अयन बल** कहलाता है।

पुरुष ग्रह (मंगल, गुरु, सूर्य) किसी भी राशि के प्रथम द्रेष्काण में, स्त्री ग्रह (चन्द्रमा, शुक्र) तृतीय द्रेष्काण में व नपुंसक ग्रह (बुध, शनि) मध्य द्रेष्काण में बली होते हैं। यह यवनोक्त द्रेष्काण बल है।

रात्रि के प्रथम तिहाई में (त्रिभाग में) चन्द्रमा, मध्य रात्रि में शुक्र, रात्र्यन्त में मंगल बली होता है।

प्रात:काल बुध, दोपहर में सूर्य व सायंकाल में शनि वलवान् है। गुरु सर्वदा बली है। यह **दिनरात्रित्रिभाग बल** है।

इसके अतिरिक्त उक्त प्रकारों से बली ग्रह का निर्णय न होने पर **नैसर्गिक बल** से निर्णय करना चाहिए।

शनि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र, रवि ये उत्तरोत्तर अधिक निसर्ग बली होते हैं।

ग्रहों की दृष्टि :

सौरोऽभ्रशौर्य्ये सचिवस्त्रिकोण-
मीक्षेत पूर्णं रुधिरोऽम्बुरन्ध्रे।
पश्यन्ति पूर्णं खचराः कलत्रं
सर्वेऽङ्घ्रिवृद्ध्याऽपि पदादिभावान्॥१६॥

सौर इति। अभ्रं दशमं शौर्य्यं तृतीयं च सौरः शनिः पूर्णमखिलं ईक्षेत पश्येत्। त्रिकोणं पञ्चमं नवमं च सचिवो गुरुः पूर्णं पश्यति। अम्बु चतुर्थं रन्ध्रमष्टमं च रुधिरो भौमः पूर्णं पश्यति। सर्वे रव्यादयः खचरा ग्रहाः कलत्रं सप्तमभवनं पूर्णं परिपूर्णदृष्ट्या पश्यन्त्यवलोकयन्ति। पदादिभावान् दशमादीनि स्थानानि, अंघ्रिवृद्ध्या चरणोपचयतोऽपि सर्वे पूर्णमवलोकयन्ति अर्थाद् यस्मिन् स्थाने ग्रहास्तिष्ठन्ति तस्मादभ्रशौर्यादीनि स्थानानि पादवृद्ध्या विलोकयन्ति। तद्यथा—ग्रहो यस्मिन् राशौ तिष्ठति तस्मात्तृतीये वा दशमे यो ग्रहो वा यो राशिर्वर्त्तते तं पादेन चतुर्थभागदृष्ट्या पश्यति, एव त्रिकोणस्थौ ग्रहराशी अर्द्धदृष्ट्या, चतुरस्रस्थौ पादोनदृष्ट्या, सप्तमस्थौ परिपूर्णदृष्ट्या विलोकयति।

लघुजातकेऽपि

"दशमतृतीये नवमपंचमे चतुर्थाष्टमे कलत्रं च।
पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति॥" इति।

तथा च गार्गी

"दुश्चिक्यदशगान् सौरिस्त्रिकोणस्थान् बृहस्पतिः।
चतुर्थाष्टमगान् भौमः शेषाः सप्तमसंस्थितान्॥ इति।

तृतीय व दशम भाव पर शनि, पंचम व नवम पर गुरु, चतुर्थ व अष्टम पर मंगल दृष्टि रखता है।

सभी ग्रह सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। और पाद वृद्धि के आधार पर दृष्टि का निर्णय इस प्रकार है। तृतीय दशम पर एक पाद दृष्टि, पंचम नवम पर द्विपाद दृष्टि एवं चतुर्थाष्टम पर त्रिपाद दृष्टि रखते हैं। उक्त स्थानों के अतिरिक्त ग्रह अन्य भावों पर दृष्टि नहीं रखते हैं।

ये दृष्टियां ग्रहों की अविष्ठित राशि से होती हैं। इस सम्पूर्ण दृष्टि व पाददृष्टि का प्रस्तुतीकरण सारावली व बृहज्जातक के आधार पर किया गया है। सारावलीकार का कथन है—

सव्यं पश्यन्ति सदा ग्रहान् ग्रहाश्चरणवृद्धितः सर्वे।
त्रिदश त्रिकोण चतुरस्र सप्तमगताः क्रमेणैव।।

(कल्याण बर्मा)

पाराशर मत में विशेषतया राजयोग व मारकत्व विचार में पाददृष्टि का ग्रहण नहीं है। योगनिर्माण में भी पाददृष्टि सर्वथा समर्थ नहीं है। इस विषय में हमारी **लघुपाराशरी विद्याधरी** का सम्बद्ध प्रकरण देखें। लेकिन सामान्यतया पाददृष्टि व पूर्णदृष्टि मानी जाती है। अतः बहुमत यही है। भट्टोत्पल ने लिखा है—

'एतच्च बहुतराणामाचार्याणां मतम्।'

भट्टोत्पली में ही भगवान् गार्गि के वचन प्रामाण्य पर शनि, गुरु व मंगल की सप्तम भाव पर कोई दृष्टि नहीं होती, ऐसा कहा गया है। लेकिन यह मत प्रसिद्ध नहीं है। ग्रन्थोक्त मत ही यवनाचार्य, वराहमिहिर, कल्याणवर्मा, कालिदासादि का है एवं सर्वमान्य है।

अस्तु, दृष्टि के विषय में **उत्तरकालामृत** में एक विशेष दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। इसके स्वारस्य को पाठक स्वयं समझें—

'बाल्यावस्था, वृद्धावस्था, अस्तंगत, पराजित ग्रह का दृष्टिबल नहीं होता। अर्थात् दृष्टि होने पर भी दृष्टि का फल नहीं मिलता है। शुक्लपक्ष में शुभग्रह व कृष्णपक्ष में पापग्रह पूर्वाभिमुख (लग्नाभिमुख ?) देखते हैं। शुक्ल में पापग्रह व कृष्णपक्ष में शुभग्रह पश्चिम की ओर देखते हैं।

वृहस्पति पश्चिम की ओर देखता हुआ गुरु विशेष बलवान् होता है। मार्गी शनि शक्तिमान् होता है। शनि व शुक्र सूर्य के साथ भी और मंगल शत्रु राशि में भी बली होता है।'

(उत्तरकालामृत, ग्रहभाव फल, १५)

राहु-केतु का दृष्टि विचार :

मतौ मदेऽगोः परिपूर्णदृष्टि-
र्गदेऽनुजे पादमिता पदे च।
धने द्विपादप्रमिता स्वभेदृक्
त्रिपादतुल्येति शिखावतोदृक् ॥२०॥

मताविति। मतौ पञ्चमे मदे सप्तमे च, न विद्यन्ते गावो यस्य तस्यागोराहोः परिपूर्णदृष्टिः पादचतुष्टदमिता दृष्टिः स्यात्। गदे षष्ठेऽनुजे तृतीये च पादमितैकपादतुल्या दृक्। पदे दशमे धने द्वितीये च द्विपादप्रमिता पादद्वयतुल्या दृक्। स्वभे निजाधिष्ठितराशौ त्रिपादतुल्या पादत्रयमिता दृक्। इत्येवं शिखावतः केतोर्दृग्दृष्टिरपि बोध्या।

तथा च ग्रन्थान्तरे

"सुते सप्तमे पूर्णदृष्टिस्तमस्य तृतीये रिपौ पापदृष्टिर्नितान्तम्।
धने राज्यगेहार्द्धदृष्टि वदन्ति स्वगृहे त्रिपादं च केतोस्तथैव॥" इति।

पराशरहोरायां त्वस्य दृग्ज्ञानं किञ्चिद् भिन्नमुक्तं तदित्थम्

"सुतमदननवान्ते पूर्णदृष्टिं तमस्य युगलदशमगेहे चार्द्धदृष्टिं वदन्ति।
सहजरिपुविपश्यन्पाददृष्टिं मुनीन्द्रा निजभवनमुपेतो लोचनान्धः प्रदिष्टः।" इति।

पंचम एवं सप्तम भाव में राहु की पूर्ण दृष्टि होती है। तृतीय एवं षष्ठ में एकपाद दृष्टि, द्वितीय व दशम में द्विपाद दृष्टि एवं अधिष्ठित राशि में त्रिपाद दृष्टि रहती है। केतु की दृष्टि भी राहु के समान ही होती है।

इस विषय में विशेष प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। पाराशर होरा के बम्बई संस्करण में जो अधिक विश्वसनीय नहीं माना जाता है, राहु-केतु की दष्टि कुछ भिन्न प्रकार से बताई गई है—

५, ७, ९, १२ में पूर्ण दृष्टि, ३, १० में आधी दृष्टि, (द्विपाद), ३, ६ में एकपाद दृष्टि तथा अपनी राशि में अन्धा बताया गया है। विद्वान्

लोग इन्हें छायाग्रह मानकर इनकी दृष्टि का अभाव भी मानते हैं। पाराशर होरा का उक्त श्लोक हमें विश्वसनीय नहीं दिखता है।

लघुपाराशरी में 'पश्यन्ति सप्तमं सर्वे' कहकर सज्जन-रंजनीकार 'राहु समेत आठ ग्रह' यह अर्थ करते हैं। उनके मत में केतु की दृष्टि नहीं होती है। क्योंकि केतु की ग्रीवा नहीं है। कहा है—

'अथात्रसर्वशब्दोपादानाद् राह्वन्तानां दृष्टिरुक्ता'''।

(सज्जन रंजनी)

फलस्वरूप अधिकांश विद्वान् राहु-केतु का प्रभाव उसकी अधिष्ठित राशि एवं सप्तम राशि पर ही मानते हैं।

इसके अतिरिक्त जातक परिजात में वैद्यनाथ ने ग्रहों की दृष्टि के विषय में कहा है—

"अथोर्ध्वदृष्टिदिननाथभौमौ, दृष्टिकटाक्षेण कवीन्दुसून्वोः।
शशांकगुर्वोः समभागदृष्टिरधोक्षिपातस्त्वहिनाथशन्योः॥"

(जातकपारिजात, २.३२)

'सूर्य मंगल ऊपर की ओर देखते हैं। बुध शुक्र कटाक्ष से, चन्द्र गुरु समदृष्टि से और राहु व शनि अधोदृष्टि रखते हैं।'

ग्रह मैत्री विचार :

सखाय इज्येन्दुकुजाः खरांशोर्बुधः
समः कोणकवी विपक्षौ।
विधोर्ज्ञभानू सुहृदाविहान्ये
समा रसाजस्य शशीनजीवाः॥२१॥
हिताः सपत्नो विबुधो भमन्दौ
समौ विदः काव्यरवी सखायौ।
समा यमाचार्य्यकुजा भपोऽरि-
र्गुरोर्वयस्या विधुमङ्गलेनाः॥२२॥
यमः समोऽरी ज्ञसितौ सितस्य
समौ कुजेज्यौ ज्ञशनी वयस्यौ।
अरी रविन्दू रविजस्य भज्ञौ
हितौ समानः सचिवो द्विषोऽन्ये॥२३॥

सखाय इति। हिता इति। यम इति च। खरांशो: = सूर्यस्य, इज्येन्दुकुजा: = गुरु—चन्द्र—भौमा:, एते त्रय:, सखाय: = मित्राणि सन्ति। बुध: प्रसिद्ध:, समो मध्यस्थो न शत्रुर्नमित्रमुदासीन इत्यर्थ:। कोणकवी = शनि—शुक्रौ, विपक्षौ = शत्रू स्त:। विधोरिति। विधो: = चन्द्रस्य, ज्ञभानू = बुध—सूर्यौ, सुहृदौ = मित्रे स्त:। अन्ये = शेषा: (भौमगुरुशुक्रशनय:) समा मध्यस्था उदासीना इत्यर्थ:।

रसाजस्येति। रसाजस्य = भौमस्य, शशीनजीवा: = चन्द्र—सूर्य—गुरव:, हिता: = मित्राणि सन्ति। विबुध = बुध: सपत्न: = शत्रु:, अस्ति। भमन्दौ = शुक्र—शनी, समौ = उदासीनौ, स्त:। विद इति। विद: = बुधस्य, काव्यरवी = शुक्र—सूर्यौ, सखायौ = मित्रे, स्त:। यमाचार्य्यकुजा: = शनि—गुरु—भौमा:, समा: = उदासीना: सन्ति। भप: = चन्द्र:, अरि: = शत्रु:, अस्ति।

गुरोरिति। गुरो: = बृहस्पते:, विधुमङ्गलेना: = चन्द्र—भौम—सूर्या:, वयस्या = मित्राणि, सन्ति। यम: = शनि:, सम: = मध्यस्थ:, अस्ति। ज्ञसितौ = बुध—शुक्रौ, अरी = शत्रू, स्त:। सितस्येति। सितस्य = शुक्रस्य, कुजेज्यौ = भौम—गुरू, समौ = उदासीनौ, स्त:। ज्ञशनी = बुध—शनी, वयस्यौ = मित्रे, स्त:। रवीन्दू = सूर्य—चन्द्रौ, अरी = शत्रू स्त:। रविजस्येति। रविजस्य = शने:, भज्ञौ = शुक्र—बुधौ, हितौ — मित्रे, स्त:। सचिव: = गुरु:, समान: = मध्यस्थ:, अस्ति। अन्ये = इतरे (सूर्य—चन्द्र—भौमा:) द्विष: = शत्रव:, सन्ति।

सूर्य के गुरु, चन्द्र व मंगल मित्र हैं, बुध सम है और शनि शुक्र शत्रु हैं।

चन्द्र के सूर्य व बुध मित्र एवं शेष सभी ग्रह सम हैं।

मंगल के गुरु, सूर्य, चन्द्र मित्र हैं, बुध शत्रु एवं शुक्र शनि सम हैं।

बुध के सूर्य शुक्र मित्र हैं। शनि गुरु मंगल सम एवं चन्द्र शत्रु हैं।

बहस्पति के सूर्य चन्द्र मंगल मित्र हैं। शनि सम एवं बुध शुक्र शत्रु हैं।

शुक्र के गुरु मंगल सम, बुध शनि मित्र एवं सूर्य चन्द्र शत्रु हैं।

शनि के शुक्र बुध मित्र, गुरु सम व शेष ग्रह शत्रु हैं।

वास्तव में उक्त ग्रह मैत्री सत्याचार्य द्वारा निर्धारित की गई है। इसी को वराहादि आचार्यों ने माना है। यवनोक्त मैत्री इससे भिन्न है, जो भारतीय आचार्यों ने स्वीकार नहीं की है। यवन मत में शत्रु व मित्र ही होते हैं, सम नहीं। इसे वराहमिहिर ने अस्वीकार कर दिया

ग्रह मैत्री चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चन्द्र, मंगल, गुरु	सूर्य, बुध	सूर्य, चन्द्र, गुरु	सूर्य, शुक्र	सूर्य, चन्द्र, मंगल	बुध, शनि	बुध, शुक्र
सम	बुध	मंगल, गुरु, शुक्र, शनि	शुक्र, शनि	मगल, गुरु, शनि	शनि	मंगल, गुरु	गुरु
शत्रु	शुक्र, शनि	—	बुध	चन्द्र	बुध, शुक,	सूर्य, चन्द्र	सूर्य, चन्द्र, मंगल

था। सत्याचार्य का मत ही आज सर्वत्र प्रचलित है। उक्त मैत्री सत्य मत पर ही आधारित है। सत्योक्त मैत्री के विषय में समझिए—

ग्रह अपनी मूल त्रिकोण राशि से ५, ६, २, १२, ४, ८ एवं स्वोच्च राशीश ग्रह मित्र होते हैं। यदि उक्त स्थानों के अतिरिक्त ग्रह हों तो वे शत्रु होंगे। एवं जिस ग्रह की एक राशि उक्त स्थानों में व दूसरी अनुक्त स्थानों में पड़े तो वे सम होंगे—

सुहृदस्त्रिकोणभवनाद्ग्रहस्य सुतभे व्ययेऽथ धनभवने।
स्वजने निधने धर्मे स्वोच्चे च भवन्ति न शेषाः॥

(सत्याचार्य)

इसी सिद्धान्त पर उक्त मैत्री बताई गई है। उदाहरण द्वारा समझिए—

मंगल की मूल त्रिकोण राशि मेष है। मेष से द्वितीय में वृष है। इसका स्वामी शुक्र है। शुक्र की दूसरी राशि तुला सप्तम में पड़ती है जो अनुक्त स्थान है। अतः शुक्र सम हुआ।

इसी प्रकार शनि की एक राशि मकर मंगल की उच्च है तथा दूसरी राशि अनुक्त है। अतः शनि भी सम हुआ।

बुध की दोनों राशियां ३, ६ भावों में पड़ती हैं। वह शत्रु हुआ।

सूर्य की राशि पंचम में होने से व चन्द्र की राशि चतुर्थ में होने से वे मित्र हुए। इसी प्रकार मेष में नवम में धनु व द्वादश में मीन होने से गुरु भी मित्र हुआ। इसी प्रकार सभी ग्रहों की मैत्री सिद्ध होती है। सुविधार्थ चक्र दिया गया है।

राहु-केतु की मैत्री :

राहोः समौ केतुबुधौ द्विषोऽर्का-
राब्जा हिता हेलिजकाव्यजीवाः।
केतोः समानौ ज्ञगुरू सितार्कौ
शत्रू सखायो भगभौमभेशाः॥२४॥

राहोरिति। राहोः=शिरोग्रहस्य, केतुबुधौ समौ=मध्यौ, स्तः। अर्काराब्जाः=सूर्य—भौम—चन्द्राः, द्विषः=शत्रवः, सन्ति। हेलिजकाव्यजीवाः=शनि—शुक्र—गुरवः, हिताः=मित्राणि सन्ति। केतोरिति। केतोः=कबन्धग्रहस्य,

ज्ञगुरु==बुध—जीवौ, समानौ==मध्यौ, स्तः। सितार्की==शुक्र—शनी, शत्रू—रिपू, स्तः। भगभौमभेशाः==सूर्य—भौम—चन्द्राः, सखायः==मित्राणि, सन्ति।

तथा च ग्रन्थान्तरे

"सौरीज्यशुक्राः सुहृदोऽरयोऽर्काराब्जा अगोः केतुबुधौ समानौ।
केतो रिपू शुक्रशनीरवीन्दुभौमाः सखायौ ज्ञगुरु समानौ॥" इति।

राहु के केतु व बुध सम हैं। सूर्य, चन्द्र व मंगल शत्रु हैं। शनि, शुक्र एवं गुरु मित्र हैं।

केतु के शुक्र व शनि शत्रु हैं। बुध, गुरु सम हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल मित्र हैं।

राहु-केतु की मैत्री ऋषि सम्मत नहीं है। सर्वार्थचिन्तामणि में उक्त मैत्री का उल्लेख है। हम समझते हैं कि उक्त मैत्री बाद के आचार्यों ने राहु का कुम्भ एवं केतु का सिंह मूल त्रिकोण मानकर सत्योक्त सिद्धान्त पर तैयार कर दी है तथापि यह आर्ष मत नहीं है। मन्त्रेश्वर अपना अलग मत रखते हैं—

'राहु व केतु के मित्र बुध, शुक्र, शनि हैं। मंगल सम है। सूर्य, चन्द्र, गुरु शत्रु हैं।'

मित्राणि विच्छनिसितास्तमसोर्द्वयोस्तु।
भौमः समो निगदितो रिपवश्च शेषाः॥
(फलदीपिका, २.३५)

तात्कालिक मैत्री विचार :

स्वान्त्यायसोत्थास्पद सौख्यसंस्था
येऽभीष्टकाले सुहृदः खगास्ते।
ये खेचरा एकभगाः सुतार्य्य-
स्तायुर्नवस्था रिपवस्तथा ते॥२५॥

स्वान्त्येति। ये खगा ग्रहाः, स्वान्त्यायसोत्थास्पद सौख्य संस्थाः==द्वितीय—द्वादश—एकादश—तृतीय—दशमचतुर्थस्थानगताः, स्वस्मादिति शेषः। तेऽभीष्टकाले==तत्काले, सुहृदः==मित्राणि भवन्ति। तथा च खेचरा ग्रहाः, एकभगा एकराशिगताः, सुतार्य्य—स्तायुर्नवस्थाः==पंचम—षष्ठ—सप्तम—अष्टम—नवमस्थानस्थिताश्च, स्वस्मादिति शेषः। तेऽभीष्टकाले तत्काले, रिपवः शत्रवो भवन्ति।

प्रत्येक ग्रह की अधिष्ठित राशि से २, ३, ४, १०, ११, १२ भावों में स्थित ग्रह तात्कालिक मित्र होते हैं। शेष भावों में स्थित ग्रह अर्थात् १, ५, ६, ७, ८, ९ भावों में स्थित ग्रह शत्रु होते हैं। तात्कालिक मैत्री में सम विचार नहीं होता।

पंचधा मैत्री विचार :

द्विधेष्टता स्यादधिमित्रता चेद्
द्विधारिता यद्यतिशत्रुता स्यात्।
समानमित्रं सुहृदेव मित्रा
रिता समः शत्रुसमोऽरिरेव ॥२६॥

द्विधेति। येषां ग्रहाणां द्विधा=तत्काले निसर्गे च चेद्यदि, इष्टता=मित्रता स्यात्तदा तेषां अधिमित्रता भवेत्। तथा येषां ग्रहाणां द्विधा=तत्काले निसर्गे च, यदि अरिता=शत्रुता स्यात्तदा तेषामतिशत्रुता भवेत्। समानमित्रं=एकत्र समानमन्यत्र मित्रं तदा केवलं सुहृदेव मित्रमेव। मित्रारिता=एकत्र मित्र-मन्यत्रारिस्तदा समो भवति। शत्रुसमः=एकत्र शत्रुरन्यत्र समस्तदा अरिः= शत्रुरेव भवतीति।

जो ग्रह निसर्ग एवं तात्कालिक दोनों प्रकार से मित्र हों, वे 'अधिमित्र' कहलाते हैं।

जो दोनों प्रकार से शत्रु हों वे 'अधिशत्रु' कहलाते हैं।

जो एकत्र मित्र व अन्यत्र सम हों वे 'मित्र' होते हैं। एकत्र शत्रु व अन्यत्र सम होने पर 'शत्रु' कहलाते हैं।

एक स्थान पर मित्र व दूसरे स्थान पर शत्रु हों तो वे 'सम' होते हैं।

यही अधिमित्र, मित्र, अधिशत्रु, शत्रु एवं सम भेद से पांच प्रकार की मैत्री अर्थात् पंचधा मैत्री होती है।

निसर्ग मैत्री एवं तात्कालिक मैत्री की तुलना से इसे जाना जाता है, यह बात स्पष्ट हो चुकी है। तात्कालिक मैत्री भी सत्याचार्य के मतानुसार ही ग्राह्य है। वही पीछे बताई गई है। यवन मत में स्वोच्चस्थ ग्रह भी तात्कालिक मित्र होता है, जो आचार्यों को स्वीकार नहीं है।

ग्रहों का मारकेशादि विचार :

जामित्रार्थागारपौ मारकौ स्तः
सर्वेऽसन्तः अष्टषड्लाभनाथाः ।
सन्तः सर्वेकोणपा केन्द्रपालाः
सन्तोऽसन्तः शोभनाः शोभनान्ये ।।२७।।

जामित्रेति। यौ ग्रहौ, जामित्रार्थागारपौ=सप्तम—द्वितीयस्वामिनौ भवतस्तौ मारकौ=मारकेशसंज्ञकौ स्तः।

सर्व इति। यदि सर्वे=निखिला रव्यादयः सप्तग्रहा एव, अष्टषड्लाभनाथाः=तृतीयाष्टम—षष्ठ—लाभस्वामिनः स्युस्तदा ते, असन्तः=अशुभा भवन्ति।

सन्त इति। सर्वे निखिला रव्यादयः सप्तग्रहा यदि कोणपाः=पञ्चमनवमस्वामिनः स्युस्तदा सन्तः शोभनाः शुभफलप्रदा इत्यर्थः।

केन्द्रपाला इति। सन्तः सौम्यग्रहाः चन्द्रबुधगुरुशुक्राः, यदि केन्द्रपालाः केन्द्राणां लग्नचतुर्थसप्तमदशमानां पालाः स्वामिनः स्युः, तर्हि अशोभनाः शुभफलप्रदा न भवन्तीत्यर्थः शोभनान्ये शोभनेभ्यः शुभग्रहेभ्योऽन्य इतरे अर्थात् पापग्रहा रवि-मङ्गलसौरा इत्यर्थः। यदि केन्द्रस्वामिनः स्युस्तदा शोभनाः सौम्य अशुभफलप्रदा न भवन्तीत्यर्थः।

लग्न से द्वितीय व सप्तम स्थानों के स्वामी मारक होते हैं। तृतीय, षष्ठ, अष्टम व एकादश स्थानों के स्वामी चाहे निसर्ग पाप या शुभ भी हों तो भी सदा 'पाप फल' करेंगे।

नवमेश पंचमेश सभी ग्रह (शुभ या पाप) सदैव शुभफल करेंगे।

केन्द्र १, ४, ७, १० स्थानों के अधिपति यदि शुभ हों तो शुभ फल नहीं देंगे। यदि निसर्ग पाप हों तो पाप फल नहीं देंगे।

यहां ये सिद्धान्त पाराशरी के आधार पर बताए गए हैं। यद्यपि विस्तृत विवेचन हम अपनी **लघुपाराशरी विद्याधरी** में कर चुके हैं, तथापि दिङ्मात्र बताया जा रहा है।

अष्टम व अष्टम से अष्टम (तृतीय) स्थान आयु स्थान हैं। इनके व्यय भाव अर्थात् २, ७ के स्वामी ग्रह मारकेश होते हैं। इनमें भी सप्तम बली मारक होता है।

अष्टमेश सदा पापी होता है। वही लग्नेश भी साथ-साथ हो तो कुछ कम पापी होता है।

लग्नेश सदैव शुभ होता है और केवल त्रिकोणेश सदा शुभ होते हैं।

केन्द्रेश ४, ७, १० भावों के अधिपति अपने स्वाभाविक फल को स्थगित कर देते हैं। शुभ हों तो शुभ फल एवं पाप हों तो पाप फल का स्थगन कर देते हैं। इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि शुभ केन्द्रेश अशुभ फल देंगे व पाप केन्द्रेश शुभ फल देंगे, वे तो अपने स्वाभाविक फल को न देकर लगभग समत्व को प्राप्त हो जाएंगे।'

३, ६, ११ के अधिपति पाप हों तो अधिक पापी व शुभ हों तो सामान्य पापी होंगे। एतदर्थ हमारी **लघुपाराशरी विद्याधरी** का मनन करें।

ग्रहों का स्थिर कारकत्व :

तातं रवेश्चन्द्रमसोऽम्बिकां कुजात्
सोत्थं बुधान्मातुलमिज्यतोऽङ्गजम्।
सञ्चिन्तयेद्भान्महिलां मृदोर्मृतिं
दुष्टे क्षतिस्तस्य हि यस्य कारकः॥२८॥

तातमिति। रवेरादित्यात् तातं पितरम्। चन्द्रमसः शशिनोऽम्बिकां मातरम्। कुजाद् भौमात् सोत्थं भ्रातरम्। बुधात् सौम्यात् मातुलम्। इज्यतो बृहस्पतेरङ्गजं पुत्रम्। भाच्छुक्राद् महिलां स्त्रियम्। मृदोः शनेर्मृतिं मरणं सञ्चिन्तयेद्विचारयेत्। यस्य पित्रादेः सम्बन्धितः कारकः कर्त्ता ग्रहो दुष्टे त्रिके षष्ठाष्टमव्ययानामन्यतमे वर्तते हीति निश्चयेन तस्य क्षतिर्हानिः स्यादिति शेषः।

सूर्य पिता, चन्द्रमा माता, मंगल भाई, बुध मामा, गुरु पुत्र, शुक्र स्त्री एवं शनि मृत्यु का कारक है।

इनमें से जिस सम्बन्धी का कारक जन्म समय ६, ८, १२ स्थानों में हो, उसी की हानि होती है।

भावों का स्थिर कारकत्व :

स्युः कारकाः कल्पत उष्णगु-
गुरुर्वक्रो बुधेन्दू गुरुरर्कनिमङ्गलौ।
शुक्रोऽसितः सूरिरवी शनैश्चरा-
दित्यज्ञजीवा धिषणः पपीजनिः॥२९॥

स्युरिति । कल्पतो लग्नतः लग्नमारभ्य व्ययपर्य्यन्तानां भावानां, उष्णग्वादयः कारकाः कारकग्रहाः स्युः । 'तद्यथा'—लग्नस्य सूर्यः । धनस्य गुरुः । सहजस्य भौमः । सुखस्य बुधचन्द्रौ । सुतस्य गुरुः । रिपोः शनिभौमौ सप्तमस्य शुक्रः । अष्टमस्य शनिः । भाग्यस्य गुरुसूर्यौ । राज्यस्य शनिसूर्यबुधगुरवः । लाभस्य गुरुः । व्ययस्य शनिः कारकोऽस्ति ।

लग्न का सूर्य, धन का गुरु, सहज का मंगल, चतुर्थ का चन्द्रमा व बुध, पंचम का गुरु, षष्ठ का शनि व मंगल, सप्तम का शुक्र, अष्टम का शनि, नवम का सूर्य व गुरु, दशम का सूर्य बुध गुरु शनि, एकादश का बृहस्पति एवं द्वादश का शनि कारक होता है।

यह कारकत्व जातक पारिजात में बताया गया है। पाराशर होरा में एक-एक भाव का एक-एक ही कारक माना गया है। तदनुसार क्रमशः सूर्य, गुरु, मंगल, चन्द्र, गुरु, मंगल, शुक्र, शनि, गुरु, बुध, गुरु, शनि द्वादश भावों के कारक हैं।

ग्रहों के कारक वर्ष :

क्रमाद्रवेर्जातिजिना गजाश्विनो
रदा नृपाः पञ्चकृती रसाग्नयः ।
यमाब्धयोऽब्दा नियतं बलिग्रह-
समासु पुंसामुदयो विधेर्भवेत् ॥३०॥

क्रमादिति । रवेरिति 'ल्यब्लोपे पञ्चमी' । रविमारभ्य राहुपर्यन्तानामष्टानां ग्रहाणां क्रमाद् जात्यादीनि कारकवर्षाणि स्युः । 'तद्यथा'—सूर्यस्य जातिर्द्वाविंशतिः । चन्द्रस्य जिनाश्चतुर्विंशतिः । भौमस्य गजाश्विनोऽष्टाविंशतिः । बुधस्य रदा द्वात्रिंशत् । गुरोर्नृपाः षोडश । शुक्रस्य पञ्चकृतिः पञ्चविंशतिः । शने रसाग्नयः षट्त्रिंशत् । राहोर्यमाब्धयो द्विचत्वारिंशत् । नियतमिति । बलिग्रह-समासु जन्मनि सर्वेषां ग्रहाणामपेक्षया योऽधिकबली ग्रहस्तस्य वर्षेषु पुंसां नराणां नियतं निश्चयेन विधेर्भाग्यस्य 'विधिर्विधाने दैवे च' इति कोशात् । उदय उन्नतिर्भवेत् ।

तथोक्तं ग्रन्थान्तरे

"आकृत्यो जिनसम्मिता गजकरा नेत्राग्नयः षोडश
तत्त्वान्यङ्गगुणा यमोदधिमिताः सूर्यादिकानां समाः ।
यः खेटः स्वगृहे स्वतुङ्गभवने षड्वर्गशुद्धश्च य-
स्तस्याब्दे हि नृणां भवेदतिसुख भाग्योदयो निश्चितम् ॥ इति ।"

सूर्य के २२ वर्ष, चन्द्रमा के २४ वर्ष, मंगल के २८ वर्ष, बुध के ३२ वर्ष, गुरु के १६ वर्ष, शुक्र के २५ वर्ष, शनि के ३६ वर्ष, राहु के ४२ वर्ष होते हैं।

जन्म समय जो ग्रह बलवान् हो, षड्वर्ग में शुद्ध हो, अधिक अष्टक वर्ग की रेखाओं से युक्त हो, उसी ग्रह के कारक वर्ष तुल्य वर्षों की अवस्था के उपरान्त मनुष्य का निश्चय से भाग्योदय होता है।

ग्रहों की परस्पर बाधकता :

स्वर्भाणुदोषं विबुधो निहन्ति
मन्दो द्वयोर्भूतनयस्त्रयाणाम्।
दोषं चतुर्णां भृगुजस्तु पञ्च
दोषं गुरुग्लौ विनिहन्ति षण्णाम् ॥३१॥

सौम्यायने सप्तविहङ्गदोषं
हेलिर्निहन्यादथ सेन इन्दुः।
जीवोऽङ्गजे ज्ञोऽम्भसि मन्दगोऽस्ते-
ऽच्छोऽरौ कुजोऽर्थे विफलास्तनोस्ते ॥३२॥

स्वर्भाण्विति। स्वर्भाणो राहोर्दुःस्थानप्रभृतिभवदोषं विबुधो बुधो निहन्ति नाशयतीति। द्वयो राहुबुधयोर्दोषं मन्दः शनिर्हन्यात्। त्रयाणां राहु—बुध—शशीनां भूतनयो भौमो हन्यात्। चतुर्णां=राहु—बुध—शनि—भौमानां दोषं दानवार्चितः=शुक्रो हन्यात्। पञ्चानां राहु—बुध—शनि—भौम—शुक्राणां दोषं गुरुर्बृहस्पतिर्हन्यात्। षण्णां=राहु—बुध—शनि—भौम—शुक्र—गुरूणां दोषं ग्लौश्चन्द्रो विनिहन्ति। सप्तविहङ्ग दोषं समस्तग्रहकृतदोष हेलि=सूर्यो हन्यान्नाशयेत्। सूर्योऽपि चेत्सौम्या न उत्तरायणे भवेत्तदा विशेषतो निखिलग्रहदोषं नाशयति।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। सेन इनेन सूर्येण सहित इन्दुश्चन्द्रो यत्र कुत्रापि राशौ विफलः फलप्रदो न स्यान्निष्प्रभत्वात् तनोस्तात्कालिकलग्नाद् अङ्गजे पञ्चमे गुरुर्विफलः। ज्ञ=बुधः, अम्भसि चतुर्थस्थाने। मन्दगः=शनिः, अस्ते सप्तमे। अच्छः=शुक्रः, अरौ षष्ठे। कुजः—भौमः, अर्थे=द्वितीये विफलो भवतीति सर्वत्रानुवृत्तिः।

राहु के दोष को बुध दूर करता है। इन दोनों के दोष को शनि दूर करता है। राहु, बुध व शनि के दोष को मंगल दूर करता है। इन चारों के दोष को शुक्र दूर करता है। शुक्र सहित पांच ग्रहों के दोष को गुरु दूर करता है। गुरु सहित छः ग्रहों के दोष को चन्द्रमा दूर करता है एवं सातों ग्रहों के दोष को सूर्य दूर करता है। विशेषतया उत्तरायण में सूर्य दोषनिहन्ता है।

सूर्य के साथ चन्द्रमा, चतुर्थ स्थान में बुध, पंचम में गुरु, द्वितीय में मंगल, सप्तम में शनि, षष्ठ में शुक्र सर्वदा विफल होता है।

यह मत वैद्यनाथ ने प्रस्तुत किया था। कोई ग्रह यदि किसी कुण्डली में अशुभ फलदाता हो तो उसका बाधक ग्रह यदि सबल हो तो वह अशुभ फलदाता ग्रह कुछ दब जाएगा।

किसी भी ग्रह के कुप्रभाव को सर्वथा दूर नहीं किया जा सकता है। थोड़ा बहुत उसका कुप्रभाव कम हो सकता है।

कल्पना कीजिए किसी कुण्डली में राहु दुष्ट प्रभाव दिखाता है। दुष्ट स्थानों ६, ८, १२ में बैठकर अशुभ फलदाता सिद्ध होता है। तब साथ ही उस कुण्डली में बुध (विष्णु) बलवान् हो तो राहु अपना कुप्रभाव कुछ कम दिखाएगा।

एक ही साथ अकेला बुध या दोनों (राहु व बुध) अशुभ फलदाता हों तो शनि की बलवत्ता से उक्त दोष कम हो जाएगा। इसी प्रकार समझना चाहिए।

निष्कर्ष यह है कि सूर्य यदि जन्म कुण्डली में बलवान् होकर स्थित हो तो अन्य ग्रहों के कुप्रभाव को काफी हद तक कम कर देगा। इसी प्रकार चन्द्रमा भी बली हो तो उक्त प्रभाव दिखाएगा। फिर भी हम कहना चाहते हैं कि इस नियम को बहुत अधिक सटीक नहीं कहा जा सकता है। किसी सीमा तक ही यह सही हो सकता है।

इसी प्रकार दूसरे नियम को लें। सूर्य व चन्द्रमा साथ हों तो चन्द्रमा अवश्य ही लीन होकर अपना प्रभाव खो देगा, निष्फल होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं। अमावास्या में जन्म वैसे भी शुभ नहीं माना जाता है। यह बात अनुभूत है।

पंचम में बृहस्पति भी अकेला हो तो वह विशेष फलदायी नहीं होता है। हमने कई निःसन्तान या अपुत्र लोगों की कुण्डली में पंचम में

गुरु अकेला देखा है। उसी स्थान का कारक होने से उस भाव की हानि करेगा।

षष्ठ में शुक्र यदि शुभ राशि में हो तो बहुत अच्छा फल देता है। इस विषय में **भावार्थरत्नाकर** एवं **उत्तरकालामृत** में बहुत स्पष्ट मत प्रस्तुत किया गया है। हां, शनि की राशि में शुक्र ६, १२ स्थानों में विशेष अच्छा नहीं होता, ऐसा हमने अनुभव से सिद्ध पाया है। स्वयं वैद्यनाथ (जातक पारिजात २.६६) में षष्ठस्थ शुक्र को अच्छा माना है।

इसी प्रकार सप्तम में शनि व द्वितीय में मंगल मंगलीक दोष के विधायक होते हैं। दक्षिण भारत में द्वितीयस्थ पापग्रह भी मंगल दोष विधायक माना जाता है—

'धने व्यये च पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजः।'

लेकिन सप्तम में शनि तुला, मकर, कुम्भ में अच्छा माना जाता है। कदाचित् अन्य राशियों में अकेला हो तो अच्छा नहीं होगा। वैसे हमने सप्तमस्थ शनि वाले जातकों को कुछ कुन्द एवं अस्थिर मस्तिष्क वाला ही पाया है। ऐसी स्त्रियां पति की प्यारी बिल्कुल नहीं होती हैं। यदि शुभ प्रभाव हो तो ठीक है।

द्वितीय में मंगल भी १०, १, ८ राशियों में हों तो शुभ ही होगा।

चतुर्थ में बुध को पूर्ण दिग्बल प्राप्त होता है। तब वह क्योंकर विफल होगा। अतः हमारे विचार से इस श्लोक में बताए गए नियम केवल सूचना मात्र ही हैं, ये निर्भरता में न्यून ही हैं।

।। इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृते जातकभूषणे पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां ग्रहशीलाध्यायोद्वितीयः ।।

[३]

तनुभावाध्याय:

भावों के विचारणीय विषय :

लग्नाद्वपुः स्वात्स्वकुटुम्बलोचनं
सोदर्य्यतः सोदरमम्बुतोऽम्बिकाम् ।
सूनोः सुतं मातुलमामयालयात्
कान्तां कलत्रालयतो मृतिं मृतेः ॥१॥

सञ्चिन्तयेत्सन्नियतिं तपोगृहा
द्राज्यं च वृत्तिं पितरं यशः खतः ।
लब्धेरवाप्तिं निखिलं व्ययं व्यया-
त्सौख्यं भवेत्तस्य यदीश्वरो बली ॥२॥

लग्नादिति । सञ्चिन्तयेदिति च । लग्नात्=तनुभवनात्, वपुः=शरीरं 'गात्रं वपुः संहननं' इति कोशात् । सन्=पण्डितः, सञ्चिन्तयेत्=विचारयेत् । स्वाद्=धनभवनात्, स्वकुटुम्बलोचनं—धन—कुटुम्ब—नेत्रम् । सोदर्य्यतस्तृतीयात् । अम्बुतः=चतुर्थात्, अम्बिकां=मातरम् । सूनोः पञ्चमात्, सुतं=पुत्रम् । आमयालयात्=षष्ठात्, मातुलं=मातुर्भ्रातरम् । कलत्रालयतः=सप्तमात्, कान्तां=स्त्रियम् । मृतेः=अष्टमाद्, मृतिं=मृत्युम् । तपोगृहात्=नवमात्, नियतिं भाग्यं 'भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः' इति कोशात् । खतः=दशमात्, राज्यं=आधिपत्यं (राज्ञो भावः कर्म वा), वृत्तिं=जीवनं, पितरं=जनकं, यशः कीर्तिम् । लब्धेः=लाभात्, अवाप्तिं लाभम् । व्ययात्=द्वादशस्थानात्, निखिलं =सम्पूर्णं, व्ययं=विगमं अपायं वा द्रव्यनाशमिति यावत् । सञ्चिन्तयेदिति सर्वत्रानुवृत्तिः ।

यदीश्वर इति । यस्य भावस्य ईश्वरः स्वामी बली बलवान् भवेत्तस्य भावस्य सौख्यं भवेत् ।

इह ग्रहाणां पूर्णबलमुक्तं सर्वार्थचिन्तामणौ

"सार्धानि षट् तीक्ष्णकरो बलीयांश्चन्द्रस्तु षट् पञ्च वसुन्धराजः।
सप्तेन्दुजः सार्द्धरसा गुरुश्च सार्द्धानि पञ्चात्र सितो बलीयान्।।
मन्दस्तु पञ्चैव हि षड्बलानां संयोग एवापरथान्यथा स्युः। इति।

लग्न से शरीर का, द्वितीय भाव से धन, कुटुम्ब व आंख का, तृतीय भाव से भाई का, चतुर्थ भाव से माता का, पंचम भाव से पुत्र का, षष्ठ से मामा का, सप्तम से स्त्री का, अष्टम से मृत्यु का, नवम से भाग्य का, दशम से राज्य, पिता, जीविका व यश का, एकादश भाव से लाभ का एवं द्वादश भाव से सम्पूर्ण व्यय का विचार विद्वान् को करना चाहिए। जिस भाव का स्वामी बलवान् हो उसी से सम्बन्धित सुख जातक को होता है।

यहां ग्रन्थकार ने भावों का कारकत्व अत्यन्त संक्षिप्त ढंग से बताया है। विस्तृत जानकारी के लिए पाठकों को हमारी **भावमंजरी प्रणवाख्या** अथवा **उत्तरकालामृत** का अध्ययन करना चाहिए। संकेत मात्र के लिए कुछ कारकत्व यहां बताया जा रहा है—

भाव ज्ञान—तनु, धन, भ्राता, माता, पुत्र, शत्रु, पत्नी, आयु, भाग्य, राज्य, आय व व्यय ये क्रमशः बारह भाव या स्थान कहलाते हैं। इनमें क्रमशः नामों के अनुसार ही विषयों का विचार किया जाता है; जैसे—तनु भाव में तनु अर्थात् शरीर का और धन भाव में धन का इत्यादि प्रकार से समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त इन बातों का विचार भी इन भावों से किया जाता है—

(i) **प्रथम भाव**—शरीर, कुल, जाति, रूप, स्वास्थ्य, सिर, आयु, स्वभाव, शरीरांग, विदेश निवास, भाग्य, धनसम्पदा व सुख।

(ii) **द्वितीय भाव**—धन, परिवार, दायीं आंख, वाणी का प्रयोग, मुख, विद्या, वाचालता, गूंगापन, धन संग्रह, आस्तिकता, उत्तरदायित्व, सुखों का भोग, सत्यप्रियता, नाखून, पैतृक सम्पत्ति, नौकर-चाकर, समीप-दूर की यात्राएं व मारकत्व।

(iii) **तृतीय भाव**—भ्राता, पराक्रम, साहस, दायां कान, हाथ, आवाज, भूख, युद्ध कुशलता, धैर्य, छाती, गला, नौकर, चलने का ढंग व भूख।

(iv) **चतुर्थ भाव**—मित्र, लोकप्रियता, सम्पत्ति, वाहन, सुख, मकान, यात्राएं, खेत, बन्धु-बान्धव, मनोरथ, खजाना, पशुधन, प्रेम प्रसंग, पिता का व्यवसाय, कन्धे, हृदय एवं राज्याधिकार।

(v) **पंचम भाव**—विद्या, बुद्धि, पुत्र, सन्तान, गर्भ की स्थिति, नीति, पेट का बढ़ना, भूख, पेट के रोग, यन्त्र-तन्त्र सिद्धि, प्रबन्ध क्षमता, प्रशासन शक्ति, गम्भीरता, विवेक, राजयोग, धन, गुप्त बातें, लेखन, कवित्व, व्यक्तित्व व मानसिक सुख।

(vi) **षष्ठ भाव**—रोग, शत्रु, घाव, भय, पीड़ा, मामा, सौतेली माता, अंग-भंग, चोर, बाधा, युद्ध, नेत्र रोग, नाभि, कमर एवं भोजन में रुचि।

(vii) **सप्तम भाव**—स्त्री, विवाह, पति, काम शक्ति, गुप्त रोग, पद लाभ, पेडू, खोया धन, वाद-विवाद, शाकाहार, यात्रा, मारकत्व व दादा।

(viii) **अष्टम भाव**—आयु, मृत्यु, मृत्यु का कारण, गड़ा धन, संन्यास, मोक्ष, गुप्त स्थान, चोरी की आदत, वेतन, अपमान, ब्याजवृत्ति, क्रूरता, समुद्र यात्रा, जहरीले जानवरों का डंसना, पापकर्म, हत्या की प्रवृत्ति, मानसिक आघात, मुसीबत, आलस्य, भूतल या सागर तल में जाना, मृत्यु से बचना, दुर्घटना आदि।

(ix) **नवम भाव**—भाग्य, भक्ति, तीर्थयात्रा, गुरु, धर्म, धार्मिक तपस्या, सामाजिक प्रतिष्ठा, बंगला, जांघ, मन की स्वच्छता, स्नेह भावना, बायां पैर, भाई का शुभाशुभ, पिता का भाग्य सुख व धन, राज-सम्मान एवं जांघ।

(x) **दशम भाव**—राज्य, आज्ञा, कर्म, पिता, यश, सम्मान, व्यापार, कुल, अभिमान, राजपद, आभूषण, संन्यास, शास्त्रीय ज्ञान, आकाश, दूर देश में वास, नौकर-चाकर, मकान, ऋण, घुटना, वर्षा, सूखा आदि।

(xi) **एकादश भाव**—धन लाभ, प्राप्ति, दोनों पिंडलियां, दायां पैर, बायां हाथ, सन्तानहीनता, कन्या सन्तति, पुत्रबधू,

पुत्र का कष्ट, पालकी आदि वाहन, सोना, वस्त्राभूषण, देव पूजा, बायां कान, बनने-संवरने का स्वभाव, विद्या, चाचा आदि।

(xii) **द्वादश भाव**—दान, भोग, विवाह, इच्छित कार्य, खेती, खर्च, हानि, सभी प्रकार की विपत्तियां, पराभव, ऋण, पैदल यात्रा, भटकना, कारावास, नींद, विकलांगता, सजा, दुर्गति, बायीं आंख, बड़ा रोग, ऊंचे स्थान से गिरना, उत्तरदायित्व, पिता का धन, परस्त्री से सम्बन्ध, गरीबी, स्त्री की हानि आदि।

इस प्रकार सभी भावों से तत्तद् विषयों का विचार प्रश्न या जातक में करना चाहिए। इस भाव कारकत्व के विषय में पाठकों को हमारी **भावमंजरी प्रणवाख्या, उत्तरकालामृत** व **भुवनदीपक** आदि ग्रन्थों का अध्ययन विशेष सहायक होगा। सूर्यादि ग्रहों का विशेष कारकत्व भी हम पाठकों को बताना चाहते हैं—

(i) **सूर्य**—पिता, लक्ष्मी, मन की शुद्धि, शरीर, स्वास्थ्य, सामर्थ्य, सोना, ओज, गर्मी, नेत्ररोग, राजयोग, पशु, वनस्पति, वृद्धावस्था, पवित्रता, ज्ञान प्राप्ति, प्रताप, वन-विहार, वनसम्पदा, सिर के रोग, सूखा, वर्षा, मध्याह्न काल, पित्त विकार आदि।

(ii) **चन्द्र**—माता, बुद्धि, कीर्ति, ज्वर, सुख, कला, दयालुता, मध्यावस्था, जल व जल-जन्तु, हरी वनस्पतियां (लता आदि), घाव, शरीर, मन की चंचलता, सुन्दरता, चांदी, बाजू के रोग, यात्राएं, कपड़े, कफ रोग, काम शक्ति, कार्य की सफलता आदि।

(iii) **मंगल**—सेनापतित्व, प्रभुता, महत्त्व, शत्रु, निन्दा, भूख, युद्ध, जमीन-जायदाद, शस्त्रविद्या, चोट, भाई, पराक्रम, मूर्ख राजा, चौपाया धन, मांसाहार, पित्त, रात्रि का अन्तिम प्रहर, सोनार, गुप्त रोग व मूत्र रोग, वाचालता आदि।

(iv) **बुध**—वाणी व्यापार, गूंगापन, विद्या, विनय, बुद्धि, व्यवहार कुशलता, निर्णय शक्ति, गणित विद्या, ज्योतिष,

मित्र, वेद ज्ञान, वात-पित्त-कफ, व्यापार, कला, नपुंसकता, यन्त्र-मन्त्र, खजाना, वायव्य दिशा, मुख्य द्वार, वेदान्त विद्या, सुन्दर वेष, रसिकता, नाभि, आन्ध्र की भाषा आदि ।

(v) **बृहस्पति**—सन्तान, भाषणपटुता, शरीर की पुष्टि, धन, ज्ञान, शास्त्रज्ञता, राजसी भोगविलास, कर्म, राजकीय पद, वाहन, ब्राह्मण, सोने के गहने, चर्बी, सतोगुण, यश, तीर्थयात्रा, ज्योतिष, पेट के रोग, बड़ा भाई, वात व कफ, राजसी भोग आदि ।

(vi) **शुक्र**—व्यापार, सुख, कामकला, सुन्दर स्त्री, कामशक्ति, ठाट-बाट, वाहन, कीर्ति, सुन्दरता, काव्य रचना, सम्पत्ति, खजाना, शयनकक्ष, विवाह, संगीत, वाद्य, नृत्य, फसल, वैश्य, जलचर जन्तु, अभिनय, रहस्यात्मकता व मध्यावस्था ।

(vii) **शनि**—आयु, छल-कपट, बेहोशी, वात रोग, मृत्यु का कारण, जीविका, दरिद्रता, रहन-सहन, भय, दुर्बुद्धि, शूद्रवर्ण, भैंस, लोहा, खनिज पदार्थ, जीविका, रोग, बदनामी, कारावास, जस्ता, सीसा, संन्यास, मोटे अनाज, दाल व मारकत्वादि ।

(viii) **राहु**—नीचाश्रय, अपवित्रता, बायां अंग, हृदय रोग, वायु विकार, अचानक घटने वाले हादसे, हड्डी, सेना, दादा, वात व कफ, क्रूर स्त्री आदि ।

(ix) **केतु**—तीर्थयात्रा, संन्यास, वैद्य, रोग, वायु, मूर्खता, सर्दी की अधिकता, घाव, खाल, भूख, मन्त्रसिद्धि, ऐश्वर्य, फोड़े-फुंसी आदि ।

लग्न के शुभ योग :

आलोक्यमानो निखिलैर्नभश्चरै-
र्जन्मोदयो यस्य स भूपतिर्भवेत् ।
वीर्य्यैरुपेतैः समसौख्यसंयुतश्
चेद् दीर्घजीवीतभयः कलेवरी ।।३।।

आलोक्यमान इति। यस्य मनुजस्य जन्मोदयः=जनेरुदयो लग्नं, निखिलैः= समस्तैः, नभश्चरैः=ग्रहैः, आलोक्यमानः=संवीक्ष्यमाणश्चेत्तदा स भूपतिः, भुवः पृथिव्याः पतिः स्वामी भवेत्। चेद्यदि, वीर्यैः=बलैः उपेतैः=युक्तैः, सकलैर्ग्रहैर्जन्मोदय आलोक्यमानस्तदा कलेवरी=जन्मी, समसौख्यसंयुतः=सर्व-सुखयुक्तः, दीर्घजीवी=चिरजीवी, इनभयः=निर्भयः, भवेदिति शेषः।

तथोक्त सारावल्याम्

"सर्वैर्गगनभ्रमणैर्दृष्टे लग्ने भवेन्महीपालः।
बलिभिः समस्तसौख्यो विगतभयो दीर्घजीवी च॥" इति।

यदि जन्म के समय सभी ग्रह (सूर्य से शनि तक) लग्न को देखते हों तो जातक भूमिपति अर्थात् राजा या राजतुल्य बहुत अचल सम्पत्ति वाला होता है।

उक्त स्थिति में कल्याणवर्मा ने जातक को भूमिपाल, समस्त सुखों से युक्त, निडर एवं दीर्घायु बताया है। साथ ही सारावली में कहा गया है कि लग्न को अकेला लग्नेश बलवान् होकर अथवा शुभयुक्त होकर देखता हो तो भी जातक को नृपप्रिय, दीर्घायु, धनी बनाता है—

'पश्यन् ग्रहः स्वलग्नं सर्वं विदधाति सौख्यमर्थं च।
प्रायो नृपप्रियत्वं पापः पापं शुभं च शुभः॥'

(सारावली, ३४.८)

लग्न यदि बलवान् हो तो बहुत-सी बातें सुधर जाती हैं। लग्नेश, बुध या गुरु से दृष्टयुक्त एवं अन्य ग्रहों से अदृष्टायुक्त लग्न सदैव बलवान् होता है।

होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नान्यैश्च वीर्योत्कटा।

(वराहमिहिर)

इसी बात को अगले श्लोक में अधिक स्पष्ट किया जा रहा है।

स्वर्क्षेऽङ्गपे ज्ञेज्यसितान्वितेऽथवा
केन्द्रे स्वतुङ्गे शुभभे सुहृद्गृहे।
सौम्येक्षिते वा सचिवश्चमूपतिः
सम्पत्तिमाँल्लोकमतः सुलोचनः॥४॥

स्वर्क्ष इति। अङ्गपे=जन्मलग्नस्वामिनि, स्वर्क्षे=स्वराशौ लग्नगत इत्यर्थः। इत्येको योगः। अथवेति। अथवा लग्नेशे, ज्ञेज्यसितान्विते केन्द्रे, इति द्वितीयो योगः। स्वतुङ्ग इति। वा=अथवा, लग्नेशे स्वतुङ्गे=स्वोच्चराशौ। शुभभे शुभग्रहाणां राशौ वा सुहृद्गृहे सुहृदां मित्राणां गृहे राशौ, सौम्यैः शुभग्रहैः, ईक्षिते दृष्टे इति तृतीयो योगः। एषामन्यतमे योगे जातो नरः, सचिवः=अमात्यः, चमूपः=सेनापतिः, सम्पत्तिमान्=सम्पदा सहितः, लोकमतः=जनमान्यः, सुलोचनः=सुन्दरनेत्रभाक् स्यादिति शेषः।

अत्र विशेषमाह कल्याणवर्मा

स्वगृहोच्चसौम्यवर्गे ग्रहः फलं पुष्टमेव विदधाति।
नीचर्क्षरिपुगृहस्थो विगतफलः कीर्तितो मुनिभिः॥ इति॥

लग्नेश लग्न में स्वक्षेत्री हो। अथवा बुध बृहस्पति से युक्त केन्द्र हो। अथवा लग्नेश अपनी उच्च राशि में हो। अथवा शुभ राशि में शुभग्रहों से दृष्ट या मित्र राशि में शुभदृष्ट लग्नेश हो। इनमें से एक भी योग कुण्डली में हो तो मनुष्य सम्पत्तियुक्त, संसार प्रसिद्ध, सुन्दर व्यक्तित्व वाला मन्त्री या सेनापति था तत्सदृश होता है।

लग्नेश लग्न में हो यह एक योग है। बुध, गुरु, शुक्र से युक्त दृष्ट होकर केन्द्र में कहीं भी हों यह दूसरा योग है। अथवा शुभ राशि या मित्र राशि में शुभदृष्ट हो यह तीसरा योग है और लग्नेश स्वोच्च में हो यह चौथा योग है। यह विषय जातकालंकार में बहुत अच्छे ढंग से बताया गया है। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि लग्नेश पर पाप प्रभाव हो तो वह अपने शुभ फल की मात्रा को घटाएगा। शत्रु नीचास्तंगत लग्नेश या कोई भी ग्रह अपने भाव का फल नहीं देता है।

शरीर पुष्टि योग :

सद्भेऽङ्गे व्यघवीक्षणे किमुदये सूरीक्षिताढ्येऽथवा
सत्यङ्गे सबलेऽथ राशिरमणे साङ्गेशि वाङ्गांशपे।
पाथोभे शुभभे तनौ किमु यमांशे वा कभे कायपे
दृष्टेऽम्भोद्युचरेण वोत्तमयुते 'पुष्टिस्तनोरङ्गिनः' ॥५॥

सद्भ इति। अङ्गे=लग्ने, सद्भे=शुभराशौ, व्यघवीक्षणे=पापदृशा वर्जिते पापग्रहाणां च दृशा विहीने 'लग्ने शुभक्षेत्रगतेऽपि चैवम्' इति वेङ्कटेशोक्तेः। इत्येको योगः। किमिति। किमथ वा, उदये=लग्ने, सूरीक्षिताढ्ये सूरिणा जीवेन

दृष्टे युक्ते वा 'लग्ने गुरौ तेन निरीक्षिते वा' इति वेङ्कटेशोक्तेः। इति द्वितीयो योगः। अथवेति। अथवा अङ्गं=लग्ने, सबले=बलसहिते, सति=शुभग्रहे। 'सत्खेटे धनभवने सहः समेते' इति मदुक्ते इति तृतीयो योगः। अथेति। अथ शब्दोऽनन्तर वाची। राशिरमणे=जन्मनश्चन्द्राधिष्ठित राशिस्वामिनि, साङ्गेशि=लग्नेशयुक्ते। एष चतुर्थो योगः। वेति। वा अथवा, अङ्गांशपे लग्ने यो वर्त्तमाननवांशराशिस्तस्य स्वामिनि, पाथोभे जलराशौ। तनौ=लग्ने, शुभभे=शुभराशौ सति। एष पञ्चमो योगः। किमु इति। किमु वार्थे। यमांशे=कारकांशकुण्डल्यां मिथुनलग्ने। एष षष्ठो योगः। वेति। वा अथवार्थे। कायपे=लग्नेशे, कभे=जलराशौ भवति, तस्मिन्, अम्भोद्युचरेण जलग्रहेण चन्द्रशुक्रयोर्वा जलभगबुधजीवयोरेकतरेण। दृष्टे विलोकिते। वा विकल्पार्थे। उभययुते=शुभग्रहसहिते। एष सप्तमो योगः। एषु सप्तसु योगेषु यो जातस्तस्याङ्गिनः प्राणिनः, सतोः शरीरस्य पुष्टिर्वृद्धिः स्थूलतेति यावत् भवेदिति शेषः।

लग्न में शुभ राशि हो और पापग्रह लग्न को न देखते हों।

लग्न में बृहस्पति हो अथवा बृहस्पति लग्न को पूर्ण दृष्टि से देखता हो।

लग्न में बलवान् शुभ ग्रह स्थित हो।

जन्मराशीश व लग्नेश साथ-साथ हों।

लग्नगत नवांश राशि का स्वामी जलचर राशि में स्थित हो और लग्न में शुभ राशि हो।

कारकांश कुण्डली में मिथुन राशि हो अर्थात् आत्मकारक ग्रह मिथुन नवांश में हो।

अथवा लग्नेश जलचर राशि में हो और जलग्रह (चन्द्र, शुक्र अथवा जल राशिगत बुध, गुरु) से दृष्ट हो या शुभ से युक्त हो।

उक्त सात योगों में से एक भी योग कुण्डली में पड़ा हो तो मनुष्य का शरीर स्वस्थ एवं पुष्ट होता है। उसे शरीर का अच्छा सुख मिलता है।

पतले शरीर के योग :

दुःस्थे साङ्गपराशिपेऽथ तपनेऽन्त्येऽस्ते विकेन्द्राश्रिते
वार्कोन्दू अजभेऽथवाऽङ्गपगभस्वामी त्रिके वा खलैः।
शुष्काङ्गोपगतैरुतोदयपतौ शुष्कग्रहर्क्षेऽथवा
शुष्काढ्ये तनुपेऽथ शुष्कखचरे शुष्कोदये स्यात्कृशः ॥६॥

दु:स्थ इति। साङ्गपराशिपे=लग्नेशसहिते जन्मचन्द्रराशिस्वामिनि दु:स्थे=दुष्ट स्थानगते सति। एष एको योग:। अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। अन्त्ये=द्वादशे, तपने=सूर्ये, अस्रे=भौमे, विकेन्द्राश्रिते=केन्द्रेतरस्थानगते, पणफरापोक्लिमगत इत्यर्थ:। एष द्वितीयो योग:। वेति। वा विकल्पार्थे। अजभे=मेषराशौ, आर्कीन्दू=शनिचन्द्रौ। एष तृतीयो योग:। अथवेति। अथवा विकल्पार्थे, अङ्गपगभस्वामी अङ्गपो लग्नेश: स यस्मिन् राशावस्ति तस्य राशेर्य: स्वामी स यदि त्रिके=दुष्टस्थाने वर्त्तते। एष चतुर्थो योग:। वेति। वा विकल्पार्थे। खलै:=पापै:, शुष्काङ्गोपगतै:=मेष—वृष—मिथुन—सिंह—कन्या—धनुर्धरलग्नोपगतै:। एष पञ्चमो योग:। उतेति। उत वार्थे। उदयपतौ=लग्नस्वामिनि शुष्कग्रहर्क्षे। अतो रविभौमशनिराशौ मेष—सिंह—वृश्चिक—मकर—कुम्भ इत्यर्थ:। एष षष्ठो योग:। अथवेति। अथवा विकल्पार्थे, तनुपे=लग्नेशे, शुष्काढ्ये=शुष्कग्रहसहिते, शुष्कराशिगत बुधगुरुभ्यां रविभौमशनिभिर्वा युक्त इत्यर्थ:। लग्नेश्वरे शुष्कयुते तथैव शुष्कग्रहाणां भवनस्थिते वा' इति वेङ्कटेशोक्ते:। एष सप्तमो योग:। अथानन्तर्य्यार्थे। शुष्कोदये मेषवृषमिथुनसिंहकन्याधनुर्धराणामन्यतमे लग्ने, शुष्कखचरे शुष्कराशिगतयोर्बुधगुर्वोरन्यतरे रविभौमशनीनामन्यतमे वा भवति। एषोऽष्टमो योग:। एष्वष्टसु योगेषु जातो नर: कृशो दुर्बल: स्यादिति।

लग्नेश व जन्मराशीश दोनों ही ६, ८, १२ भावों में स्थित हों।

द्वादश भाव में सूर्य एवं मंगल केन्द्र से पृथक् स्थानों में हों।

अथवा शनि चन्द्र मेष राशि में स्थित हों।

अथवा लग्नेश जिस राशि में हो उस राशि का स्वामी दु:स्थान (६, ८, १२) भावों में स्थित हो।

अथवा कई पापग्रहों से युक्त लग्न शुष्क राशि (१,२,३,५,६,९) में पड़ता हो।

अथवा लग्नेश शुष्क ग्रह की राशि में स्थित हो अर्थात् लग्नेश सूर्य, मंगल शनि की राशि में अथवा शुष्क राशिगत बुध गुरु की राशि में लग्नेश स्थित हो। लग्नेश यदि शुष्क ग्रह से युक्त हो।

शुष्क राशि लग्न में शुष्क ग्रह हों। इन योगों में से कोई एक योग होने पर मनुष्य का शरीर पतला दुबला होता है।

उक्त विषय वक्ष्यमाण उदाहरणों द्वारा बिल्कुल स्पष्ट हो जाएगा। पिछले श्लोकों में बताए गए योग मोटे ताजे शरीर को देते हैं तथा इस श्लोक में बताए गए योगों में मनुष्य पतला होता है।

पतले व्यक्ति की कुण्डली

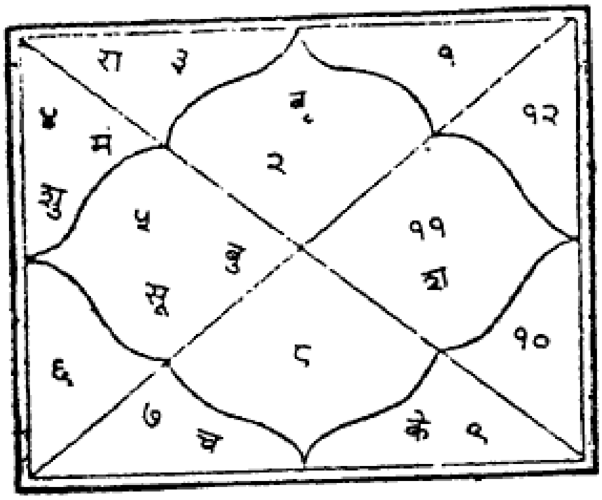

जन्म तिथि ९-९-१९६४ ई०
स्थान दिल्ली

इस कुण्डली में लग्नेश शुक्र की अधिष्ठित राशि कर्क का स्वामी त्रिक में है, यह एक योग स्पष्ट हुआ।

शुष्क राशि वृष में गुरु शुष्क राशिगत होने से स्वयं शुष्क है। यह दूसरा योग स्पष्ट हुआ। फलस्वरूप उक्त व्यक्ति शरीर से बहुत दुबला-पतला है।

ध्यान रखना चाहिए कि सूर्य, मंगल व शनि स्वाभाविक शुष्क हैं और गुरु बुध शुष्क राशि में हों तो शुष्क होते हैं—

शुष्का रविकुजसौराः सितचन्द्रमसौ जलात्मकौ ज्ञेयौ।
आश्रयगौ गुरुसौम्यौ सबलावित्युक्तमाचार्यैः ॥

(कृष्णाचार्य)

मोटे व्यक्ति की कुण्डली

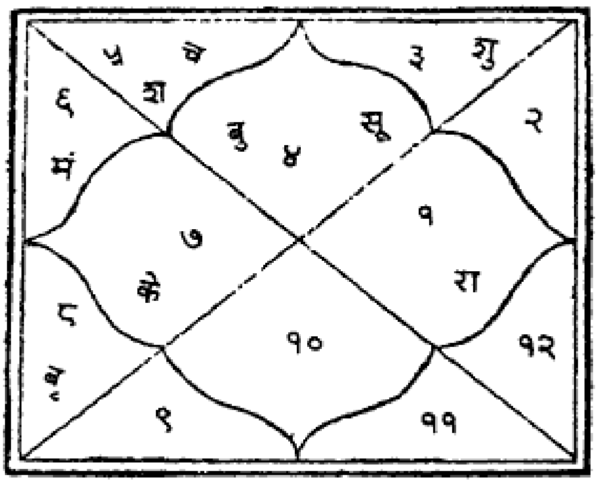

जन्मतिथि ६-८-१९४८
स्थान दिल्ली
नवांश—वृश्चिक

लग्न में शुभ राशि पापदृष्ट नहीं है। यह एक योग सिद्ध हुआ। जन्म लग्न गुरु से दृष्ट है। यह दूसरा योग बना। लग्न नवांशेश मंगल जलचर राशि में है और लग्न में शुभ राशि है। यह तीसरा योग बना। फलस्वरूप यह काफी ऊंचे कद व मोटी काठी के व्यक्ति हैं। इनका वजन १०० किलो के लगभग अवश्य होगा।

शरीर सुख योग :

लग्नेशे स्वलव उतोच्चमित्रभागे
कल्याणैः कलितविलोकितेऽथ पापैः।
नो दृष्टे सति सुतभाग्यकण्टकस्थे
कल्पेशे बलसहिते 'शरीरसौख्यम् ॥७॥

लग्नेश इति। लग्नेशे=जन्मलग्नस्वामिनि, स्वलवे निजनवांशे भवति। उतवार्थे। स्वोच्चांशे मित्रनवांशे वा, कल्याणैः=सौम्यग्रहैः, कलिते=युक्ते, विलोकिते= दृष्टे तदा शरीरस्य देहस्य सौख्यं सुखं भवेदिति शेषः।

तथोक्तं जातकपारिजाते
"लग्नेशे स्वोच्चमित्रांशे स्वनवांशगतेऽथवा।
शुभग्रहयुते दृष्टे देहसौख्यं विनिर्दिशेत् ॥" इति।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। सति=शुभग्रहे, सुतभाग्यकण्टकस्थे=पञ्चम-नवम-केन्द्रगते, पापैः=अशुभैः, नो दृष्टे=न विलोकिते, कल्पेशे, बलसहिते= बलयुक्ते भवति चेत्तदा, शरीरसौख्यं=देहसौख्यं भवेदिति शेषः।

तथोक्तं जातकपारिजातके
"लग्नेशे बलसंयुक्ते केन्द्रकोणगते शुभे।
पापग्रहैरसंदृष्टे देहसौख्यं वदेद्बुधः ॥" इति।

लग्नेश अपने नवांश, उच्च नवांश या मित्र नवांश में हो। साथ ही शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो।

केन्द्र व त्रिकोण में शुभ ग्रह हों और उन पर पाप ग्रहों की दृष्टि न हो तो उक्त योगों में से एक योग होने पर मनुष्य को शरीर का अच्छा सुख मिलता है।

शरीरकष्ट योग :

दुःस्थे सपापे तनुपे 'शरीरसौख्यं न'
तद्वत्त्रिकपे स्वभस्थे ।
यद्वोदयेऽघेऽङ्गविभौ विवीर्य्ये
'जातो रुजाङ्कयुगाधियुक् च' ॥८॥

दुःस्थ इति। तनुपे लग्नस्वामिनी, सपापेः पापग्रहेण युक्ते, दुःस्थे = षष्ठाष्टम-व्ययानामन्यतमस्थानगते चेत्तदा शरीरसौख्यं न भवेत्। जातस्येति शेषः। तद्वत्तेनैव प्रकारेण शरीरसौख्यं न भवेत्। अयमर्थो वक्ष्यमाणवचनविरुद्धः। 'तद्यथा'—स्वर्क्षोच्चगो दुष्टमितोऽपि नासन्निति। यवनमतेनापि विरुद्धो यथा बृहज्जातके—

"रिपुभवनपे रिपुस्थे निरुग् वैरी सुखी कृपणः।
निधनपतौ निधनस्थे व्यवसायी व्याधिवर्जितोऽप्युदितः॥"

विरोधशमनाय अयमर्थो बोध्यः, तनुपे दुःस्थे सति तद्भवनपेऽपि तत्रस्थे शुभफलं स्यादिति न वाच्यं पूर्वोक्तयोगे सति त्रिकपे स्वभस्थे सति चेत्तदा तद्वद्वाच्य योगानामचिन्त्यफलत्वादिति।

अथान्ययोगमाह यद्वेति। यद्वा विकल्पार्थे। उदये = लग्ने, अघे = पापग्रहे, अङ्गविभौ = देहाधीशे विवीर्य्ये = बलरहिते सति, चेत्तदा, जातो नरो, रुजारोगेण, आतङ्केन सन्तापेन च, युक् = सहितः, च = पुनः, आधियुक् = आधीयते अभिनि-वेश्यते प्रतीकाराय मनोऽनेनेत्याधिस्तेन सहितः, मनोव्यथया युक्तः यत्यर्थः।

लग्नेश पाप ग्रह से युक्त होकर ६,८,१२ भावों में स्थित हो। षष्ठ, अष्टम व द्वादश भावों के स्वामी इन्हीं भावों में स्वक्षेत्री हों और लग्नेश भी त्रिक में ही हो अथवा लग्नेश निर्बल हो।

लग्न में पाप ग्रह हो और लग्नेश निर्बल हो तो उक्त योगों में शरीर सुख नहीं होता है। ऐसी स्थिति में जातक रोग, आतंक व मानसिक पीड़ा से दुःखी होता है।

शरीर विकलता योग :

वैकल्यमङ्गेऽर्कविधू चतुष्टये
किं कल्मषैः कण्टकगैरथासिते।
स्वेऽब्जे पदेऽस्ते विदि वा घटे रवौ
निम्ने निशानाथकवीनजास्तथा ॥९॥

वैकल्पमिति । अर्कविधू=सूर्याचन्द्रमसौ चतुष्टये=केन्द्रे लग्नचतुर्थसप्तमदशमानामन्यतमे भवतश्चेत्तदा, अङ्गे=शरीरे, वैकल्यं विकलता व्याकुलमित्ति यावत् भवेदिति शेषः।

किमिति। किं वार्थे। कल्मषैः=पापग्रहै, कण्टकगैः=केन्द्रगतैः, सद्भिस्तथा तेनैव प्रकारेण देहे वैकल्यं भवेत् इति।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। असिते=शनौ, स्वे=द्वितीये, अब्जे=चन्द्रे, पदे=दशमे, विदि=बुधे, अस्ते=सप्तमे सति तदा देहे वैकल्यं भवेत्।

वेति। वा विकल्पार्थे। घटे=कुम्भे, रवौ=सूर्ये, निशानाथकवीनजाः=चन्द्र-शुक्र-शनयः, निम्ने=नीचराशौ भवन्ति चेत्तदा तथा देहे वैकल्यं भवेत्।

सूर्य व चन्द्रमा केन्द्र स्थानों में स्थित हों। अथवा केन्द्र में पाप ग्रह स्थित हों।

द्वितीय स्थान में शनि, दशम स्थान में चन्द्रमा, सप्तम स्थान में बुध स्थित हों।

सूर्य कुम्भ राशि में हो, चन्द्रमा शुक्र व शनि नीच राशियों में हों।

इन योगों में जातक के शरीर में अंग विकलता होती है।

आशय यह है कि इन योगों में से कोई एक या अधिक योग पड़ें तो योगकारक ग्रहों के बलवीर्य व प्रतिनिधि अंगोपांग में कुछ कमी हो जाती है।

शरीर दुर्गन्ध योग :

दुर्गन्धिरङ्गे मनुजस्य भार्गवे
पातङ्गिभेऽथो बुधभे विपक्षपे।
वैणे तथा स्याद्भृगुजे बुधालये
केन्द्रे कलानायकजान्विते तथा॥१०॥

दुर्गन्धिरिति। भार्गवे=शुक्रे, पातङ्गिभे=शनिराशौ मकरे कुम्भे वेत्यर्थः। तदा मनुजस्य=नरस्य, अङ्गे=शरीरे, दुर्गन्धिः=विस्रगन्धिः, 'पूतिगन्धस्तु दुर्गन्धो विस्रं स्यादामगन्धि यत्' इति कोशात्। स्यादिति शेषः।

अथो इति। अथो आनन्तर्य्यार्थे। विपक्षपे=षष्ठेशे, बुधभे=बुधराशौ मिथुने कन्यायां वा, वा=अथवा, एणे=मकरे तथा तेनैव प्रकारेण देहे दुर्गन्धिः स्यात्।

भृगुज इति। भृगुजे=शुक्रे, कलानायकजान्विते=बुधयुक्ते, केन्द्रे, बुधालये मिथुन-कन्ययोरन्यतरे तथा तेनैव प्रकारेण देहे दुर्गन्धिः स्यात्।

यदि शुक्र मकर या कुम्भ राशि में स्थित हो।

षष्ठेश बुध की राशि मिथुन या कन्या में हो अथवा मकर राशि में हो।

यदि शुक्र, बुध की राशि में केन्द्र भावों में बुध से ही युक्त हो।

इन योगों में उत्पन्न व्यक्ति के शरीर में पसीने आदि के कारण दुर्गन्ध आती है।

इन योगों के अतिरिक्त लग्न में मेष राशि का चन्द्रमा भी शरीर में दुर्गन्ध पैदा करता है।

हेम्नावनेयौ हरिगेहयातौ
दुर्गन्धतेहापि नरस्य देहे।
काव्येनसूनू निजहद्दमाप्तौ
राकाधिपेऽजे तनुगे तथैव ।।११।।

हेम्नेति। हेम्नावनेयौ=बुध-भौमौ, हरिगेहयातौ, इहापि अस्मिन्योगेऽपि नरस्य=मनुजस्य, देहे=शरीरे, दुर्गन्धता स्यादिति शेषः।
काव्येति। काव्येनसूनू=शुक्र-शनी, निजहद्दमाप्तौ=स्वकीयहद्दां प्राप्तौ स्वत्रिंशांशगाविन्यर्थः। अत्रच्छन्दोऽनुरोधात्त्रिंशांशो हद्दाशब्देनोपलक्षितः। राकाधिपे=चन्द्रे, अजे=मेषराशौ तनुगे लग्नस्थिते तथैव तेनैव प्रकारेण देहे दुर्गन्धता स्यात्।

दशम स्थान में बुध एवं मंगल हो। शुक्र व शनि अपनी त्रिंशांश राशि में स्थित हों।

अथवा मेष राशि का चन्द्रमा लग्न में हो।

इन योगों में भी मनुष्य के शरीर से दुर्गन्ध आती है।

जातकालंकार में मेषगत लग्नस्थ चन्द्रमा होने पर मुख में दुर्गन्ध मानी है—

'तद्वच्चन्द्रेऽजयाते तनुसदनगते चानने स्याद्विगन्धिः।'
(गणेश)

अधिक पसीने व अधिक भाषण के योग:

नीहाररश्मौ निधनार्थधाम्नि
स्वेदेन जन्मी बहुनाऽभ्युपेतः।

कृष्णाभिधाने जनने कुरङ्गे
जातोऽपभाषीति वदन्ति विज्ञाः ॥१२॥

नीहारेति। निह्रियन्ते इति नीहाराः शिशिराः, रश्मयः किरणा यस्य स नीहाररश्मिस्तस्मिन्, निधनार्थधाम्नि = अष्टम-द्वितीयगृहे भवति तदा जन्मी = प्राणी, बहुना = प्रभूतेन, स्वेदेन = घर्म्मेण, अभ्युपेतः = युक्तः स्यादिति शेषः। कृष्णेति। यदि जनने = जन्मसमये, कृष्णाभिधाने = शनौ, कुरङ्गे मकरराशौ भवति, तदा जातोऽपभाषी = अप्रयोजनबहुभाषी भवति। इति विज्ञाः = पण्डिताः, वदन्ति = कथयन्ति।

यदि चन्द्रमा द्वितीय या अष्टम स्थान में स्थित हो तो मनुष्य को बहुत पसीना आता है।

यदि जन्म लग्न में शनि मकर राशि में स्थित हो तो व्यक्ति बिना प्रयोजन के ही अधिक बोलता है।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित योगों में भी व्यक्ति व्यर्थ बोलने वाला होता है—

(i) लग्न गत शुक्र को बुध पूर्ण दृष्टि से देखता हो।

(ii) ६, ८, १२ में क्षीण चन्द्रमा मंगल से युक्त हो।

इन योगों में वाक्चातुर्य, वाचालता अभीष्ट नहीं है। अपितु व्यर्थ भाषण वाला अर्थ ही लेना चाहिए।

क्रोधी एवं वामन होने के योग :

क्रूरे विलग्नेऽङ्गविभावसद्भे
किं वार्कचन्द्रावसदन्तराले।
वेन्द्वर्कयोर्मन्मथगो महीजः
पृष्ठोदयस्थे तमिजानिजाते ॥१३॥

अन्धो मनस्वी परदाररक्तो
दुष्कर्म्मकर्त्ता तनुता शरीरे।
क्रोध्युद्गमेऽस्ते किमु राशिनाथे
कोणे विवीर्य्ये किमु वीर्य्ययुक्ते ॥१४॥

कामे कुजे वोदयपेऽन्त्ययाम्ये
किं वाऽह्निखेऽङ्गे बलभाजि भौमे।
खर्वोऽङ्गपेऽजे सुखगोऽसिताख्य
ईक्षेत पृष्ठोदयगं सुधांशुम् ॥१५॥

क्रूर इति। अन्ध इति। काम इति च। क्रूरे=पापग्रहे विलग्ने=समुदये भवति, अङ्गविभौ=लग्नेशे, असद्भे पापग्रहराशौ सति, 'अयमेको योगः'। किंवेति। किंवा विकल्पार्थे। अर्कचन्द्रौ=सूर्याचन्द्रमासौ, असदन्तराले=असतो=क्रूरग्रहयोः, अन्तराले=अन्तर्गते क्रूरमध्यस्थावित्यर्थः। क्रूरमध्यस्थं राश्यंशापेक्षया वा ज्ञेयं सङ्कोचे प्रमाणाभावात्। 'अयं द्वितीयो योगः' वेति। वा विकल्पार्थे। इन्द्वर्कयोः=सूर्याचन्द्रमसौः, मन्मथगः=सप्तमस्थानस्थितः, महीजः=भौमः, तमिजानिजाते=बुधे, पृष्ठोदयस्थे, पृष्ठोदयराशिगते 'स्युः पृष्ठोदयसञ्ज्ञिता मकरगोकोदण्डकर्कक्रिया' इति संज्ञाध्यायोक्तेः। 'एष तृतीयो योगः'। एषु त्रिषु योगेषु जातो नरोऽन्धः, मनस्वी प्रशस्तस्वान्त इत्यर्थः।

परदाररक्तः=परस्त्रीरतः, दुष्कर्मकर्त्ता=पापकर्त्ता, शरीरे=देहे, तनुता=कृशता, मनस्वित्वं कालगतकलावतो बलत्वे वेद्यम्।

क्रोधीति। उद्गमे=लग्ने, अस्ते=भौमे भवति तदा क्रोधी स्यात्।

किमु इति। किमु वार्थे। राशिनाथे=जन्मचन्द्राधिष्ठितराशिनाथे, कोणे=पञ्चमनवमगते, विवीर्य्ये बलरहिते सति तदा क्रोधी स्यात्।

किमु इति। किमु वार्थे। वीर्ययुक्ते=बलसहिते, कुजे=भौमे, कामे=सप्तमभवने सति तदा क्रोधी स्यात्।

वेति। वा विकल्पार्थे। उदयपे=लग्नस्वामिनि, अन्त्ययाम्ये=द्वादशाष्टमे सति तदा क्रोधी स्यात्।

किं वेति। किंवा वार्थे। अह्नि=दिवा, बलभाजि=बलवति, भौमे=मङ्गले, खे=दशमे, अङ्गे लग्ने वा भवति तदा क्रोधी स्यात्।

खर्व इति। अङ्गपे=लग्नेशे, अजे=मेषराशौ भवति, असिताख्यः=शनिः, सुखगश्चतुर्थस्थानस्थितः सन्, पृष्ठोदयगं=पृष्ठोदयराशिगतं, सुधांशुं=चन्द्रं ईक्षेत=पश्येत्, चेत्तदा जातो नरः, खर्वः=वामनः स्यादिति शेषः।

यदि लग्न में कोई पापग्रह हो और लग्नेश पापग्रह की राशि में हो।

सूर्य व चन्द्रमा दोनों ही क्रूर ग्रहों के बीच में (पापकर्तरी) में हों।

सूर्य व चन्द्रमा सप्तम स्थान में स्थित हो और मंगल पृष्ठोदय राशि में हो।

इन योगों में मनुष्य अंधा, मनस्वी, दुष्ट कार्य करने वाला और परस्त्री रक्त होता है। अथवा दुर्बल शरीर वाला होता है।

लग्न में मंगल स्थित हो। जन्मराशीश नवम पंचम स्थान में बलरहित हो।

सप्तम में बलवान् मंगल स्थित हो।

लग्नेश अष्टम या द्वादश स्थान में स्थित हो।

दिन का जन्म हो और बलवान् मंगल दशम या लग्न में स्थित हो तो इन योगों में मनुष्य क्रोधी होता है।

लग्नेश मेष राशि में हो और शनि चतुर्थ स्थान में स्थित होकर पृष्ठोदय राशिगत चन्द्रमा को देखता हो।

इस योग में मनुष्य का कद काफी छोटा होता है।

उक्त योग ग्रन्थकार ने जातकालंकार के आधार पर बताए हैं। सारावली में बताया गया है कि मकर राशि के अन्तिम नवांश में जन्म हो और सूर्य, चन्द्र, शनि लग्न को देखते हों तो भी बालक वामन होता है। बृहज्जातक में भी कहा गया है—

सौरशशांकदिवाकरदृष्टे वामनको मकरान्त्य विलग्ने।

(बृहज्जातक)

भट्टोत्पल ने मकरान्त्य शब्द का अर्थ 'मकर का अन्तिम नवांश' किया है लेकिन रुद्रभट्ट ने, जो बृहज्जातक के अच्छे टीकाकार हैं, कहा है कि—

'अन्त्यविलग्न इत्युक्तिसामर्थ्यादन्त्यस्व मीनराशेरपि विलग्नत्वे।'

(रुद्रभट्ट)

अत: रुद्रभट्ट के मत में मकर व मीन लग्न को सौर शशांक दिवाकर देखें तो वामन योग होता है।

ऊंचा कद एवं हास्यप्रिय योग :

'उच्चाकारो' मङ्गलान्मन्मथे ज्ञे
'शीतः' सोमे सौरिसूर्यारदृष्टे।
'पापी तिग्मः' क्षोणिपुत्रेण युक्ते
क्षीणे चन्द्रेऽथोदये ज्ञेऽस्त इज्ये ॥१६॥

'हास्यासक्तो'ऽर्थाकिभे हेलिदृष्टौ
ज्ञारौ किं वा सुद्गृहे ज्ञे सभौमे।
'भूभृद्विद्वद्रञ्जने पण्डितः स्या-
त्पश्येद्दुःस्थः शर्व्वरीशोऽसुरेज्यम् ॥१७॥

'तत्र प्राणी विस्मयालुः' सवीर्य्यै
खेटैर्दृष्टैर्बोधनासृङ्मृगाङ्कैः ।
'क्षिप्रं वाणी स्फूर्त्तिमान्' स्यात्पदोने-
ऽस्रेऽस्ते 'तिग्मो युध्रतः स्याद्वपुष्मान्' ॥१८॥

उच्चेति। हास्येति। तत्रेति च। मङ्गलात् = भौमात्, मन्मथे = सप्तमे, ज्ञे = बुधे सति तदा जात उच्चाकार उच्चशरीरः स्यादिति शेषः।

शीत इति। सोमे = चन्द्रे, सौरिसूर्यारदृष्टे = शनि-सूर्य-भौमविलोकिते सति तदा जातः शीतः = शीतलस्वभावः स्यादिति शेषः।

पापीति। क्षीणे = कृशे, चन्द्रे = शशिनि, क्षोणिपुत्रेण = भौमेन, युक्ते = सहिते सति तदा जातः, पापी = पापकृत्, तिग्मस्तीक्ष्णः स्वभावः स्यादिति शेषः।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। ज्ञे = बुधे, उदये = लग्ने, इज्ये = गुरौ, अस्ते = सप्तमे भवति तदा जातो हास्यासक्तः स्यादिति शेषः।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। आर्किभे शनिराशौ मकरे कुम्भे वा, हेलिदृष्टौ = सूर्यदृष्टौ, ज्ञारौ = बुध-भौमौ भवतः। किं वा वार्थे। ज्ञे = बुधे, सभौमे = भौमेन सहिते, सद्गृहे = शुभग्रहराशौ भवति, तदा जातो नरो, भूभृद्विद्वद्रञ्जने = राज्ञां विदुषां च हर्षोन्मुखीकरणे, पण्डितः = प्रवीणः स्यादिति।

पश्येदिति। शर्वरीशः = चन्द्रः, दुःस्थः = षष्ठाष्टमव्ययान्यतमगतः सन्, असुरेज्यं = शुक्रं पश्येत् = विलोकयेत्, तदा प्राणी = जन्मी, विस्मयालुः = विस्मययुक्तः स्यादिति शेषः।

सवीर्य्येति। बोधनासृङ्मृगाङ्कैः = बुध-भौम-चन्द्रैः, सवीर्य्यखेटैः = बलवद्ग्रहैः, दृष्टैः = आलोकितैः सद्भिः, चेत्तदा जातः क्षिप्रं वाणी स्फूर्त्तिमान् = शीघ्रं यथा स्यात्तथा वचनस्फूर्त्तियुक्तः स्यात्।

पदोन इति। पदोने = स्वाधिकाराद्रहिते स्वगृहहोराद्रेष्काणादिरहित इत्यर्थः। अस्रे = भौमे, अस्ते = सप्तमे भवति तदा जातः, तिग्मः = तीक्ष्णस्वभावः, युध्रतः = संग्रामे निरतः, वपुष्मान् = दृढशरीरः स्यात्।

मंगल से सप्तम स्थान में बुध हो तो मनुष्य का कद ऊंचा होता है।

यदि चन्द्रमा पर शनि, मंगल सूर्य की दृष्टि हो तो जातक ठंडे दिमाग वाला होता है।

क्षीण चन्द्रमा मंगल से युक्त हो तो मनुष्य पापकर्मा या तीखे स्वभाव वाला होता है।

बुध लग्न में और गुरु सप्तम स्थान में हो तो जातक हास्यप्रिय होता है।

शनि की राशि में बुध और मंगल को सूर्य देखता हो।

शुभ ग्रह की राशि में मंगल व बुध साथ हों तो मनुष्य राजाओं व विद्वानों को अपने भाषण से मोहित कर देता है।

चन्द्रमा ६,८,१२ भावों में हो और शुक्र उसे देखता हो तो जातक भ्रमित बुद्धि वाला होता है।

चन्द्र, मंगल व बुध यदि बलवान् ग्रहों से दृष्ट हों तो मनुष्य तुरन्त उत्तर देने वाला 'हाजिरजवाब' होता है।

मंगल अपने द्रेष्काण, नवांश, होरा, राशि आदि में न हो और सप्तम स्थान में हो तो बालक तीखे स्वभाव वाला होता है। ऐसे व्यक्ति की रुचि लड़ाई में सदैव बनी रहती है और वह पुष्ट शरीर वाला होता है।

'लग्ननवांशपतुल्यतुल्यतनुः स्याद्' इत्यादि सिद्धान्त के आधार पर मनुष्य के कद का निर्णय करना चाहिए।

यदि लग्नेश या लग्न नवांशेश दीर्घ राशि में हो, मंगल बुध एकत्र हों अथवा लग्न में दीर्घ राशि या दीर्घ नवांश हो तो मनुष्य लम्बा होता है। इस बात को सदैव ध्यान रखना चाहिए।

हमने कई एक स्थानों पर मंगल व बुध की एकत्र स्थिति में भी लम्बा कद देखा है अतः हमने इसे भी योगकारक माना है।

अमिताभ बच्चन की लम्बाई में किसे सन्देह होगा? उसकी कुण्डली में मंगल व बुध एक राशि में हैं। दोनों दीर्घ राशि कन्या में स्थित हैं। यहां एक लम्बे कद वाले (छह फुट) व्यक्ति की कुण्डली दी जा रही है। आपको स्वयं ये बातें स्पष्ट हो जाएंगी।

लम्बे व्यक्ति की कुण्डली

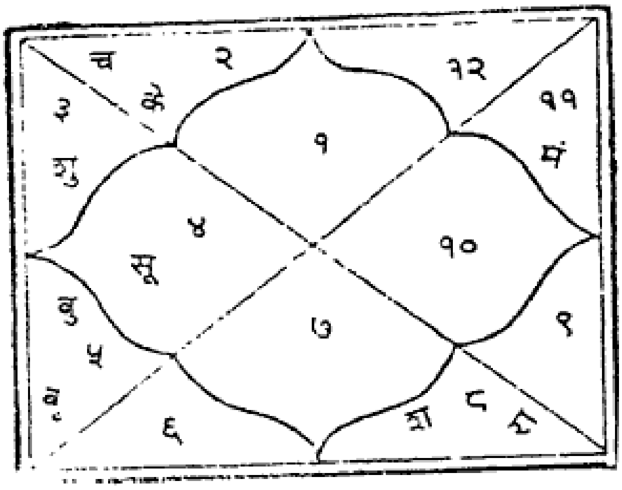

लग्नस्पष्ट ००-२५-३३
नवांश—वृश्चिक
जन्म ३-८-५६ ई०

यहाँ लग्न में दीर्घ राशि वृश्चिक का नवांश है। यह एक बात हुई। मंगल व बुध की पूर्ण दृष्टि है। यह दूसरा योग बना। इनमें बुध दीर्घ राशि में है। अतः इनका लम्बा कद सुसिद्ध हो जाता है।

बन्धु कलह योग :

कल्पगृहस्थे क्षोणि तनूजे।
बान्धवलोकैः स्यात्कलिकर्त्ता ॥१९॥

कल्पेति। क्षोणितनूजे = भौमे, कल्पगृहस्थे = लग्नगते, बान्धवलोकैः = बन्धुजनैः सह, कलिकर्त्ता स्यात्।

यदि लग्न में मंगल स्थित हो तो मनुष्य अपने बन्धु-बान्धवों के साथ कलह करता रहता है।

इस एक योग के अतिरिक्त तृतीय स्थान में मंगल को बुध व चन्द्रमा देखते हों।

बुध लग्नेश होकर षष्ठ स्थान में स्थित हो। यदि लग्नेश निर्बल हो तो मनुष्य की प्रायः अपने बन्धु-बान्धवों, मित्रों व सम्बन्धियों से नहीं बनती है।

गंजापन के योग :

'खल्वाट' उग्रग्रहलोकिते गवि
चापे विलग्ने किमु पापभेऽङ्गगे।
सोग्रेऽथवा ग्लावि कुजेक्षिते स्वभे
कन्यालिसिंहाश्वतनूषु विग्रहे ॥२०॥

खल्वाट इति। गवि = वृषे, चापे = धनुषि, विलग्ने = समुदये, तयोरन्यतरे तनुगत इत्यर्थः। उग्रग्रहलोकिते = पापग्रहदृष्टे। किमु वार्थे। सोग्रे = पापग्रहयुक्ते, पापभे = पापराशौ, अङ्गगे = लग्नगे, सति तदा, खल्वाटः = खलतिरोगी स्यात्। अथवेति। अथवा विकल्पार्थे। ग्लावि = चन्द्रमसि, स्वभे = निजराशौ कर्क इत्यर्थः। कुजेक्षिते = भौमदृष्टे, कन्यालिसिंहाश्वतनूषु = कन्या-वृश्चिक-सिंह-धनुर्धरेष्वन्यतमे राशौ, विग्रहे—लग्ने सति तदा जातः, खल्वाटः खलतिरोगी स्यात्।

वृषभ या धनु लग्न को पाप ग्रह देखते हों। पाप ग्रह पाप राशि में स्थित होकर लग्न में गया हो। अथवा चन्द्रमा अपनी राशि में हो और मंगल उसे देखता हो। लग्न में सिंह, कन्या, वृश्चिक धनु राशि हों और चन्द्र, मंगल परस्पर देखते हों तो गंजापन होता है।

सामान्यतया लग्न में जलचर राशि, चन्द्रमा, सूर्य एवं शनि का प्रभाव जातक के बालों में कमी करता है।

नीचे जिस सज्जन की कुण्डली दी जा रही है ये ३५ वर्ष की आयु तक आते-आते बिल्कुल गंजे हो गए हैं। इस कुण्डली में लग्न में शनि की पाप राशि व सूर्य स्वयं पाप होकर वहां स्थित है। लग्न में जलचर राशि है। दशम स्थान (सिर स्थान) में शनि व राहु हैं।

गंजे व्यक्ति की कुण्डली

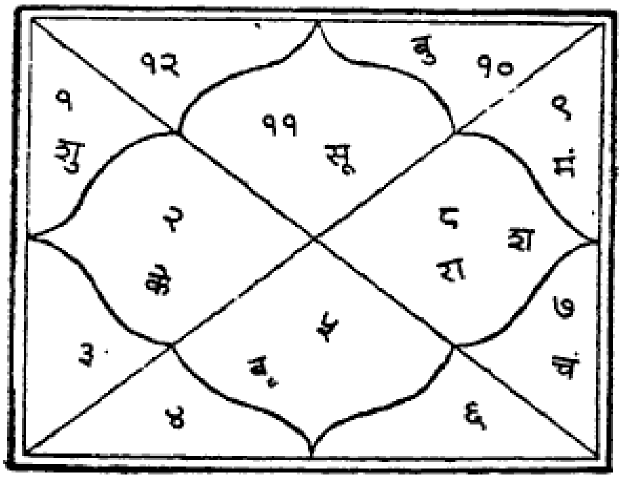

जन्मतिथि २-३-१९५९
स्थान कलकत्ता

ध्यान रखिए सूर्य स्वयं कम बालों वाला है और शनि रूखे बालों वाला। अतः लग्न में इनकी राशि, नवांश या स्थिति होने पर भी गंजापन होता है।

॥ इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां तनुभावाध्यायस्तृतीयः ॥

धनभावाध्याय:

धनी योग :

उपचयगृहयातैः सर्वसौम्यैर्विलग्ना-
द्बहुलधनमुपैति श्वेतगोस्तैः सवित्तः।
हिमकरकुजयोगे वित्तवान्केन्द्रयातौ
धनभवनधवात्स्वेट् सूतिलग्नेट् च तद्वत् ॥१॥

उपचयेति। सर्वसौम्यैः = सर्वैः शुभग्रहैः, विलग्नाद् = उदयात्, उपचयगृहयातैः = तृतीय-षष्ठ-दशम-लाभगतैः सद्भिः, चेत्तदा जातः बहुलधनं = प्रभूतं वित्तं, उपैति = प्राप्नोति। श्वेतगोरिति। श्वेताः = सिता गावो रश्मयो यस्य तस्माच्छ्वेतगोश्चन्द्रात्, तैः = सर्वसौम्यैः, उपचयगृहयातैः-तृतीय-षष्ठ-दशम-लाभगतैः सद्भिः, चेत्तदा जातः, सवित्तः = वित्तेन धनेन सहितः, धनवानित्यर्थः।

हिमकरेति। हिमकरकुजयोगे = चन्द्र-भौमयोगे सति, तदा जातः, वित्तवान् = धनवान्, स्यादिति शेषः।

तथोक्तं जातकादेशमार्गे

"शशिमङ्गलसंयोगो यस्य जन्मनि विद्यते।
विमुञ्चति न तं लक्ष्मीर्लज्जा कुलवधूमिव॥" इति।

केन्द्रयाताविति। धनभवनधवात् = धनेशात्, स्वेड् = द्वितीयेशः, सूतिलग्नेट् = जन्मलग्नेशश्च, केन्द्रयातौ, चतुष्टयगतौ यदा तदा जातः, तद्वत्तेनैव प्रकारेण वित्तवान् भवेत्।

तथोक्तं सुधासागरे

"यदि वा धनेशाद् द्रव्याङ्गभावपतिपौ तनु केन्द्रभावे।" इति।

जिस व्यक्ति की जन्म कुण्डली में जन्म लग्न से उपचय स्थानों (३, ६, १०, ११) में सभी शुभ ग्रह हों तो मनुष्य बहुत अधिक धनवाला होता है।

यदि चन्द्र राशि से उपचय स्थानों में शुभ ग्रहों की स्थिति हो तो मनुष्य धनवान् होता है।

यदि कुण्डली में मंगल व शनि एक साथ हों तो भी मनुष्य धनवान् होता है।

यदि जन्म लग्नेश और धनभावेश से द्वितीय स्थानाधिपति केन्द्र में हों तो मनुष्य धनी होता है।

उपचय स्थानों को वृद्धि स्थान कहते हैं। सामान्यतया जन्म कुण्डली या चन्द्र कुण्डली से इन स्थानों में बुध, गुरु, शुक्र स्थित हो तो मनुष्य धनवान् होता है। यह बात वराहमिहिर ने बृहज्जातक में बताई है। यदि ये तीनों ही ग्रह उक्त स्थानों में स्थित हों तो बहुत श्रेष्ठ फल मिलेगा। यदि दो या एक भी स्थित हुआ तो तारतम्य से फल की कल्पना करनी चाहिए। यह सिद्धान्त व्यवहार में बड़ा सटीक उतरता है। पिछले अध्याय के श्लोक ६ की व्याख्या में वृषभ लग्न की कुण्डली देखिए। इनके पिताजी सामान्य आर्थिक स्थिति वाले नौकरीपेशा व्यक्ति थे। ये सज्जन बहुत अच्छी उल्लेखनीय स्थिति में हैं। वहां लग्न से तृतीय में शुक्र, षष्ठ में चन्द्र है। चन्द्रमा से १०, ११ स्थानों में बुध-शुक्र हैं। अधिक ग्रहों से अधिक व कम से कम फल समझना चाहिए। साथ ही अन्तिम निष्कर्ष लेते समय केन्द्र त्रिकोण एवं धन स्थान को भी देखिएं। उसी कुण्डली में धनेश एवं धनभावेश से द्वितीयेश बुध केन्द्र में है। नवमेश दशमेश शनि की केन्द्रस्थिति भी अत्यन्त प्रशस्य है।

चन्द्रमा से धन सम्बन्धी विचार करते समय इस बात को भी ध्यान में रखें कि सूर्य से चन्द्रमा केन्द्र में हो तो विनय, धन, बुद्धि, निपुणता अधम होती है।

यदि सूर्य से पणफर में हो तो मध्यम एवं आपोक्लिम में हो तो उत्तम होते हैं।

चन्द्रमा अपने नवांश या मित्राधिमित्र नवांश में हो और दिन में गुरु से और रात्रि में शुक्र से दृष्ट हो तो मनुष्य धनी होता है।

इस विषय में वराहमिहिर, यवनाचार्य, भगवान् गार्गि एवं कल्याण वर्मा एक मत हैं।

चन्द्रमा से बनने वाले धन योगों की विशेषता यह है कि इनके प्रभाव से केमद्रुमादि योगों का फल भी नष्ट हो जाता है। एतदर्थ बृहज्जातक का चन्द्रयोगाध्याय देखें।

अब श्लोकोक्त दूसरे योग को देखें। चन्द्रमा व मंगल का यह

योग जातकादेश मार्ग में बताया गया है। इस स्थिति में भाव की शर्त नहीं है तथापि यह योग केन्द्रत्रिकोण या उपचय में बने तो श्रेष्ठ फल देगा।

साथ ही इस विषय में जातकादेशमार्ग में एक अन्य बात कही गई है—

भौमे सचन्द्रे लग्नस्थे धर्मकर्मगतेऽपि वा।
गुरौ बलान्विते सूर्ये जातो नरपतिर्भवेत्॥
(जातकादेश, ८.५२)

अर्थात् लग्न में शशी व मंगल हो। ९, १० में गुरु हो और सूर्य बली हो तो अच्छा राजयोग बनता है।

ध्यान रखिए, अकेला चन्द्रमा वृष, कर्क लग्न को छोड़कर अन्य लग्नों में शुभ नहीं होता है।

महाधनी योग :

सद्व्योमगेहैः कलिते चतुष्टये
केन्द्रेऽथ मन्दे यदि सस्वमन्दिरे।
प्राप्तौ प्रबन्धेऽथ भवे बृहस्पतौ
पुत्रे रवौ सस्वगृहे 'महाधनी'॥२॥

सदिति। चतुष्टये=चतुष्के, केन्द्रे=कण्टके, सद्व्योमगेहैः=शुभग्रहैः, कलिते=सहिते सति, तदा जातः, महाधनी भवेदिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"शुभान्विते केन्द्र चतुष्टये महाधनी।" इति।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। यदि=चेद्, मन्दे=शनैश्चरे, सस्वमन्दिरे=निजराशिसहिते मकरसहिते कुम्भसहिते वेत्यर्थः। प्राप्तौ=एकादशे, प्रबन्धे=पञ्चमे भवति, तदा जातः महाधनी भवेदिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"महाधनी भवेत्स्वर्क्षे सुते लाभे शनौ तथा।" इति।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। भवे=एकादशे, बृहस्पतौ=जीवे, रवौ=सूर्ये, सस्वगृहे—स्वराशिसहिते सिंहसहित इत्यर्थः। पुत्रे=पञ्चमे भवति, तदा जातः महाधनी भवेत्।

तथोक्तं सुधासागरे
"लाभे जीवे स्वभेऽर्केतु पञ्चमे यदि निश्चितम् ।" इति ।

यदि चारों केन्द्र स्थानों में शुभग्रह हों अथवा पंचम या एकादश में मकर या कुम्भ का शनि हो। यदि एकादश स्थान में बृहस्पति हो और पंचम स्थान में सिंह राशि का सूर्य हो तो इन योगों में व्यक्ति महाधनी होता है।

ऊपर संस्कृत टीका में सुधासागर के उद्धरण दिए गए हैं। उन्हीं के आधार पर ये योग ग्रन्थकार ने कहे हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए। धनेश, धनस्थान में स्थित ग्रह और धनभाव पर दृष्टि रखने वाला ग्रह ये तीन ग्रह प्रत्यक्ष धनदाता हैं। इनकी दशान्तर्दशा में अपने-अपने कारकत्व के आधार पर धन लाभ होता है। इसके अतिरिक्त लग्नेश, लाभेश व धनेश स्वक्षेत्री हों अथवा धनेश व लाभेश उच्चत्रिकोण स्वमित्र गृही हों तो व्यक्ति धनी होता है। लग्नेश व धनेश का सम्बन्ध भी धनप्रद होता है।

चारों केन्द्र स्थानों में शुभग्रह हों यह तभी सम्भव है जब शुक्ल पक्ष में अष्टमी से आगे का जन्म हो। बुध पापसंगरहित हो।

गुरु व शुक्र निसर्गतः बिना किसी शर्त के शुभग्रह हैं। लेकिन चन्द्र, बुध समय-परिस्थिति सापेक्ष शुभ हैं। तथापि यह बहुत सुलभ योग नहीं है।

फणिकविकुजकोणैः कन्ययाऽऽलिङ्गिताङ्गै
रथरविविधुयुक्तालोकिते भे स्वभाङ्गे।
किमु विदि निजभाङ्गे भार्कियुक्तेक्षितेऽथो
द्युकृति निजगृहाङ्गे सारसूरौ तथैव ॥३॥

फणीति। फणिकविकुजकोणैः = राहु-शुक्र-भौम-शनिभिः, कन्यया = कुमार्य्या षष्ठराशितेत्यर्थः। आलिङ्गितानि अङ्गानि येषां तैः सद्भिः, चेत्तदा जातः, महाधनी भवेत्।

अथेति। अथानन्तयार्थे। स्वभाङ्गे = निजराशिलग्ने, वृषलग्ने तुलालग्ने वेत्यर्थः। भे = शुक्रे, रविविधुयुक्तालोकिते = सूर्यचन्द्राभ्यां युक्ते दृष्टे वा भवति, तदा जातः, 'महाधनी' भवत्।

तथोक्तं सुधासागरे
"वा स्वर्क्षे व भृगौ लग्ने चन्द्रार्केक्षितसंयुते।" इति।

किम इति। किमु वार्थे। निजभाङ्के=स्वराशिलग्ने, मिथुनलग्ने कन्यालग्ने वेत्यर्थः। विदि=विधे, शार्कियुक्तेक्षिते=शुक्रशनिभ्यां युक्ते दृष्टे वा भवति, तदा जातः, महाधनी भवेत्।

तथोक्तं सुधासागरे

"वा मन्दाच्छयुते दृष्टे स्वर्क्षे ज्ञे लग्नगे सति।" तति।

अथो इति। अथो आनन्तर्य्यार्थे। निजगृहाङ्के=स्वराशिलग्ने, सिंहलग्न इत्यर्थः। चुकृति=रवौ, सारसूरौ=भौम-गुरुभ्यां सहिते सति, तदा जातः महाधनी भवेत्।

तथोक्तं सुधासागरे

"वाऽऽरवाक्पतिसंयुते। सिंहेऽर्के लग्नगे नूनं जायते च महाधनी।" इति।

राहु, शुक्र, शनि, मंगल यदि कन्या राशि में एकत्र हों।

वृष या तुला लग्न में शुक्र को सूर्य, चन्द्रमा देखते हों या इनसे शुक्र उक्त लग्नों में युक्त हो।

लग्न में मिथुन, कन्या में बुध, शुक्र व शनि से युक्त या दृष्ट हो।

यदि सिंह लग्न में सूर्य हो, वह मंगल व बृहस्पति से युक्त हो।

इन सब योगों में व्यक्ति महाधनी होता है।

सम्पत्तिवान् एवं निर्धन योग :

सम्पत्तिमानुद्गमगे कपेऽङ्ककेशौ
स्वस्वगेहे परिपश्यतस्ततः।
सेज्यः स्वपः केन्द्रगतः स्वभेऽथवा
सम्पत्प्रदः स त्रिकगोऽर्थवर्जितः॥४॥

सम्पत्तिमानिति। कपे=सुखेशे, उद्गमगे=लग्नते, अङ्ककेशौ=नवम-चतुर्थ-स्वामिनौ, स्वस्वगेहे=निजनिजराशौ अर्थान्नवमेशो नवमं, चतुर्थेशश्चतुर्थ मित्यर्थः। यदि परिपश्यतः=विलोकयतः, चेत्तदा जातो नरः, सम्पत्तिमान्=अतिविभववान् भवेदितिशेष।

अयं योगस्तु महादेवेन प्रकारान्तरेणोक्तः, तथा च तत्सूत्रम्—

"धर्म्मेशेऽङ्के तुर्य्यकेशौ स्वस्वभावावलोकितौ सम्पत्तिमान्।" इति।

तत इति। ततस्तदनन्तरं, सेज्यः=गुरुणा सहितः, स्वपः=धनेशः, केन्द्रगतः=चतुष्टयं प्राप्तः, अथवा स्वभे=धनभवने वर्त्तते, तदा जातस्य, सम्पत्प्रदः स्यादिति शेषः।

स इति। स धनेशः, यदि त्रिकगः=षष्ठाष्टमव्ययानामन्यतमगतः, तदा अर्थवर्जितः धनरहितः, निर्धन इत्यर्थः। भवेदिति शेषः।

लग्न में चतुर्थेश हो और वह चतुर्थ भाव को भी देखे, साथ ही नवमेश नवम भाव को देखता हो तो जातक सम्पत्तिवान् होता है।

केन्द्र में धनेश व गुरु के साथ हो अथवा धनेश गुरु युक्त होकर धनस्थान में हो। तब भी व्यक्ति को खूब सम्पत्तिमान् होता है।

धनभाव का स्वामी यदि त्रिक स्थानों में गया हो तो व्यक्ति निर्धन होता है।

ये सूत्र जातकालंकार के आधार पर बताए गए हैं। विशिष्ट अर्थ के लिए हमारा **जातकालंकार शुकसूत्र** देखें।

विचारणीय विषय यह है कि लग्न में बैठकर केवल मंगल ही चतुर्थ स्थान को देख सकता है। यदि त्रिपाद दृष्टि से योग बनता हो तो 'चतुर्थ को देखें' ऐसा कहना ही निरर्थक है क्योंकि सभी ग्रह चतुर्थ स्थान को त्रिपाद दृष्टि से देखते हैं। तब यह योग मकर लग्न या सिंह लग्न में घटित हो सकेगा। हमने अपनी व्याख्या में गणेश जी की त्रुटियां दिखाकर शुकसूत्र के आधार पर विचार किया है। कृपया पाठक स्वयं देखकर जातकालंकार शुकसूत्र के रहस्य को समझें।

यह बहुत सामान्य नियम है कि जिस भाव का स्वामी ६, ८, १२ में हो, उस भाव की सिद्धि नहीं होती है। अतः धनेश अष्टम में बैठ जाए तो धनभाव पीड़ित होगा। तथापि एकदम अन्तिम निर्णय पर न पहुचें। धनेश, गुरु एवं धनभावदृष्टा ग्रह के भी बलाबल का विचार लें।

अन्य निर्धन योग :

सम्बन्धेऽघविविषदां भवे भवेशे
किं नीचे द्युकृति चतुष्टये सपापे।
किं साघैर्धनधनपाग्पैः किमाये-
ऽन्त्येऽर्येऽहिर्यदि शयने धनेन हीनः॥५॥

सम्बन्ध इति। भवे=एकादशभावे, भवेशे=एकादशभावस्वामिनि च, अघविविषदां=पापग्रहाणां सम्बन्धे=सम्पर्के सति, तदा जातः, धनेन=द्रव्येन, हीनः=रहितो भवतीति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"खलान्वये लाभपतौ तथा ये" इति ।

किमिति । किं वार्थे । द्युकृति = सूर्ये, नीचे = निम्नराशौ, तुलायामित्यर्थः चतुष्टये = केन्द्रे, सपापे = पापसहिते सति, तदा जातः, धनेन = द्रव्येण, हीनः रहितः स्यात् ।

तथोक्तं सुधासागरे

"नीचे रवौकेन्द्रगते सपापे" इति ।

किमित । किं वार्थे । धनधनपायपैः = धन-धनेश-लाभेशैः, साघैः = पापसहिते सति तदा जातः, धनेन = द्रव्येण, हीनः = रहितः स्यात् ।

तथोक्तं सुधासागरे

"चेज्जनुषि तथा पापसहिताः । स्वकोशेशायेशा ननु भवति यो निर्धननरः" इति ।

किमिति । किं वार्थे । यदि चेत्, अहिः राहु, शयने = शयनावस्थां प्राप्तः सन्, आये = लाभे, अन्त्ये = द्वादशे, वा अर्थे = द्वितीये भवति, तदा जातः, धनेन = द्रव्येन, हीनः = रहितः स्यात् ।

तथोक्तं सुधासागरे

"लाभार्थान्त्ये यदा राहुः शयने निर्द्धनोऽवनौ । भ्रमते" इति ।

यदि एकादश भाव व एकादशेश से पापग्रह सम्बन्ध रखते हों ।

अथवा सूर्य अपनी नीच राशि में स्थित हो और केन्द्र में पापग्रह हों ।

अथवा धनभाव, धनेश एवं लाभेश तीनों ही पापयुक्त हों ।

लाभ, व्यय व धन स्थान में राहु शयनावस्था में हो तो व्यक्ति धनहीन होता है ।

इस श्लोक में चार धनहीन योग बताए गए हैं । लाभ, धनभाव एवं इनके स्वामियों से पाप सम्बन्ध धनाल्पता करेगा । सम्बन्ध से तात्पर्य यहां पाराशर सिद्धान्तोक्त चतुर्धा सम्बन्ध से है । सम्बन्धों की शक्ति के तारतम्य को भी ध्यान में रखना चाहिए ।

सुधासागरकार ने दूसरे योग को थोड़े भेद से माना है । हम भी यही अर्थ अधिक उपयुक्त समझते हैं । तदनुसार, सूर्य नीचराशि में पापयुक्त होकर केन्द्र में हो तो धनहीन योग है । अन्यथा केन्द्र में पापग्रह न हो तो नीचस्थ सूर्य अन्यत्र पापयुक्त होने पर भी हमने निर्धनता देते नहीं देखा । सुधासागर में स्पष्ट लिखा है—'नीचे रवौ केन्द्रगते सपापे ।' हमारी लघुपाराशरी विद्याधरी पृ० ३१ पर वृश्चिक

लग्न वाली कुण्डली उद्धृत है। वहां सूर्य द्वादश में नीचगत होकर बुध एवं मंगल से युक्त है। केन्द्र में पापग्रह नहीं है। ये व्यक्ति अच्छे धनी सज्जन थे।

राहु शयनावस्था में हो। यह कैसे ज्ञात होगा। इस विषय में हम अपने **जातक तत्त्व अखिलाक्षरा** में पृ० २७ पर बता चुके हैं। यहां संक्षेप में पुनः समझिए—

शयन, उपवेशन, नेत्रपाणि, प्रकाशन, गमनेच्छा, गमन, सभावास, आगम, भोजन, नृत्यलिप्सा, कौतुक एवं निद्रा ये १२ अवस्थाएं शयनादि अवस्थाएं कहलाती हैं।

जिस ग्रह की अवस्था जाननी हो उसके स्पष्टराश्यंश के आधार पर नक्षत्र संख्या जाने।

नक्षत्र संख्या को ग्रह संख्या (सूर्य—१, चन्द्र—२ इत्यादि) से गुणा करें। इस गुणनफल को ग्रह की नवांश संख्या से गुणा करें।

अब इष्ट घटी, लग्न संख्या एवं जन्म नक्षत्र संख्या जोड़कर गुणनफल में मिला लें।

इस संख्या को १२ से भाग दें। शेष संख्यातुल्य अवस्था होती है।

राहु की शयनावस्था के विषय में विशेष बताते हैं—

शयने च यदा राहौ यस्य जन्म भवेत्पुनः।
तस्य क्लेशो महादुःखं जायते च न संशयः॥
शयने च यदा जातः श्लीपदी न च संशयः।
धनहानिः भवेत्तस्य पीडा भवति नित्यशः॥
मिथुने च तथा सिंहे कन्यायां वृषभे यथा।
सर्वसुखसमायुक्तः शयने च विधुन्तुदः॥

'शयनावस्था में राहु महादुःख एवं क्लेश देता है। ऐसा व्यक्ति पैरों में सूजन या फीलपांव से ग्रस्त होता है और धन हानि होती है। यदि मिथुन, सिंह, वृष, कन्या में राहु शयनावस्था में भी हो तो भी सब देता है।'

यह फल भावनिरपेक्ष बताया गया है। प्रकृत ग्रन्थकार ने लाभ, व्यय, धनभाव में ही उक्त फल माना है। लेकिन बृहत्पाराशर में भी कहीं भी राहु की शयनावस्था का उक्तोदाहृत फल माना गया है।

धन-नाश योग :

वित्ते वक्रे वह्निचौरैं स्वनाशः
कोणे जीवे भोजने वित्तनाशः।
ग्लौदृष्टे ज्ञेऽर्थेऽर्थहानिर्ज्ञदृष्टे
क्षीणेऽर्थेऽब्जेऽर्थे सञ्चितार्थस्य नाशः ॥६॥

वित्त इति। वक्रे=भौमे, वित्ते=धने भवति, तदा, वह्निचौरैः=अग्नि-चौरजनै, स्वनाशः=धननाशः, स्यादिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"कोशे कुजेऽर्थनाशोऽग्नितस्कराधिपतो भवेत्" इति।

कोण इति। जीवे=बृहस्पतौ, कोणे=पञ्चनवमयोरन्यतरे भवति तदा, भोजने=आहारे, वित्तनाशः=धनक्षयः स्यादिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"त्रिकोणे च यदा जीवे भोजनेन धनक्षयः" इति।

ग्लाविति। ग्लौदृष्टे=चन्द्रविलोकिते, ज्ञे=बुधे, अर्थे=द्वितीये भवति, तदा जातस्य, अर्थहानिः=धनक्षतिः स्यादिति शेषः।

ज्ञेति=ज्ञदृष्टे=बुधविलोकिते, क्षीणे=कृशे, अब्जे=चन्द्रे, अर्थे=द्वितीये भवति तदा, सञ्चितार्थस्य=संग्रहीतधनस्य, नाशः=क्षयः, भवेदिति शेषः।

धन स्थान में मंगल हो तो अग्नि या चोरों द्वारा धन नष्ट होता है।

पंचम या नवम में बृहस्पति हो तो भोजनादि में धन व्यय हो जाता है।

धन भाव में बुध को चन्द्रमा देखे तो भी धन का नाश होता है।

धन स्थान में क्षीण चन्द्रमा को बुध देखे तो भी धन नाश एवं धनागम पर प्रतिबन्ध होता है।

उक्त योगों में अन्य ग्रहों का प्रभाव होने पर मिश्रित फल होता है। ये योग अन्य निरपेक्ष भाव से बताए गए हैं। धन स्थान में चन्द्रमा या बुध कोई भी धननाशक होता है। सारावली में कहा गया है।

बुधदृष्टस्त्रिदशगुरुः कुटुम्बराशौ च निःस्वतां कुरुते।
सोमतनयोऽपि शशिना निरीक्षिते हन्तिसर्वधनम् ॥

चन्द्रोऽपि धनस्थाने क्षीणोऽपि बुधेक्षितः सदा कुरुते।
पूर्वार्जितार्थनाशं निरोधमपि चान्यवित्तस्य ।।
(सारावली ३४/१८-१९)

अर्थात् धन स्थान में गुरु को बुध देखे या बुध को चन्द्रमा देखे या क्षीण चन्द्रमा को बुध देखे तो धन नाश हो जाता है।

सुन्दर नेत्र योग :

वीर्य्यैरुपेते यदि लोचनेश्वरे
स्याच्चेतनश्चारुविलोचनो भवः।
सम्बन्ध एवं नयनालये सतां
नाकौकसां चेत्सति शोभनेक्षणः ।।७।।

वीर्यैरिति। यदि चेद् लोचनेश्वरे लोचनयोर्दक्षिणवामयोर्द्वितीयद्वादशस्थान सञ्ज्ञकयोरीश्वरः स्वामी 'जातवेकवचनम्' तस्मिन्, वीर्य्यैः स्थानादिभिः षड्बलैः, उपेते युक्ते सति तदा, भवो जातः, चेतनो जन्मी, चारुविलोचनः सुन्दरनयनः, स्याद्भवेत्।

सम्बन्ध इति। एवं नयनालये नेत्रस्थानद्वये सतां नाकौकसां शुभग्रहाणां सम्बन्धे सम्पर्कचतुष्टये सति चेत्तदा जातः शोभनेक्षणः सुन्दरनयनो भवेदिति शेषः।

यदि द्वितीय व द्वादश स्थानों के स्वामी षड्बली हों तो मनुष्य के नेत्र सुन्दर होते हैं।

यदि उक्त नेत्र स्थानों (२, १२) में शुभग्रहों का सम्बन्ध हो तो भी मनुष्य के नेत्र सुन्दर होते हैं।

यहां भी सम्बन्ध से तात्पर्य पाराशरोक्त चार सम्बन्धों से ही है। जातक पारिजात में बताया गया है कि यदि नेत्रेश शुभयुक्त, शुभदृष्ट या शुभनवांशगत हो तो मनुष्य की आंखें सुन्दर होती हैं।

इसी प्रकार नेत्रस्थान में शुभग्रह हों या नेत्रेश के साथ शुभग्रह हों या नेत्र कारक ग्रहों के साथ शुभग्रह हों, साथ ही लग्नेश से दृष्टयुक्त हों तो मनुष्य की दृष्टि विशाल अर्थात् नेत्र बड़े या नेत्र ज्योति की श्रेष्ठता होती है—

नेत्रे शुभे तद्भवनेश्वरे वा, सौम्यान्विते कारकखेचरेन्द्रे।
लग्नेश्वरेणापि युतेऽथदृष्टे विशाल दृष्टिः स नरो विशेषात् ।।
(जातकपारिजात)

उक्त सभी योगों में शुभदृष्टयुक्त से तात्पर्य शुक्र व चन्द्रमा से नहीं लेना चाहिए। चन्द्रमा नेत्र ज्योति की क्षीणता का कारक है। और शुक्र स्वयं नेत्रविकार विधायक। शुक्र का स्वरूप भी काणवत् है। बल्कि इन दोनों के साथ होने से तो नेत्रेश ज्योतिक्षीणता, रात्र्यन्धकत्व या अन्धत्व देता है।

जन्मान्धादि योग :

जात्यन्धको लोचनलग्नपौ त्रिकं
प्राप्तौ सभेनौ किमुताङ्गपे त्रिके।
भार्कान्विते वा तपनेऽङ्गगेऽगुना
ग्रस्ते त्रिकोणेऽस्त्रयमौ किमङ्गगे॥८॥
लेये सभेऽथान्ध इनात्मजे हरि-
लग्नेऽथ सार्केन्दुसितास्त्रिकोपगाः।
स्त्रीपुत्रतातानुजमातृभावपा-
स्तेषां मनीषी प्रवदेदनेत्रताम्॥९॥

जातीति। लेय इति च। सभेनौ=शुक्र-सूर्यसहितौ, लोचनलग्नपौ=नेत्रेश-लग्नेशौ, त्रिकं प्राप्तौ=षष्ठाष्टमव्ययान्यतमगतौ, चेत्तदा जातः, जात्यन्धकः=जन्मान्धः शेषः।

किमुतेति। किमुत वार्थे। भार्कान्विते=शुक्र-सूर्ययुक्ते, अङ्गपे=लग्नेशे, त्रिके=षष्ठाष्टमव्ययान्यतमे भवति, तदा जातः, जात्यन्धकः=जन्मान्धः, भवेदिति शेषः।

वेति। वा विकल्पार्थे। तपने=रवौ 'तपनः सविता रविः' इति कोशात्। अङ्गगे=लग्नगते, अगुना=राहुणा, न विद्यन्ते गावो रश्मयो यस्य तेन। ग्रस्ते=गृहीते, अस्त्रयमौ=भौम-शनी, त्रिकोणे=पञ्चमनवमयोः, भवतः, चेत्तदा जातः, जात्यन्धको भवेदिति।

तथोक्तं उदयभास्करे

"यदि तनौ भृगुजोऽप्यथ वा शनिर्भवति सिंहगतोऽक्षिहरस्तदा" इति।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। इनात्मजे=शनैश्चरे, हरिलग्ने=सिंहलग्ने भवति, तदा जातः, अन्धः=नेत्रहीनः, भवेदिति शेषः।

तथोक्तं सङ्केतनिधौ

"सिंहलग्ने सितो वा यमो वा नेत्रपीडाकरौ मानवानां मतौ" इति।

अथेति । स्त्रीपुत्रतातानुजमातृभावपाः = पत्नी-पुत्र-पितृ-भ्रातृ-मातृभावेशाः, यदि सार्केन्दुसिता = सूर्य-चन्द्र-शुक्रसहिताः, त्रिकोपगाः = षष्ठाष्टमव्ययगताः भवन्ति, चेत्तदा, तेषां पुत्रादीनां, अनेत्रतां = अन्धत्वं, प्रवदेत् = कथयेत्, बुध इति शेषः ।

उदयभास्करेऽपि

"पितृसुतानुजमातृकुटुम्बिनीपतयएवमिता हि तथाफलाः" इति ।

लग्नेश व नेत्रेश यदि सूर्य, शुक्र सहित त्रिक(६,८,१२) स्थानों में गए हों तो मनुष्य जन्मान्ध होता है ।

सूर्य शुक्र से युक्त लग्नेश यदि त्रिक भावों में हो तो भी मनुष्य जन्मान्ध होता है ।

लग्न में ग्रस्त सूर्य हो और मंगल व शनि त्रिकोण में स्थित हों तो व्यक्ति जन्मान्ध होता है ।

यदि सिंह लग्न में शनि या शुक्र स्थित हो तो नेत्रहर्ता होता है ।

जिस सम्बन्धी माता, पिता, भाई, पत्नी आदि के भावेश त्रिक में सूर्य व शुक्र से युक्त होंगे, वे ही सम्बन्धी अपने नेत्रों को खो देंगे ।

वास्तव में उक्त योगों में हमने नेत्र ज्योति की क्षीणता तो अवश्य देखी है । केवल सूर्य, शुक्र या चन्द्रमा भी त्रिक में हो तो नेत्र कमजोर हो जाते हैं । सम्बन्धियों के नेत्रों के विचार की पद्धति जातकालंकार में भी यही बताई गई है ।

सार्थान्त्यपौ भोद्गमपौ त्रिके वा
स्वे शीतगौ सोग्रसितेऽक्षिहीनः ।
दुष्टं गते चन्द्रमसा समेते
दैत्येन्द्रवन्द्ये यदि नैशिकान्धः ॥१०॥

सार्थेति । भोद्गमपौ = शुक्र-लग्नेशौ, सार्थान्त्यपौ = द्वितीयद्वादशस्वामिसहितौ त्रिके: = दुष्टस्थाने भवतः, चेत्तदा जातः, अक्षिहीनः = नेत्रहीनः भवेदिति शेषः ।

उदयभास्करेऽपि

"यदि धनान्त्यपती त्रिकगौ सिताङ्गपयुतौ च तदा नयनक्षति" इति ।

वेति । वा विकल्पार्थे । स्वे = द्वितीये, सोग्रसिते = पाप-शुक्रसहिते, शीतगौ = चन्द्रमसि सति, तदा जातः, अक्षिहीनः = नेत्रहीनः, भवेदिति शेषः ।

उदयभास्करेऽपि

"यदि विधुः ससितः सरवलोधने विनयनः" इति ।

दुष्टमिति । चन्द्रमसा = शशिना, समेते = युक्ते, दैत्येन्द्रवन्द्ये = शुक्रे, यदि चेत्, दुष्टङ्गते = त्रिकगते सति, तदा जातः, नैशिकान्धः = रात्र्यन्धः, भवेदिति शेषः ।

द्वितीयेश एवं व्ययेश लग्नेश व शुक्र से युक्त होकर त्रिक स्थानों में गए हों तो मनुष्य नेत्रहीन होता है ।

द्वितीय स्थान में चन्द्रमा यदि पापग्रह या शुक्र से युत हो तो भी मनुष्य नेत्ररहित होता है ।

त्रिक में चन्द्रमा से युक्त होकर शुक्र हो तो निशान्ध होता है ।

जातक पारिजात में तो सूर्य, शुक्र व चन्द्रमा की किसी भी भाव में एकत्र स्थिति ज्योतिक्षीण करती है या निशान्ध बनाती है । और भी कहा है कि सूर्य, शुक्र व लग्नेश यदि अदृश्य चक्रार्ध में हों तो भी मनुष्य की आंखें कमजोर होती हैं ।—

शुक्रेन्दुनयनाधीशैरेकस्थैस्तु निशान्धकः ।
सूर्यशुक्रविलग्नेशैरदृश्यैर्मध्यलोचनः ॥
(जातक पारि० ११.६५)

काण योग विचार :

संदृश्यतेऽर्केण कुलीरगेण
कण्ठीरवस्थेन कलावता वा ।
कन्दर्पयातः कुटिलोऽङ्कपाले
लेयालिमेषैणगते स काणः ॥११॥

पश्येत्कविर्वा धिषणः कलेशं
कामोपगं वा कुटिलं स काणः ।
भानोः पुरोभागगते कुजे नुश्-
योनदृक् स्याद् दृशि कोविदेऽङ्कः ॥१२॥

हेलेरधः स्थानगतेऽसृजि ज्ञे
दृश्यङ्कमेतीति भणन्ति केचित् ।
एकांशके भौमभपौ भवेतां
चेल्लक्षणं लोचनयोर्लपन्ति ॥१३॥

नेत्रद्वयेऽङ्को मलिनैः समेते-
ऽदृश्यार्द्धे इन्दौ किमु वैरिपे वा।
क्षीणं विधुं पश्यति पंगुनामा
वीक्षेत तं नो कविनामधेयः ।।१४।।

संदृश्यत इति। पश्येदिति। ह्रेलेरिति नेत्रद्वय इति च। कुलीरगेण = कर्कटस्थितेन, अर्केण = आदित्येन, अथवा कण्ठीरवस्थेन = सिंहराशिगेन 'कण्ठीरवोमृगरिपुः' इत्यभिधानात्। कलावता = चन्द्रमसा, कन्दर्पयातः = सप्तमगतः, कुटिलः = भौमः, संदृश्यते = विलोक्यते, अङ्कपाले—नवमेशे, लेयालिमेषैणगते = सिंह-वृश्चिक-मेष-मकरान्यतमगते सति, तदा यो जातः, स काणः = एकाक्षः, भवेदिति शेषः।

पश्येदिति। कविः = शुक्रः, वा धिषणः = बृहस्पतिः, कायोपगं = लग्नगृहसमाश्रितं कलेशं = चन्द्रं, वा कुटिलं = भौमं, पश्यति = विलोकयति, चेत्तदा यो जातः स काणः = काणनेत्रः, भवेदिति शेषः।

भानोदिति। भानोः = सूर्यात्, पुरोभागगते = अग्रगामिनि, अस्ताभिलाषिणीत्यर्थः। कुजे = भौमे सति, तदा जातस्य नुः = मनुजस्य, छायोनदृक् = कान्तिरहितदृष्टिः स्यात्।

दृशीति। सूर्यात् कोविदे = बुधे, पुरोभागगे = अग्रगामिनि, दृशि = दृष्ट्यां, अङ्कः = चिह्नं स्यात्।

ह्रेलेरिति। ह्रेलेः = सूर्यात्, अधःस्थानगते = पश्चाद्गामिनि, असृजि = भौमे, वा ज्ञे = बुधे, तदा, दृशि = दृष्ट्यां, अङ्कः = चिह्नं भवेदिति शेषः। इत्येवं केचिदाचार्याः, भणन्ति = कथयन्ति।

तथोक्तं मनुष्यजातके

"सूर्याधस्ताज्ज्ञारयोश्चिह्नलक्ष्णोः" इत्यत्र दिवा जन्मेति विशेषः।

एकांशक इति। चेद्यदि, भौमभपौ = मङ्गल-चन्द्रौ, एकांशके = एकस्मिन् राशावेकनांशके, भवेतां = स्यातां, तदा जातस्य, लोचनयोः = नेत्रयोः, लक्षणं = चिह्नं, लपन्ति = कथयन्ति, बुधा इति शेष।

नेत्रद्वय इति। इन्दौ = चन्द्रे, किमु वार्थे, वैरिपे = षष्ठेशे, अदृश्यगते = अदृश्यभागगते।

अदृश्यार्द्धं अनुदितं दक्षिणाङ्गम्। दृश्यार्द्धं उदितं वामाङ्गम्। एवं खात्सुखान्तं पूर्वार्द्धं, सुखात्खान्तं परार्द्धं ज्ञेयमिति। वेति। वा अथ वा। क्षीणं = कृशं, विधुं = चन्द्रं, पंगुनामा = शनैश्चरः, वीक्षेत = पश्येत्, तं (क्षीणं चन्द्रं), कविनामधेयः =

शुक्रः, नो वीक्षेत = नावलोकयेत्। एतस्मिन्योगद्वये, यो जातस्तस्य, नेत्रद्वये = लोचनद्वये, अङ्कः = चिह्नं, भवेदिति शेषः।

कर्क राशिगत सूर्य द्वारा या सिंह राशिगत चन्द्रमा द्वारा सप्तम भावस्थ मंगल पर पूर्ण दृष्टि रखी जाए और नवमेश मेष, सिंह, वृश्चिक मकर में कहीं हो तो जातक काना होता है।

यदि शुक्र या बृहस्पति लग्न भाव में स्थित चन्द्रमा या मंगल को देखता हो तो भी व्यक्ति काणनेत्र होता है।

सूर्य के निकट अस्ताभिलाषी मंगल हो तो मनुष्य की दृष्टि शोभा चमक से रहित होती है।

यदि सूर्य के निकट अस्ताभिलाषी बुध हो तो मनुष्य की आंखों में निशान (फूला) होता है।

इसी प्रकार सूर्य से नीचे अर्थात् सपदिमुक्त बुध, मंगल हो तो भी मनुष्य के नेत्रों में चिन्ह होता है।

यदि मंगल व चन्द्रमा एक ही राशिनवांश में हों तो नेत्र में चिन्ह होता है।

यदि चन्द्रमा व सपाप षष्ठेश अदृश्य चक्रार्ध में हों अर्थात् लग्न के भोग्यांश से सप्तम के भुक्तांश तक के मध्य में हों।

यदि क्षीण चन्द्रमा को शनि देखता हो और शुक्र न देखता हो तो मनुष्य की आंखों में निशान होता है।

अन्य योग :

कलानिधौ कर्किणि लोकितेऽघैः
खकामगैरल्पविलोचनो ना।
विलग्नपो वित्कुजभस्थ आभ्यां
समीक्षितः सन्नयनामयी ना ॥१५॥

कलानिधाविति। कलानिधौ = चन्द्रे, कर्किणि = कर्कराशौ तिष्ठति, खकामगैः = दशम-सप्तमस्थितैः, अघैः पापग्रहैः, लोकिते = दृष्टे सति, तदा जातः, ना = पुरुषः, अल्पविलोचनः = अल्पनेत्रः, भवेदिति शेषः।

विलग्नप इति। विलग्नपः = जन्मलग्नेशः, वित्कुजभस्थः = बुध-भौमराशिगतः, मेषमिथुनकन्यावृश्चिकान्यतमस्थितः सन्, आभ्यां (बुधकुजाभ्यां) समीक्षितः = आलोकितः, चेत्तदा जातः, ना = मनुजः, नयनामयी = नेत्ररोगी, भवेदिति शेषः।

कर्क राशि में स्थित चन्द्रमा को सप्तम या दशम भाव में स्थित पापग्रह देखते हों तो मनुष्य की आंखें कमजोर होती हैं।

यदि लग्नेश मिथुन, कन्या, मेष, वृश्चिक में कहीं स्थित हो और उसे बुध मंगल देखते हों तो मनुष्य के नेत्र में रोग होता है।

काव्यात्त्रिकस्थे नयनाधिपे वा
योगे स्वनाथास्फुजितोस्तथोक्तः।
अर्केऽककोणे खलयुक्तदृष्टे
ना लोचनाभ्यां विकलो मनस्वी ॥१६॥

काव्यादिति। काव्यात्=शुक्रात्, नयनाधिपे=द्वितीयद्वादशेशे, त्रिकस्थे=दुष्ट-स्थानगते, वा=अथवा, स्वनाथास्फुजितोः—द्वितीयेश-शुक्रयोः, योगे=युतौ भवति, तदा तथोक्तः, अर्थात् तेनैव प्रकारेण नयनामयी कथितं। इति।

तथोक्तं सुधासागरे

"नेत्रगदः स्वेशशुक्रयोगेऽपि। शुक्रात्त्रिकेऽक्षिपे वा" इति।

अर्क इति। कर्के=रवौ, अककोणे=व्यय-पञ्चम-नवमानामन्यतमे, खलयुक्त-दृष्टे=पापयुक्तविलोकिते सति तदा, ना=पुरुषः, लोचनाभ्यां=नेत्राभ्यां, विकलः—विह्वलः, अर्थान्निस्तेजोनेत्र इत्यर्थः। मनस्वी=प्रशस्तमनस्कः, भवेदिति शेषः।

शुक्र की अधिष्ठित राशि से ६,८,१२ भावों में द्वितीयेश एवं द्वादशेश स्थिति हों तो नेत्र विकार होता है।

५,६,१२ में सूर्य हो और पापी ग्रह उसे देखते हों तो मनुष्य के नेत्र निस्तेज एवं स्वयं वह चंचल स्वभाव का खुद्दार होता है।

इस विषय में एक कुण्डली यहां दी जा रही है। इसमें ये योग स्पष्ट घटित होते हैं—

(i) बुध की राशि में लग्नेश मंगल से दृष्ट है। (देखें श्लोक १५)

(ii) लग्नेश व शुक्र (सूर्य नहीं) त्रिक में है। (देखें श्लोक ९-१०)

(iii) शुक्र से त्रिक में दोनों नेत्रेश (सूर्य व बुध) स्थित हैं। (श्लोक १६)

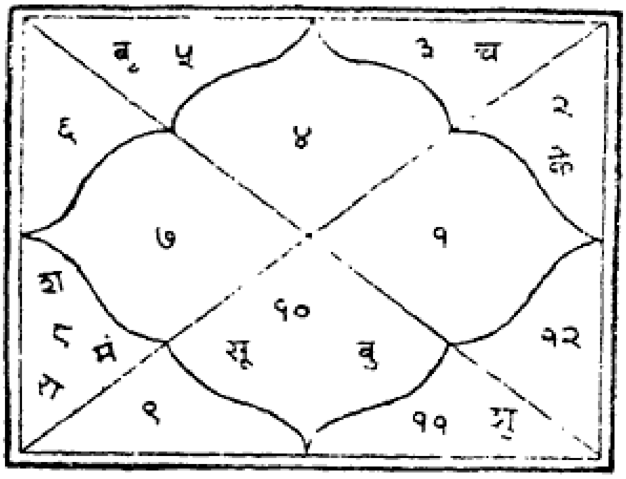

फलस्वरूप इनकी आंखें छोटेपन से ही काफी कमजोर हैं। बड़े नम्बर का (लगभग ६ नम्बर) चश्मा लगाते हैं।

अश्रुपात योग :

कालाङ्गपालावरिगौ विलोचने
वामे रुजा भे रुजि दक्षिणे रुजा।
पीडाश्रुपातादरिपेऽक्षिसङ्गते
काव्ये लयेऽङ्गे कलुषैर्विलोकिते ।।१७।।

कालेति। कालाङ्गपालौ = अष्टमेश लग्नेशौ, अरिगौ = षष्ठभावस्थितौ, वामे = सव्ये, विलोचने = नेत्रे, रुजा = रोग:, भवेदिति शेष:। यदि रुजि = षष्ठे, भे = शुक्रे भवति, तदा, दक्षिणे = असव्ये, विलोचने = नेत्रे, रुजा = रोग:, भवेदिति शेष:।

पीडेति अरिपे = षष्ठाधिपे, अक्षिसङ्गते = द्वितीयद्वादशगते, काव्ये = शुक्रे, लये = अष्टमे, अङ्गे = लग्ने, कलुषै: = पापै:, विलोकिते = निरीक्षिते सति, तदा, अश्रुपातात् = नयनजलपातात्, पीडा = आत्ति:, भवेदिति शेष:।

अष्टमेश व लग्नेश यदि षष्ठ में गए हों तो बाएं नेत्र में विकार या रोग होता है।

यदि षष्ठ स्थान में शुक्र हो तो दक्षिण नेत्र में विकार होता है।

द्वितीय या द्वादश में षष्ठेश में हो और अष्टम या लग्न में पाप दृष्ट शुक्र हो तो व्यक्ति की आंखों से पानी बहता है।

इस विषय में भी यही कुण्डली द्रष्टव्य है।

षष्ठेश गुरु द्वितीय में है और मंगलदृष्ट शुक्र अष्टम में है। अतः ये सज्जन जिस करवट लेटते हैं, उसी तरफ की आंख से स्वयमेव आंसू बह जाते हैं। कदाचित् गुरु दृष्टि इसमें कुछ कमी करती है। अतः आंसू की मात्रा चिन्तनीय नहीं होती है।

मुखदुर्गन्धि योग :

गदधवे विधुजे तनुगे विधौ
किमु कवौ क्रियकर्कगतेऽथ वा।
विधुकवी अविभे विबुधे द्विषि
किमुदये गदिताऽऽननगन्धता ॥१८॥

गदधव इति। विधुजे=बुधे, गदधवे=षष्ठेशे, विधौ=चन्द्रे, तनुगे=लग्नगते। किमु वार्थे। कवौ=शुक्रे, क्रियकर्कगते=मेष-कर्कान्यतरगते। अथ वा वार्थे। विधु कवि=चन्द्रशुक्रौ, अविभे=मेषे, विबुधे=बुधे, द्विषि=षष्ठे, किमु वार्थे, उदये=लग्ने भवति तदा, जातस्य आननगन्धता=मुखे दुर्गन्धिः, गदिता=कथिता बुधैरिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"कर्काजगे दानवपूजिते वा शशाङ्कशुक्रावजगौ च लग्ने।
षष्ठे बुधे वाङ्गगते शशाङ्के षष्ठाधिपे ज्ञे मुखगन्धता स्यात्॥" इति।

बुध की राशि यदि षष्ठ स्थान में पड़ी हो और चन्द्रमा लग्न में हो।

मेष या कर्क राशि में शुक्र स्थित हो। मेष में चन्द्रमा या शुक्र हों और षष्ठ या लग्न में बुध हो तो उक्त योगों में मनुष्य की सांस में दुर्गन्ध होती है।

मनुष्य जातक में कहा गया है कि शनि की राशि या त्रिशांश में शुक्र, या कर्क में शुक्र हो तो मुखदुर्गन्ध होती है। शेष योग उक्त प्रकार से ही बताए गए हैं—

शनिगृहे शनिहद्दगतेऽपि वा, भवति चन्द्रगृहेऽप्यथ भार्गवे।
अजगते वपुषीन्दुयुते बुधे रिपुपतौ च मुखस्य विगन्धता॥

(मनुष्यजातक)

॥ इति श्रीमुकुन्दर्दैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां धनभावाध्यायश्चतुर्थः ॥

[५]

सहजभावाध्याय

भ्रातृ सुख योग :

सोदर्य्यवान् विक्रमपे सदीक्षिते
स्वर्क्षेऽथ केन्द्रे सशुभेऽनुजाधिपे।
नोग्राढ्यदृष्टे बहुबन्धुसम्मदो
धैर्य्याधिपे सद्भलवे किमुत्तमैः ॥१॥

दृष्टे समेते सहजे बलान्विते
दुश्चिक्यपे वा सबले सहोत्थपे।
सोत्थेऽथ तत्कारकसोत्थनाथयोः
पुंदृष्टयोः पुंभलवे सहोत्थवान् ॥२॥

सोदर्य्यवानिति। दृष्ट इति च। विक्रमपे = तृतीयेशे, स्वर्क्षे = स्वराशौ, तृतीय इत्यर्थः। सदीक्षिते = शुभदृष्टे सति तदा, सोदर्य्यवान् = भ्रातृमान्, भवेदिति शेषः।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। अनुजाधिपे = तृतीयेशे, सशुभे = शुभयुते, केन्द्रे = लग्न-चतुर्थसप्तमदशमान्यतमे, नोग्राढ्यदृष्टे = न पापयुक्तदृष्टे, तदा जातस्य, बहुबन्धु-सम्मदः = बहूनां बन्धूनां हर्षः, सौख्यमिति यावत्। भवेदिति शेषः।

युते दृष्टे इत्यनुपलक्षणम्। योगे सत्यपि योगकर्त्तृषु भूयसी पापदृष्टिः, पापयोगः, योगकर्त्तृणां नीचास्तता योगे प्रागुक्तं लक्षणं न स्याद् इति।

धैर्य्याधिप इति। धैर्य्याधिपे = तृतीयेशे, सद्भलवे = शुभग्रहराशिनवांशे, भवति।

किं वार्थे। सहजे = तृतीये, उत्तमैः = शुभग्रहैः, दृष्टे = विलोकिते, समेते = युक्ते, दुश्चिक्यपे = तृतीयेशे बलान्विते = स्थानादिषड्बलयुक्ते। वा अथवा। सबले = बलसहिते, सोत्थपे = तृतीयेशे, सोत्थे तृतीये सति। अथ वार्थे। तत्कारकसोत्थ-नाथयोः = भ्रातृकारक-तृतीयेशयोः, पुंदृष्टयोः = पुरुषग्रहालोकितयोः, पुंभलवे = पुरुषराशिनवांशे भवतोः, तदा जातः सहोत्थवान् = भ्रातृमान्, भवेदिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"शुभेक्षिते तृतीयेशे स्वर्क्षगे भ्रातृमान् भवेत् ।
सोत्थपे सशुभे केन्द्रे तदा भ्रातृसुखं लभेत् ।" इति ।
"सवीर्ये सोत्थपे सोत्थे भ्रातृलाभो भवेत्पुनः ।"
"भ्रातृलाभस्तथा सौम्यभांशे सोत्थपलौ भवेत् ।" इति ।
"नृभांशे सोत्थत्कारकेशौनृदृष्टौ तदा भ्रातृ लाभः ।" इति ।

यदि तृतीयेश तृतीय भाव में हो और शुभग्रह उसे देखते हों।

तृतीयेश शुभयुक्त होकर केन्द्र में हो और पापग्रह उसे न देखते हों, तो जातक के बहुत से भाई होते हैं।

तृतीयेश यदि शुभग्रह के नवांश में स्थित हो या शुभराशि में हो।

तृतीय स्थान में शुभग्रहों की दृष्टि या योग हो और तृतीयेश बलवान् हो।

बलवान् तृतीयेश तृतीय भाव में ही स्थित हो।

भ्रातृकारक मंगल और तृतीयेश ये दोनों ही पुरुष ग्रह से दृष्ट होकर पुरुष राशि या नवांश में हों।

इन योगों में मनुष्य के भाई होते हैं।

तृतीय भाव, तृतीयेश एवं भ्रातृकारक मंगल इन तीनों का विचार इस सन्दर्भ में करना चाहिए। इन तीनों की बलवत्ता, इनका शुभग्रहों के साथ दृग्योग अथवा इनकी केन्द्र स्थिति भ्रातृ सुख देती है। इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर उक्त योग कहे गए हैं।

वैसे भाई का विचार करते समय नवम, सप्तम व एकादश स्थान को भी दृष्टि में रखना चाहिए। कहा गया है—

भ्रातृस्थानं तृतीयं च नवैकादशसप्तमम् ।
तत्तदीशदशायां च भ्रातृलाभो भवेन्नृणाम् ॥

(वैद्यनाथ)

लेकिन वैद्यनाथ एक बड़ी अनोखी बात कहते हैं। यदि मंगल निर्बल होकर तृतीय में हो तो जातक का भाई दीर्घायु होता है।

यदि मंगल बली होकर लग्न में बैठे या जिस भाव का कारक बली होकर लग्न में बैठे उसी भाव का सम्बन्धी प्रभावशाली होता है।

भौमो बलविहीनश्चेद्दीर्घायुर्भ्रातृगो भवेत् ।
विलग्नगो बली यस्य कारकः स प्रभुः स्मृतः ॥
(वैद्यनाथ)

प्रस्तुत कुण्डली में जातक को भाई का सुख प्राप्त है। भ्रातृकारक स्वोच्च में तृतीय में स्थित है। मंगल बली है। अतः तृतीय कारक एवं तृतीयेश दोनों ही स्वोच्च में हैं। अतः भ्रातृ सुख हुआ। लेकिन 'कारको भावनाशाय' के कारण मंगल तृतीयस्थ होकर, शनि द्वादशस्थ होकर भाइयों की संख्या कम ही रखेगा। फलस्वरूप ये दो भाई हैं।

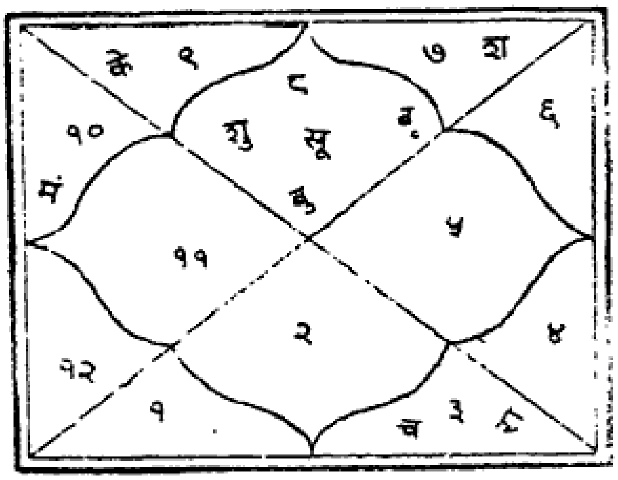

पीछे लग्नभावाध्याय के अन्त में गंजेपन के संदर्भ से एक कुम्भ लग्न वाली कुण्डली दी गई हैं। इनके भाई बहनों की संख्या ६ है। तीन भाई हैं।

वहां तृतीय में शुभग्रह शुक्र है। तृतीयेश मंगल एकादश में गुरु से दृष्ट है, पाप दृष्ट नहीं है। दोनों पुरुष राशि में हैं। अतः योग सिद्ध हुआ।

भ्रातृनाश योग :

सोत्थेशारौ त्रिकभवनगौ भ्रातृहीनस्ततोऽघै—
र्युक्ते दृष्टे किमु सहजभेऽघान्तरस्थे तदीशे ।
वाघैः स्वस्थैस्तमसि सहजेऽथोत्रिके कारके वा
सोत्थेशेऽघेक्षितयुत उत स्वोच्चभे भ्रातृहानिः ॥३॥

सोत्थेति । सौत्थेशारौ = तृतीयेश-भौमौ, त्रिकभवनगौ = दुष्टस्थानस्थितौ, यदा तदा जातः, भ्रातृहीनः = सोदररहितः, भवेदिति शेषः ।

तथोक्तं गणेशेन

"भ्रातृस्थानेशभौमौ व्ययरिपुनिधनस्थानगौ बन्धुहीनः ।" इति ।

तत इति । ततस्तदनन्तरं, सहजभे = तृतीये, अघैः = पापैः, युक्ते = सहिते, किमु = वार्थे, दृष्ट = विलोकिते, तदीशे = तृतीयभावेशे, अघान्तरस्थे = पापान्तरगते सति तदा, भ्रातृहानिः = सोदरनाशः, भवेदिति शेषः ।

वेति । वा = प्रकारान्तरार्थे । अघैः = क्रूरग्रहैः, स्वस्थैः = द्वितीयस्थैः, तमसि = राहौ, सहजे = तृतीये सति तदा, भ्रातृहानिः, भवेदिति शेषः ।

तथोक्तं सुधासागरे

स्वस्थाः पापाः सैंहिकेये च सोत्थे ।" इति ।

अथो इति । अथो अनन्तर्य्यार्थे । कारके = भ्रातृकारके भौम इत्यर्थः । त्रिके = दुष्टस्थाने, वा अथवा, सोत्थेशे = तृतीयेशे, त्रिके = दुष्टस्थाने, अघेक्षितयुते = पापदृष्टयुक्ते, उताथवा, स्वोच्चभे = निजोच्चराशौ भवति तदा, भ्रातृहानिः, भवेदिति शेषः ।

तथोक्तं सर्वार्थचिन्तामणौ

"भ्रातृस्थानाधिपे दुःस्थे कारके वा तथाविधे ।
पापेक्षिते पापयुते स्वोच्चे वा सोदरक्षयः ॥" इति ।

यदि तृतीयेश एवं मंगल त्रिक भवन में गए हों ।

यदि तृतीय स्थान पर पाप ग्रहों की दृष्टि या योग हो, अथवा तृतीयेश पाप ग्रहों के अन्तराल में हो ।

द्वितीय स्थान में पापग्रह एवं तृतीय में राहु स्थित हो ।

यदि तृतीयेश या कारक (मंगल) त्रिक भावों में हो और उसे पापग्रहों का दृग्योग प्राप्त हो या वह स्वोच्च में हो तो भाइयों की हानि होती है ।

इस श्लोक में बताये गए योग विशेष फलदायी प्रतीत नहीं होते हैं । यहां भ्रातृहीनता से तात्पर्य न होकर एक दो भाइयों की हानि हो, ऐसा संभव हो सकता है । बीसियों कुण्डलियों में हमने इन योगों के होते हुए भी भ्रातृयुक्तता देखी है ।

यदि तृतीयेश या कारक अष्टम स्थान में बैठे हों तो भाई की हानि अवश्य होती है । और इन पर पाप प्रभाव खूब हो तो भ्रातृ हानि होती है ।

इसी प्रकार तृतीयेश या तत्कारक नीचास्तंगत, नीच नवांश या क्रूर षष्ट्यंश में हो तो भी भ्रातृनाश होता है।

पराक्रमी एवं दास योग :

शुभेक्षाधिक्ये वा कलुषकलिते विक्रम उत
ससत्वे सोत्थेशे किमु सहजपे कण्टकगते।
त्रिकोणेऽथो योगेऽनुजतनुपयोर्विक्रमयुतः
शुभादृष्टैः पापैर्वियति भृतकः स्यान्मनुभवः ।।४।।

शुभेति। विक्रमे = तृतीये, शुभेक्षाधिके = शुभग्रह दृट्याधिक्ये, वा प्रकारान्तरार्थे। विक्रमे, कलुषकलिते = पापयुक्ते, उत वार्थे। सोत्थेशे = तृतीयेशे, ससत्वे = बलयुक्ते। किमु वार्थे। सहजपे = तृतीयेशे, कण्टकगते = केन्द्रगते, वा त्रिकोणे = नवमपञ्चमे भवति। अथो वार्थे। अनुजतनुपयोः = तृतीयेश-लग्नेशयोः, योगे = युतौ, एषु योगेषु जातो नरः, विक्रमयुतः = अतिविक्रमवान्, विक्रमस्त्वातिशक्तितेत्यभिधानात्। भवेदिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"सहजे शुभखेटानां दृष्ट्याधिक्येऽथवा युते।
पापैर्वासहजाधीशे बलाढ्ये विक्रमी भवेत् ।।

सोत्थाङ्गाधिपसंयोगे जायते च पराक्रमी।
तथा केन्द्रे च कोणे च सहजाधिपतौ गते ।।" इति।

शुभेति। वियति = दशमे, शुभादृष्टैः = सौम्यदृष्टिवर्जितैः, पापैः = क्रूरग्रहैः, खदिभः, तदा जातः, मनुभवः = मनुष्यः, भृतकः = दासः स्याद् भवेत्।

तृतीय भाव पर कई शुभग्रह दृष्टि रखते हों। तृतीय में पापग्रह स्थित हो। तृतीयेश बलवान् हो। तृतीयेश केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो। लग्नेश एवं तृतीयेश एक साथ हों।

इन योगों में उत्पन्न जातक बहुत पराक्रमी होता है।

दशम स्थान में पापग्रह हो और उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो मनुष्य दास वृत्ति, वेतन भोगी या आश्रित होता है।

दासत्व के विषय में शम्भूहोरा प्रकाश में राहु का ग्रहण नहीं है। कहा गया है कि शनि, मंगल, सूर्य दशम में शुभ दृष्टिहीन हों तो मनुष्य आश्रित होता है—

'मन्दारसूर्यैः शुभदृष्टिहीनैः कर्मस्थितैः स्याद्भृतको मनुष्यः ।।
(शम्भूहोरा)

जातक पारिजात में तृतीयेश के साथ स्थित ग्रहों का बहुत सुन्दर फल बताया गया है—

यदि तृतीयेश सूर्य के साथ हो तो वीर, चन्द्रमा के साथ हो तो धैर्यवान्, मंगल से युक्त हो तो दुष्ट, जड़ एवं क्रोधी होता है। बुध से युक्त हो तो सात्त्विक बुद्धि वाला, गुरु से युक्त हो तो धैर्यगुणशाली, समस्त शास्त्रों में प्रयत्न करने वाला, शुक्र से युक्त हो तो कामातुर एवं काम कलह में प्रवीण, शनि से युक्त हो तो जड़, राहु से युक्त हो तो डरपोक, केतु से युक्त हो तो बीमार और हृदयरोगी होता है।
(जातक पारिजात १२,३५,३७)

भुजा कष्ट योग :

शुक्रे सौख्ये दिवा ज्ञो युत इनजगुरुक्षोणिजैर्हस्तनाशो
माहेयार्की तमास्ये रिपुभवनगतौ सम्भवे तद्वदेव ।
द्वेष्यस्थाने सकाव्ये तपनतनुभवे तद्वदादित्यनाम—
सञ्ज्ञाभूशर्वरीशा अहितमृतिगता बाहुबाधां प्रकुर्युः ।।५।।

शुक्र इति। दिवा=दिवसे, जन्म स्यात्, शुक्रे=भार्गवे, सौख्ये=चतुर्थे, ज्ञः=बुधः, इनजगुरुक्षोणिजैः=शनि-बृहस्पति-भौमैः, युतः=सहितः, चेत्तदा जातस्य, हस्तनाशः=करहानिः, भवेदिति शेषः ।

माहेयार्की इति । यदि सम्भवे=जन्मनि, माहेयार्की=मङ्गलशनी, तमास्ये=राहुमुखे तत्स्थिवन्तौ। रिपुभवनगतौ=षष्ठस्थानं प्राप्तौ, चेत्तदा, तद्वदेव, हस्तनाशो भवेदित्यर्थः।

तथोक्तं मनुष्यजातके
"शन्यारौ राहुमुखे चारिगौ हस्तनाशः।" इति।

द्वेष्येति। द्वेष्यस्थाने=षष्ठे, सकाव्ये=शुक्रसहिते, तपनतनुभवे=शनौ, भवति तदा तद्वत्, हस्तनाशो भवेदित्यर्थः।

तथोक्तं सुधासागरे
द्वेष्यर्क्षे हस्तनाशः स्यान्मन्द शुक्रयुते यदि।" इति।

आदित्येति। आदित्यनामसंज्ञाभूशर्वरीशाः=सूर्य-शनि-चन्द्राः, अहितमृतिगताः=षष्ठाष्टमगताः, चेत्तदा, बाहुबाधां=भुजपीडां, प्रकुर्युः=विदधते।

शुक्र चतुर्थ स्थान में हो और दिन में जन्म हो एवं बुध, गुरु, शनि मंगल कहीं भी एकत्र हों।

षष्ठ स्थान में शनि व मंगल राहु के मुख में स्थित हों।

षष्ठ में शुक्र शनि हों तो इन योगों में मनुष्य का हाथ कटता या टूटता है।

यदि षष्ठ एवं अष्टम भाव में सूर्य, चन्द्र, शनि हों तो भी मनुष्य को हाथ में कष्ट देते हैं।

तृतीय स्थान से भुजा का भी विचार होता है। उक्त श्लोक में राहु का मुख बताया गया है। इसके जानने का प्रकार इस प्रकार है—

भोग्याराहोर्लवास्तस्य मुखं पृष्ठं गता लवाः।
ततः सप्तमभं पुच्छं विमृश्येति फलं वदेत्॥
(नील कण्ठी)

'राहु के भोग्यांश मुख हैं। गतांश पृष्ठ हैं और राहु से सातवीं राशि में राहु की पूंछ होती है।'

राहु सदैव वक्रगति से चलता है। अतः राहु स्पष्ट में जितने अंश कला हों वे ही भोग्यांश अर्थात् मुख होते हैं।

राहु स्पष्ट के अंशों को ३०° में से घटाकर शेष गतांश या पृष्ठ होते हैं।

अतः आशय यह हुआ कि शनि, मंगल एवं राहु षष्ठ स्थान में हो और राहु के भोग्यांशों में शनि व मंगल के गतांश पड़ते हों तो उक्त योग घटित होता है।

॥ इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां सहजभावाध्यायः पंचमः ॥

[६]

सुखभावाध्याय:

सुख विचार :

शुभे विलग्ने विमलाभ्रचारिभि
निरीक्षितेऽशोभनयोगवर्जिते ।
किमम्बुपे वाक्पतिवीक्षितऽथवा
सदन्तराले सुखपे सुखी नरः ।।१।।

शुभ इति। विलग्ने = समुदये, शुभे = शुभग्रहे, विमलाभ्रचारिभिः = शुभग्रहैः, निरीक्षिते दृष्टे, अशोभनयोगवर्जिते = पापग्रहयोगरहिते सति, तदा जातः, नरः, सुखी, भवेदिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे
''शुभदृष्टे शुभे लग्ने पापयोगविवर्जिते।'' इति।

किमिति। किं वार्थे। अम्बुपे = सुखेशे, वाक्पतिवीक्षिते = बृहस्पतिदृष्टे सति, तदा जातः, नरः, सुखी, भवेदिति शेषः।

अथवेति। अथवा वार्थे। सुखपे = चतुर्थेशे, सदन्तराले = शुभग्रहाणां मध्यस्थे सति, तदा जातो नरः, सुखी भवेदिति शेषः।

यदि लग्न में शुभग्रह हो और वह पापग्रह की दृष्टि योग से रहित शुभग्रह से दृष्ट हो।

यदि चतुर्थेश को बृहस्पति देखता हो।

यदि चतुर्थेश शुभग्रहों के मध्य में स्थित हो। इन योगों में मनुष्य सुखी होता है।

चतुर्थ स्थान से माता, सुख, अचल सम्पत्ति, मित्र आदि का विचार किया जाता है। यदि चतुर्थ भाव पर शुभ दृष्टियोग या चतुर्थेश की दृष्टि या योग होगा तो मनुष्य सुखी होगा। कहा गया है—

'अधिपसौम्ययुतेक्षितमम्बुभं सुखकरं नियतं सबलं तथा ।।

(उदय भास्कर)

इसी प्रकार चतुर्थेश एवं चतुर्थ कारक से भी विचार करना चाहिए। बृहस्पति सुख दाता ग्रह है। गुरु के बलवान् होने पर या गुरु का प्रभाव चतुर्थ पर होने से जातक सुखी होता है।

किसी भी भाव का विचार करते समय इस बात को अवश्य दृष्टि में रखिए कि जिस भाव से केन्द्र त्रिकोण या उपचय में शुभग्रह होंगे, स्वामी का कारक बली होगा, उस भाव का फल अवश्य मिलेगा। आशय यह है कि जिस भाव का विचार अभीष्ट हो, उसी भाव को लग्नवत् मानकर विचार कीजिए। फलदीपिका में कहा गया है—

भावस्य यस्यैव फलं विचिन्त्यं
भावं च तं लग्नमिति प्रकल्प्य।
तस्माद् वदेद् द्वादशभावजानि,
फलानि तद्रूपधनादिकानि ।।
(मन्त्रेश्वर)

दुःखी व अधीरता योग :

बन्धौ वक्रेऽहीनहेम्नैर्विदास्थै-
श्छायापुत्रश्छिद्रगो दुःखभागी।
कृष्णे कायेऽस्त्रे क्षतेऽहौ हरस्थे
वाग्नेयानां मध्य इन्दौ ततोऽघैः ।।२।।

प्राग्लग्नस्थैर्दुःख्यघैः पीड्यमाने
होरेशार्कौ सौख्यहीनो जनुष्मान्।
ईक्षेताङ्गं मङ्गलः स्वालयस्थो
वार्कौ खस्थे जन्मरात्रावधीरः ।।३।।

बन्धाविति। प्रागिति च। बन्धौ = चतुर्थस्थाने, वक्रे = भौमे, अहीनहेम्नैः = राहु-सूर्य-बुधैः, विदास्थैः = पञ्चमस्थितैः, छायापुत्रः = शनिः, छिद्रगः = अष्टमगतः, चेत्तदा जातः, दुःखभागी = कष्टभाक्, स्यादिति शेषः।

कृष्ण इति। कृष्णे = शनौ, काये = लग्ने, अस्त्रे = भौमे, क्षते = षष्ठे, अहौ = राहौ, हरस्थे = अष्टमस्थानस्थिते सति, तदा जातः, दुःखी = कष्टभाक्, भवतीति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे
"दुःखी, लग्ने मन्दे च षष्ठे यदि भवति कुजे, सैंहिकेयेऽष्टमेऽपि।" इति।

व्रेति । प्रकारान्तरार्थे । आग्नेयानां=पापानां, मध्ये=अन्तराले, इन्दौ=चन्द्रे सति, तदा जातः, दुःखी, भवतीति शेषः ।

तत इति । ततस्तदनन्तरं, अघैः=पापैः, प्राग्लग्नस्थैः=लग्नस्थितैः सद्भिः, तदा दुःखी, भवतीति शेषः ।

अघैरिति । अघैः=पापग्रहैः, पीड्यमाने=पीडिते दृष्ट्या योगेन वा विकलीकृते यद्वा पराजित इत्यर्थः । होरेशार्कौ=लग्नस्वामिशनैश्चरे सति, तदा जातः जनुष्मान्, सौख्यहीनः=सुखवर्जितः, दुःखी भवतीत्यभिप्रायः ।

ईक्षतेति । स्वालयस्थः=स्वराशिस्थितः, मेषस्थितो वृश्चिकस्थितोवेत्यर्थः, मङ्गलः =भौमः, अङ्गं=लग्नं, ईक्षेत=पश्येत्, तदा जातः, अधीरः=कातरो भीरुरिति यावत् वा=प्रकारान्तरार्थे, रात्रौ=निशि, जन्म=जननं, आर्कौ=शनौ, खस्थे=दशमस्थिते सति, तदा जातः, अधीरः=कातरो भवतीति शेषः ।

यदि चतुर्थ स्थान में मंगल, पंचम स्थान में सूर्य, बुध व राहु हों, शनि अष्टम स्थान में हो तो जातक बहुत कष्ट पाने वाला होता है। यह एक सम्पूर्ण योग है ।

शनि लग्न में हों, मंगल षष्ठ में हो और राहु अष्टम स्थान में स्थित हो तो भी मनुष्य कष्टभागी होता है ।

यदि चन्द्रमा पापग्रहों के अन्तराल में स्थित हो तो भी मनुष्य दुःखी होता है ।

यदि लग्न में कई पापग्रह हों तो भी मनुष्य दुःखी होता है ।

यदि मकर, कुम्भ लग्न में जन्म हो और शनि पापदृग्योग से पीड़ित हो तो मनुष्य सुखहीन होता है ।

मेष या वृश्चिक राशि में स्थित मंगल लग्न को देखता हो तो जातक अधीर होता है ।

अथवा रात्रि में जन्म हो और शनि दशम स्थान में स्थित हो तो मनुष्य अधीर होता है ।

लग्न में कई पापग्रह होना या लग्न पर अधिक पाप प्रभाव सदैव सारी कुण्डली को बिगाड़ देता है। प्रायः सभी भाव तक कमजोर पड़ जाते हैं। लग्न सबमें मुख्य है। इसी कारण कल्याण वर्मा ने लिखा है—

पापास्त्रयोऽपि मिलिताः कुर्वन्ति नरं सुदुर्भगं लोके ।
दारिद्र्य दुःखतप्तं गर्हितरूपं विनयहीनम् ॥

(सारावली १६-३८)

आशय यह है कि किसी भी स्थान में तीन पापग्रह मनुष्य को दुर्भाग्यशाली एवं गर्हित बनाते हैं। तब लग्न में हों तो क्या कहना ?

माता की दीर्घायु के योग :

मातुश्चिरायुः शुभभागगे भपे
केन्द्रे कवौ किं सुकृतेक्षितान्विते।
वीर्य्यान्वितेऽब्जे किमु कारकेंऽसले
सौम्याभ्युपेते किमकल्मषे कगे ॥४॥

मातुरिति। भपे = चन्द्रे, शुभभागगे = शुभग्रहनवांशगते, कवौ = शुक्रे, केन्द्रे = चतुष्टये सति, तदा जातस्य, मातुः = जनन्याः, चिरायुः = दीर्घायुः, भवतीति शेषः।

कमिति। किं वार्थे। वीर्य्यान्विते = बलवति, अब्जे = चन्द्रे, सुकृतेक्षितान्विते = शुभदृष्टयुक्ते यदि तदा जातस्य, मातुर्दीर्घायुर्भवति।

किमु इति। किमु वार्थे। अंसले = वलिनि, कारके = मातृकारकग्रहे (चन्द्रे) सौम्याभ्युपेते = शुभग्रहयुक्ते सति, तदा जातस्य, मातुर्दीर्घायुर्भवति।

किमिति। किं वार्थे। अकल्मषे = शुभदिविचरे, कगे = चतुर्थस्थानस्थिते सति, तदा जातस्य, मातुर्दीर्घायुर्भवति। 'तथा च ज्योतिस्तत्त्वेः'—यद्वाऽनघे के इति।

यदि चन्द्रमा शुभग्रह के नवांश में हो और शुक्र केन्द्र में हो।

बलवान् चन्द्रमा यदि शुभग्रह से दृष्ट या युक्त हो।

मातृकारक ग्रह बली और शुभग्रह से युक्त हो।

चतुर्थ स्थान में शुभग्रह हो तो इनमें से कोई एक योग होने पर मनुष्य की माता लम्बी आयु वाली होती है।

चन्द्रमा मातृकारक है। चतुर्थ कारक चन्द्रमा से भी एवं चतुर्थ से भी अष्टम स्थान अर्थात् एकादश में माता की आयु का विचार करना चाहिए। फलदीपिका में यही प्रकार बताया गया है।

मातृ कष्ट योग :

मृतिं जनन्या विदधात्यरं खले
क्षितो यमः केऽथ खलान्तरे विधौ।
किं वेन्दुतोस्ते सलिले खलैरुता-
ऽऽरेऽङ्केऽरुणेऽस्तानुजगे ततोऽनुजे ॥५॥

राहौ यमेऽर्थेऽङ्गगतेऽङ्गिरोऽङ्गजे
माता न जीवेत्सखलोडुपेऽस्तगे ।
किं व्योम्नि वक्रे बलिवाक्पतौ वधे
वाऽरौक्षयेऽब्जेऽसृजि सासति स्मरे ॥६॥

नाम्बासुखं नन्दनगे निशाकरे
बाङ्काभ्रयोरिन्द्वसृजावथार्कजे ।
साघेऽघराशो तत इन्दुतः सिते
ऽनङ्गेसपङ्के जननीसुखं नहि ॥७॥

मृतिमिति । राहाविति । नाम्बेति च । खलेक्षितः = पापदृष्टः, यमः = शनैश्चरः, के = चतुर्थे सति, तदा जातस्य, जनन्याः = मातुः, अरं = शीघ्रं 'अरः शीघ्रे च चक्राङ्गे' इति विश्वः । मृतिं = मरणं, विदधाति = कुरुते ।

अथेति । अथशब्द अनन्तर्य्यार्थे । विधौ = चन्द्रमसि, खलान्तरे = पापमध्यगते सति, तदा जातस्य, माता न जीवेत् ।

किं वेति । किं वा = वार्थे । इत्युक्तः = चन्द्रात् 'पञ्चम्यास्तसिल्' । अस्ते = सप्तमे, सलिले = चतुर्थे, खलैः = पापैः सद्भिः, तदा जातस्य, माता न जीवेत् ।

उतेति । उत वार्थे । आरे = भौमे, अङ्गे = लग्ने, अरुणे = रवौ 'अरुणोऽर्कार्कसारथ्यो ररुणो लोहितेऽन्यवत्' इति विश्वः । अस्तानुजगे = सप्तमतृतीयगते सति, तदा जातस्य, माता न जीवेत् ।

तत इति । ततो योगविचारानन्तरं, राहौ = स्वर्भाणुपुत्रे, अनुजे = तृतीये, यमे = शनौ, अर्थे = द्वितीये, अङ्गिरोऽङ्गजे = बृहस्पतौ, अङ्गगते = लग्नगते सति, तदा जातस्य, माता न जीवेत् ।

तथा चोदयभास्करे

"यदि तनौ गुरुरर्कसुतो धने सुररिपुः सहजे जननीहरः ।" इति ।

सखलेति । सखलोडुपे = पापयुक्तचन्द्रे, अस्तगे = सप्तमस्थानस्थिते सति, तदा जातस्य, अम्बासुखं = मातृसुखं न भवेदिति शेषः ।

किमिति । किं वार्थे । वक्रे = भौमे, व्योम्नि = दशमे, बलिवाक्पतौ = बलिबृहस्पतौ, वधे = अष्टमे सति, तदा जातस्य, अम्बासुखं = मातृसुखं न भवेदिति शेषः ।

वेति । वा प्रकारान्तरार्थे । अब्जे = शशिनि, अरौ = षष्ठे, क्षये = अष्टमे वा, स्मरे = सप्तमे, सासति = पापयुक्ते, असृजि = भौमे सति, तदा जातस्य, अम्बासुखं, मातृसुखं न भवेदिति ।

निशाकर इति। निशाकरे = चन्द्रे, नन्दनगे = पञ्चमस्थिते सति, तदा जातस्य, अम्बासुखं = मातृसुखं न भवेत्।

वेति। वा प्रकारान्तरार्थे। अङ्काभ्रयोः = नवमदशमयोरन्यतरे, इन्दुसूजौ = चन्द्रभौमौ यदि भवतः, तदा जातस्य, जननी सुखं = मातृसुखं, नहि भवेत्।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। अर्कजे = शनौ, साघे = पापसहिते, अघराशौ = पापराशौ भवति, तदा जातस्य, जननीसुखं = मातृसुखं नहि भवेत्।

तत इति। ततो योगविचारानन्तरं, इन्दुतः = चन्द्रात्, अनङ्गे = सप्तमे, सपङ्के = पापसहिते, सिते = भार्गवे भवति, तदा जातस्य, जननीसुखं = मातृसुखं, नहि भवेत्।

यदि पापग्रहों से दृष्ट शनि चतुर्थ स्थान में हो तो माता की शीघ्र मृत्यु करता है।

चन्द्रमा पापग्रहों के बीच में हो। चन्द्रमा से चतुर्थ व सप्तम में पापग्रह हों।

लग्न में मंगल व ३.७ भाव में सूर्य हो।

लग्न में गुरु, द्वितीय में शनि एवं तृतीय में राहु स्थित हो इन योगों में से कोई योग हो तो मातृकष्ट योग बनता है।

सप्तम में पापयुक्त चन्द्रमा हो।

दशम में मंगल और अष्टम में बलवान् गुरु हो।

६.८ में चन्द्रमा और सप्तम में पापयुक्त मंगल हो।

इन तीन योगों में माता का सुख नहीं मिलता है।

पंचम में चन्द्रमा हो। ९, १० में किसी भी प्रकार से चन्द्र मंगल हों। पापग्रह की राशि में पापयुक्त शनि हो।

चन्द्रमा से सप्तम में पापयुक्त शुक्र हो तो इन योगों में भी माता का सुख नहीं मिलता है।

कल्याण वर्मा ने और भी कई योग बताए हैं। इनमें मातृकष्ट या मातृ सुख का अभाव होता है—

(i) चतुर्थ व सप्तम में कई पापग्रह हों।
(ii) चन्द्रमा कई पापग्रहों से युक्त हो।
(iii) चन्द्रमा से सप्तम भाव में पापग्रहों को मंगल देखता हो।
(iv) चन्द्रमा से दशम भाव में पापयुक्त सूर्य हो।
(v) शुक्र से पंचम स्थान में शनि हो या शनि की दृष्टि हो।

(vi) चन्द्रमा से त्रिकोण राशि में पापदृष्ट शनि हो और रात्रि में जन्म हो।

(vii) दिन में जन्म हो और शुक्र से त्रिकोण में मंगल पापदृष्ट हो।

क्लेशोमातुः क्रूरैर्बन्धवस्तगतैः शशांशयुक्तैर्वा।
चन्द्रात् सप्तमराशौ पापा मरणाय वक्रसंदृष्टाः॥

चन्द्राद् दशमे भानुर्मातुर्मरणं करोति पापयुतः।
शुक्रात् पंचम भवने सौरियुत स्तेन वा दृष्टः॥

चन्द्रात् त्रिकोणराशौ रविजो मातुर्वधं दिशति रात्रौ।
शुक्रात्तथैव दिवसे भौमः पापेन संदृष्टः॥

(सारावली ६, ३४-३६)

यहां हम एक ऐसे बच्चे की कुण्डली दे रहे हैं। जिसके जन्म के अगले दिन इसके पिता की मृत्यु हो गई। इसके सम्बन्धी ने इसे गोद लिया तो महीने भर के भीतर ही उस सम्बन्धी की भी मृत्यु हो गई। बाद में इसकी वास्तविक माता भी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो गई।—

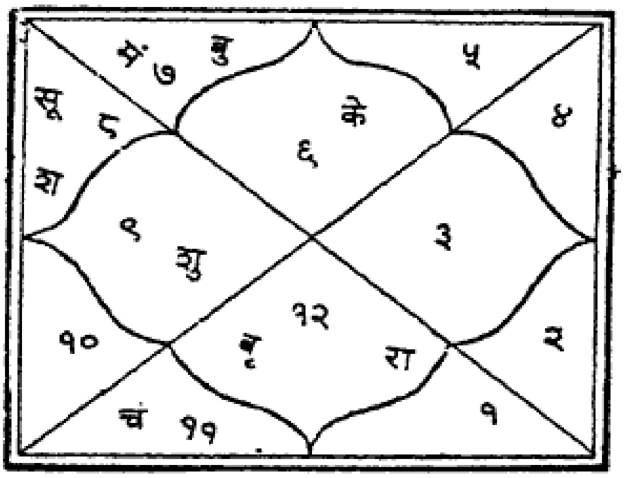

उक्त योगों में से एक योग यहां है—पापग्रह की राशि में पापयुक्त शनि है। दूसरा योग कल्याणवर्मोक्त है—चन्द्रमा से दशम स्थान में (माता का कारक) शनि युक्त सूर्य है। अतः मातृ नाशक योग बना। मातृ कारक चन्द्रमा भी त्रिक में है। चतुर्थेश गुरु राहु युक्त है। चतुर्थ पर या चन्द्रमा पर दृष्टि भी नहीं है। अतः ये बातें भी ध्यातव्य हैं।

अब पितृकारक सूर्य को लें। सूर्य दुष्ट स्थान में शनि युक्त है। दशमेश बुध पापयुक्त (अष्टमेश) हैं। सूर्य से त्रिकोण में पापग्रह है। सूर्य स्वयं पापयुक्त एवं पापग्रहों (बुध मंगल) के प्रभाव में हैं। साथ ही सभी ग्रह अदृश्य चक्र में राहु केतु के अन्तराल में हैं। अतः कल्याण वर्मा के मन से पितृनाश भी सिद्ध होता है।

पितृसुख विचार इस पुस्तक में आगे दशम भाव के सन्दर्भ में भी किया जा रहा है।

अधिक कुयोग होने पर अधिक उत्कट कुफल होता है, यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए।

वाहन योग विचार :

दृष्टे सौख्ये सूरिदृष्टाम्बुपेन
वेन्दोर्भेऽस्तत्र्यायगे यानयुक्तः।
दृष्टोऽम्बेशः सूरिणा प्राप्तिगो वा
पश्यन्यानं यानवृन्दं प्रदत्ते ॥८॥

दृष्ट इति। सौख्ये = चतुर्थभावे, सूरिदृष्टाम्बुपेन = गुरुदृष्टसुखेशेन, दृष्टे = वीक्षिते। वा प्रकारान्तरार्थे। इन्दोः = चन्द्रात्, अस्तत्र्यायगे = सप्तम-तृतीय-लाभान्यतमगते, भे = शुक्रे सति, तदा जातः, वाहनयुक्तः = वाहनवान्, स्यादिति शेषः।

तथा च सुधासागरे

"गुरुदृष्टे सुखेशेन सुखे दृष्टे सुयानवान्।"

"भृगौ चन्द्रतोद्यूनगेयानवान् वा भृगौ चन्द्रतो लाभसोत्थस्थिते वा।" इति।

दृष्ट इति। सूरिणा = बृहस्पतिना, दृष्टः = वीक्षितः, अम्बेशः = चतुर्थेशः, प्राप्तिगः = लाभगतः, वा अथवा, यानं = चतुर्थस्थानं, पश्यन् = विलोकयन् तदा, यानवृन्दं = वाहनसमूहं, प्रदत्ते = प्रयच्छति।

यदि चतुर्थेश चतुर्थ स्थान को देखता हो और बृहस्पति चतुर्थेश को देखता हो।

अथवा चन्द्रमा से ३,७,११ भावों में शुक्र हो। इन योगों में मनुष्य के पास वाहन होता है।

यदि चतुर्थेश को बृहस्पति देखे और वह चतुर्थेश लाभ स्थान में

हो अथवा वाहन स्थान पर गुरु या चतुर्थेश की दृष्टि हो तो मनुष्य के पास वाहनों का समूह होता है।

वाहन विचार के समय भी वही परिपाटी अपनानी चाहिए जो अन्य भावों के विषय में अपनाई गई है। भावेश दृष्टयुक्त शुभदृष्टयुक्त एवं पापनिर्मुक्तभाव सदैव बली होता है। अतः चतुर्थेश एवं चतुर्थ भाव बली हो, शुभदृष्ट हो तो वाहन सुख मिलता है—

वाहनेशे बलयुते यानराशौ बलान्विते।
शुभग्रहेण संदृष्टे वाहनादि फलं वदेत्॥
(वैद्यनाथ)

जातकपारिजात में विविध वाहनों के विभिन्न योग बताये गए हैं। जैसे घोड़ा, रथ, पालकी आदि। ये सभी वाहन आजकल प्रचलन बाह्य हो गए हैं। अतः ऐसे योगों में बुद्धिमान् दैवज्ञ को सामान्यतः वाहन सुख बताना चाहिए। जैसे घोड़े से मोटर साईकिल स्कूटर या तत्सदृश छोटी गाड़ियां, चतुरंग वाहन अर्थात् चारों ओर से ढका अतः बुद्धिपूर्वक ऐसे योगों में कार बतानी चाहिए। संकेत मात्र के लिए कुछ योग दिए जा रहे हैं।

(i) चन्द्र, लग्न एवं चतुर्थेश परस्पर सम्बन्ध करते हों तो घोड़े का सुख।

(ii) २,४ भावों में शुभयुक्त चन्द्रमा हो।

(iii) चन्द्रमा चतुर्थेश, लग्नेश के साथ लग्न में हो तो घोड़े का सुख।

(iv) चतुर्थेश शुक्र के साथ लग्न में हो तो हाथी अर्थात् बड़ी मोटरसाईकिल का सुख।

(v) गुरु व चतुर्थेश, चन्द्र व शुक्र केन्द्र त्रिकोण में एकत्र हों तो कार (चतुरंग यान) की प्राप्ति होती है।

(vi) चतुर्थेश व गुरु एक साथ हों या दशमेश एकादशेश का क्षेत्र सम्बन्ध हो तो चतुरंग यान प्राप्त होता है।

अन्य वाहन योग एवं वाहन हानि :

केन्द्रत्रिकोणायगयोः कवीज्ययोः
साम्बेशयोर्वाऽथ तयोर्हितस्थयो ।
वा शस्थयोः शाधिपयुक्तयोस्ततः
सार्थेड् व्ययेट् स्वोच्चग ईक्षते तपः ॥९॥
यानौघनाथोऽथ च वाहनाश्रिता
यावन्त उग्रा विमलानवेक्षिताः ।
तावन्त उक्ता इह वाहनात्यया
दृष्टे जलेऽर्धैर्व्ययकालगैस्तथा ॥१०॥

केन्द्रेति । यानौघेति च । साम्बेशयो=चतुर्थेशयुक्तयोः, कवीज्ययोः=शुक्रगुर्वोः केन्द्रत्रिकोणायगयोः=केन्द्रत्रिकोण-लाभस्थानस्थितयोः सतोः, तदा जातः, यानौघनाथः=वाहनसमूहस्वामी, भवेदिति शेषः ।

उदयभास्करेऽपि

"..............अथभवनेशयुतौ गुरुभार्गवौ ।
नवचतुष्टयपञ्चमगौ तदा प्रवरवाहनदौ ॥" इति ।

वेति । अथवा तयोः=शुक्रजीवयोः, शाधिपयुक्तयोः=नवमेशयुक्तयोः, हितस्थयोः चतुर्थस्थानस्थितयोः, वा शस्थयोः=नवमस्थितयोः सतोः, तदा जातः, यानौघनाथः=वाहनसमूहस्वामी, भवेत् ।

उदयभास्करेऽपि

"..................................यदि भाग्यपः ।
निजभगोऽम्बुनिवासितजीवयुग्बहुधनोद्भवजितीपतिरीश्वरः ॥" इति ।

तत इति । ततः तदनन्तरं, सार्थेट्=द्वितीयेशयुक्तः, व्ययेट्=व्ययभावस्वामी, स्वोच्चगः=निजतुङ्गराशिगतः सन्, तपः=नवमं, ईक्षते=विलोकयति, तदा जातः, यानौघनाथः=वाहनसमूहस्वामी, भवेत् ।

अथेति । अथानन्तर्यार्थे । यावन्तः=यदुन्मिताः, उग्राः=पापग्रहाः, विमलानवेक्षिताः=शुभादृष्टाः, वाहनाश्रिताः=चतुर्थस्थानस्थिताः सन्तः, तावन्तः=तदुन्मिताः, वाहनात्ययाः=वाहनविरामाः, उक्ताः=कथिताः, बुधैरिति शेषः ।

तथा च जातकालङ्कारे

"यावन्तो वाहनस्थाः शुभविहगदृशां गोचरा नो भवेयुः ।
स्तावन्तो वा विरामाः परमगुणवतां वाहनानां नृणां स्युः ॥" इति ।

उदयभास्करे त्वन्यथोक्त:

"यदि मृतौ नवपः कुभगो (खलभग:) ऽपि वा द्रुतवियोगिकुवाहपतिर्भवेत् ।" इति ।

जल इति । जले = चतुर्थस्थाने, व्ययकालगै = द्वादशाष्टमगतैः, अघैः = पापग्रहैः, दृष्टे = विलोकिते सति तदा तथा तेनैव प्रकारेण वाहनविरामाः स्युः ।

गुरु एवं शुक्र चतुर्थेश से युक्त होकर केन्द्र, त्रिकोण या लाभ में हों ।

चतुर्थ या नवम में गुरु शुक्र नवमेश से युक्त हों ।

व्ययेश अपनी उच्च राशि में हो और वह द्वितीयेश से युक्त होकर नवम स्थान को देखता हो ।

इन योगों में मनुष्य के पास वाहनों का समूह होता है ।

चतुर्थ में जितने पापग्रह हों और शुभग्रह न देखते हों तो उतने ही वाहन नष्ट होते हैं ।

यदि ८,१२ में स्थित पापग्रह चतुर्थ भाव को देखते हों तो वाहनों का नाश होता है ।

जातकतत्त्वकार ने इनके अतिरिक्त कुछ वाहन योग बताए हैं—

(i) चन्द्रमा से सप्तम में शुक्र हो ।

(ii) चन्द्रमा से तृतीय या एकादश में शुक्र हो ।

(iii) बृहस्पति से दृष्ट चतुर्थेश कहीं भी हो ।

(iv) चतुर्थेश लाभस्थान में गुरु से दृष्ट हो ।

इन सभी योगों में मनुष्य का निजी वाहन होता है। इसके अतिरिक्त कुछ योग केवल वाहन सुख देते हैं। ऐसे योगों में व्यक्ति कम्पनी, सरकार या अन्य संस्था की ओर से प्रदत्त वाहन का सुख भोगता है। सार्वजनिक प्रतिनिधि एवं बड़े अफसर इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं। इन सब योगों के विशेष अध्ययन के लिए हमारा जातक तत्त्व अखिलाक्षरा पृ. २७७-२७९ का अध्ययन करें। वहां विस्तार से इन योगों का विचार किया गया है।

वाहन नाश के विषय में ध्यान रखिए कि वाहनेश यदि त्रिक में गया हो, क्रूर दृष्ट हो तो जितने क्रूर ग्रह देखते हों, उतने ही वाहन उस व्यक्ति के नष्ट हो जाते हैं। यदि उस पर शुभ दृष्टि भी हो तो ऐसे वाहनों का कुछ समय सुख भोग लिया जाता है।

कश्यप के मत से चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा उच्च में हो तो वाहन प्राप्ति, उच्च नवांश में हो तो सोने-चांदी की प्राप्ति होती है।

शुक्र उच्च नवांश में चतुर्थ में हो तो मध्यम श्रेणी के वाहनों की प्राप्ति होती है।

वृद्ध यवन के मतानुसार चतुर्थ में मेष राशि हो तो वाहन सुख होता है। इसी प्रकार धनु राशि होने पर अनोखे वाहनों की प्राप्ति होती है।

हृदयरोग योग :

स्यात्कृष्णपित्ती हृदिकम्पयुक् खलैः
सम्पीडितः सन्सलिलेऽरिपे शनौ।
साघेऽथवेज्येऽथ तथाविधे रवौ
हृद्रुक् तथेज्येनजभूभुवो भुवि ॥११॥

स्यादिति। सलिले = चतुर्थे, साघे = पापसहिते, अरिपे = षष्ठेशे, शनौ = सौरौ, अथवा, इज्ये = गुरौ, भवति, तदा जातः, कृष्णपित्ती = कृष्णपित्तरोगी, खलैः = दुर्जनैः, पीडितः सन्, हृदि = मनसि, कम्पयुक् स्यात्।

अथेति। अथानन्तर्यार्थे। तथाविधे = तादृशे, रवौ = सूर्ये, यदा तदा, हृद्रुक् = हृदयरोगी स्यात्। भुवि = चतुर्थे, इज्येनजभूभुवः = गुरु-शनि-भौमाः, चेत्तदा, तथा तेनैव प्रकारेण हृदये रोगो भवेत्।

चतुर्थ स्थान में षष्ठेश होकर शनि या गुरु स्थित हो और साथ में पाप ग्रह भी हों तो मनुष्य के शरीर पर काले चकत्ते (पित्त) होते हैं तथा उसके हृदय की धड़कन बढ़ी रहती है।

यदि चतुर्थ में पाप ग्रह से युक्त षष्ठेश सूर्य हो तो मनुष्य हृदय रोगी होता है।

यदि चतुर्थ में गुरु, शनि एवं मंगल हों तो भी मनुष्य हृदय रोगी होता है।

उक्त योग ग्रन्थकार ने जातकालंकार के आधार पर बताए हैं। अन्यत्र बताया गया है कि शनि या गुरु केवल पापदृष्ट होकर (षष्ठेश हो या न हो) चतुर्थ में हो तो मनुष्य हृदय रोगी होता है।

षष्ठेश्वरार्के सखले शुभाढ्ये हृद्रोगवांश्चाथ चतुर्थगः शनिः।
गुरुर्भवेद् वापि खलैः प्रपीडितः स्याद्रक्तपित्तीहृदये सकम्पनः।।
(होरा रत्नम्)

एक अन्य योग इस प्रकार है—

कुजसकलदृशार्दिते सुरेज्ये दिनजनने च धरात्मजे विनष्टे।
अशुभयुजि रिपौ प्रभौ शुभार्तावलिगरवौ हृदि चोदरे च शूलम्।।
(मनुष्य जातक)

'बृहस्पति को मंगल पूर्ण दृष्टि से देखता हो, अथवा दिन में जन्म हो और मंगल नष्ट बली हो। अथवा षष्ठ में पाप ग्रह हों षष्ठेश पापयुक्त हो, शुभ ग्रह पीड़ित हों। अथवा बृश्चिक राशि में सूर्य हो तो मनुष्य के हृदय व पेट में शूल होता है।'

यवनाचार्य का मत है कि षष्ठ में सिंह नवांशगत चन्द्रमा हो तो हृदय रोग होता है—

'हृद्रोगिणं सूर्यगृहांशकस्थः।'
(वृद्ध यवन)

मकान, कोठी आदि के योग :

तुर्य्ये तनूपे गृहपे तनौ किमु
केन्द्रे गृहेशेऽसल उत्तमेक्षिते।
किं गेहपाले परमोच्चभागगे
वैशेषिकांशे सदनाप्तिरीर्य्यते।।१२।।

तुर्य इति। तनूपे=लग्नेशे, तुर्ये=चतुर्थे, गृहपे=चतुर्थेशे, तनौ=लग्ने भवति, तदा, सदनस्य=गृहस्य, आप्तिः=लब्धिः, ईर्य्यते=कथ्यते, बुधैरिति शेषः।

तथोक्तं सर्वार्थचिन्तामणौ

"सुखेश्वरे लग्नगते सुखेऽङ्गनाथेन युक्ते यदि गेहलाभः।" इति।

किमु इति। किमु वार्थे। गृहेशे=चतुर्थभावस्वामिनि, अंसले=बलवति, उत्तमेक्षिते=शुभदृष्टे, केन्द्रे=चतुष्टये सति, तदा सदनाप्तिः=गृहाप्तिः, ईर्य्यते=कथ्यते। बुधैरिति शेषः।

तथा च सर्वार्थचिन्तामणौ

"गेहाधिपे केन्द्रगते बलाढ्ये सौम्येक्षिते मन्दिरलाभमाहुः।" इति।

किमिति। कि वार्यं। गेहपाले = चतुर्थेशे, परमोच्चभागगे = स्वकीयपरमोच्चांशकगते, वैशेषिकांशे च यदा तदा, सदनाप्तिः = गृहलाभः, ईर्य्यते = कथ्यते। बुधैरिति शेषः।

तदा च सर्वार्थचिन्तामणौ—

"वैशेषिकांशे परमोच्चभागे गेहेश्वरे मन्दिरलाभमाहुः।" इति।

चतुर्थेश लग्न में एवं लग्नेश चतुर्थ में स्थित हो।

यदि चतुर्थेश शुभ ग्रहों से दृष्ट होकर केन्द्र स्थानों में कहीं स्थित हो।

यदि चतुर्थेश अपने परमोच्च में हो या वैशेषिकांश में गया हो।

इन योगों में मनुष्य को घर की प्राप्ति होती है।

वैद्यनाथ कहते हैं कि चतुर्थेश बली होकर केन्द्र या त्रिकोण में हो तो मनुष्य के पास विचित्र घर होता है—

'त्रिकोणकेन्द्रोपगतैर्बलाढ्ये विचित्रगेहं रुचिरं तदाहुः।

(जातक पारिजात १२.१४५)

तृतीयेश शुभ ग्रह से युक्त हो और चतुर्थेश बलवान् हो या गोपुराद्यंशों में गया होता है।

इसी योग में यदि लग्नेश बली हो अर्थात् तृतीयेश शुभयुक्त, चतुर्थेश बली और लग्नेश पूर्ण बली हो तो मनुष्य के पास बड़ा बंगला होता है।

तृतीये सौम्यसंयुक्ते गेहेशे बलसंयुते।
गोपुराद्यंशके वापि समेति दृढमन्दिरम्॥
तृतीये सौम्यसंयुक्ते गेहेशे स्वबलान्विते।
लग्नेशे बलसम्पूर्णे हर्म्यं प्राकारसंयुतम्॥

(जातक पारिजात, १२.१४६, १४८)

अकस्मात् गृह प्राप्ति योग एवं गृह नाश :

स्वर्क्षे सखीशे प्रथमेशसंयुते-
ऽकस्माद्गृहाप्तिः सखिभिर्वयस्यता।
दुष्टाश्रिताः क्रूरखगा यदुन्मिताः
खान्त्यार्थयानेशयुतास्तदुन्मिताः ॥१३॥

स्युर्दुखदा वह्निवशङ्गतागृहा
श्चेत्कारकांशोदयसंस्थिते जनौ।
साहौ खरांशौ वसुधाजनीक्षिते
सन्दह्यते वायुसखेन मन्दिरम् ॥१४॥

जलालयेशे खललोकिते त्रिके
ततो जन्मेशांशपतौ त्रिकोपगे।
गृहक्षयो गेहधनान्त्यपा न
सद्युतेक्षिताः पापखगैर्यदुन्मितैः ॥१५॥

नाशे युता जन्मनि यस्य वेश्मनां
तदुन्मितानां ब्रुवते विनाशनम्।
तुरीयपाले यदि कालवेश्मगे
निजालयं ना स्वयमेव पातयेत् ॥१६॥

स्वर्क्ष इति। स्युरिति। जलेति। नाश इति च। प्रथमेशसंयुते=लग्नेशयुक्ते, सखीशे=चतुर्थस्वामिनि, स्वर्क्षे=स्वराशौ चतुर्थ इत्यर्थः। यदा तदा, अकस्मात्=सहसा, गृहाप्तिः=गृहलाभः, सखिभिः=मित्रैः, वयस्यता=सौहार्दं भवतीति शेषः।

दुष्टेति। खान्त्यार्थयानेशयुताः=दशम-द्वादश-द्वितीय-चतुर्थस्वामियुक्ताः, यदुन्मिताः=यावन्तः, क्रूरखगाः=पापग्रहाः, दुष्टाश्रिताः=त्रिकस्थानगताश्चेत्तदा, तदुन्मिताः=तावन्तः, गृहा=गेहानि, वह्निवशङ्गताः=अग्निवशगाः, दुःखदाः स्युः।

तथोक्तं उदयभास्करे

"अथ दशाम्बुखला हि यदुन्मितास्त्रिकगताश्च निजान्त्यपसंयुताः।
ज्वलनदग्धगृहाश्च तदुन्मिता नुरतिकष्टकराः सततं मताः॥" इति।

चेदिति। चेद्यदि, जन्मनि, कारकांशोदयसंस्थिते=कारकांशलग्नगते, साहौ=राहुसहिते, खरांशौ=रवौ, वसुधाजनीक्षिते=भौमदृष्टे सति, तदा जातेन पुरुषेण परस्य मन्दिरं=गृहं, वायुसखेन=अग्निना लोहिताश्वो वायुसख इत्यभिधानात्। संदह्यते।

जलेति। जलालयेलेशे=चतुर्थेशे, खललोकिते=पापदृष्टे, त्रिके=दुष्टस्थाने सति, तदा गृहस्य नाशः स्यात्।

तत इति। ततो योगविचारानन्तरं, जलेशांशपतौ = चतुर्थेशनवांशस्वामिनि, त्रिकोपगे = दुष्टस्थानगते सति तदा, गृहक्षयः = गृहनाशः, स्यादिति शेषः।

गेहेति। यस्य जन्मनि, गेहधनान्त्यपाः = चतुर्थ—द्वितीय—द्वादशस्वामिनः, न सद्ग्रहेक्षिताः = शुभग्रहायुतदृष्टाः, यद्गुन्मितैः = यावद्भिः, पापखगैः = अशुभग्रहैः, नाशे = अष्टमे, युताः = सहिताः स्युरिति शेषः। तद्गुन्मितानां = तावतां, वेश्मनां = गृहाणां, विनाशनं = नाशं, ब्रुवते = कथयन्ति, होरिका इति शेषः।

तथोक्तं जातकपारिजाते

"अर्थव्ययगृहाधीशा नाशगाः पापसंयुताः।
यावद्भिरशुभैर्युक्तास्तावद्गेहालसत्वदाः ॥" इति।

एवं सुधासागरेऽपि

"चतुर्थाङ्गस्वपा यावत्पापखेचरसयुताः।
तावतां सद्मनां नाशो न तु सौम्यग्रहेक्षिताः॥" इति।

"लग्नाम्बवर्थेशा यावन्तः केन्द्रे कोणे तावद्गेहाः।
श्रेष्ठाः सन्ति प्रोक्तं चेत्थं होरातन्त्रे निश्चितमेव॥" इति।

तुरीयेति। तुरीयपाले = चतुर्थेशे, कालवेश्मगे = अष्टमस्थानगते यदि तदा, ना = मनुष्यः, निजालयं = स्वीयगृहं, स्वयमेव पातयेत्।

यदि लग्नेश एवं चतुर्थेश चतुर्थ स्थान में स्थित हो तो मनुष्य को अकस्मात् घर की प्राप्ति होती है। साथ ही ऐसे व्यक्ति की मित्रता भी अच्छी होती है।

दशम, द्वादश, द्वितीय, चतुर्थ इन चारों स्थानों के स्वामी त्रिक में जाकर जितने पाप ग्रहों से युक्त हों, उतने ही घर अग्नि आदि से नष्ट हो जाते हैं।

कारकांश कुण्डली में लग्न में राहु व सूर्य हों और मंगल उन्हें देखता हो तो इस योग में व्यक्ति का घर जल जाता है या स्वयं अपना घर नष्ट कर देता है।

त्रिक स्थानों में चतुर्थेश पाप ग्रहों से दृष्ट हो।
चतुर्थेश की नवांश राशि का स्वामी त्रिक भावों में कहीं हों।
इन दोनों योगों में घर नष्ट हो जाता है।

चतुर्थ, व्यय एवं द्वितीय इन तीनों स्थानों के स्वामी शुभ ग्रहों दृष्टि से रहित होकर पापयुक्त हों तो घर नष्ट होते हैं।

चतुर्थेश यदि अष्टम स्थान में गया हो तो मनुष्य घर को स्वयं नष्ट कर देता है।

अकस्मात् धन प्राप्ति का उक्त योग गणेश दैवज्ञ ने बताया है। लेकिन वैद्यनाथ केवल चतुर्थेश की चतुर्थ स्थिति या उसकी बलवत्ता में ही अकस्मात् बिना विशेष प्रयत्नों के घर का लाभ मानते हैं—

'अयत्नतो मन्दिरलाभदः स्याच्चतुर्थपस्तत्र बलाधिको वा।'

गृह हानि में तृतीय स्थान का विचार इसलिए किया जाता है क्योंकि चतुर्थ स्थान गृह स्थान है और चतुर्थ का व्यय (हानि) स्थान तृतीय होता है।

यहां बताए गए गृह नाश योग जैमिनीयपद्यामृत, जातकालंकार, उदयभास्कर आदि ग्रन्थों के आधार पर बताए गए हैं।

उदयभास्कर में एक और योग बताया गया है। इस योग में मनुष्य का घर जल जाता है। अथवा मनुष्य अपने कर्मों से स्वयं ही अपना बनता बनता घर बिगाड़ लेता है।

यदि कुजोऽम्बुनि वैरिगृहेऽम्बुपः, सरिपुदृक् गृहदाहकरो मतः।
यदि कुजो यदि वा रविरम्बुगो विभृगु चन्द्रदृशागृहदाहकृत्॥
(उदयभास्कर)

'यदि चतुर्थेश षष्ठ में और मंगल चतुर्थ में हो। साथ ही चतुर्थेश या मंगल रिपु ग्रहों से दृष्ट हों तो एक योग बना।

यदि मंगल या सूर्य चतुर्थ में बैठकर शुक्र व चन्द्रमा की दृष्टि से रहित हों तो यह दूसरा गृहदाह योग बनेगा।'

व्यय में चतुर्थेश होने पर मनुष्य दूसरे के मकान अर्थात् किराए या कम्पनी आदि के मकान में रहता है और चतुर्थेश अष्टम में हो तो मनुष्य का अपना घर कभी नहीं होता और षष्ठ में हो तो किसी रिश्ते-नातेदार के घर में रहना होता है। ऐसा फल वैद्यनाथ ने पृथक्-पृथक् त्रिक भावों का बताया है।

जितने गृहनाश योग बताए गए हैं उन योगों में योगकारक ग्रहों के ऊपर शुभ दृष्टि हो तो दोष कम हो जाता है। अथवा ये पापयुक्तादि

होकर भी केन्द्र या त्रिकोण में हों तो भी प्रयत्न से गृह प्राप्ति हो जाती है। कहा गया है—

अर्थव्यर्थगृहेशैस्तैर्यावन्तः पापसंयुताः।
तावद् गेहादिनाशः स्याच्छुभदृष्टा न दोषदाः॥
(वेंकटेश)

चतुर्थ स्थान में पाप ग्रह, पाप दृष्टि, मंगल सूर्य की स्थिति आदि बातें गृह सुख में कमी अवश्य करती हैं, चाहे बड़े गृह योग भी क्यों न बन रहे हों।

॥ इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां
सुखभावाध्यायः षष्ठः ॥

•

[७]

सुतभावाध्यायः

पुत्र प्राप्ति के योग :

सद्भे सूनौ स्वामिसद्युक्तदृष्टे
मूर्त्तेर्वेन्दोर्नन्दनो नान्यथेह।
केन्द्रे कोणे नन्दनागारनाथे
वेद्या विज्ञैः सम्भवा सूनुलब्धिः ॥१॥

सद्भ इति। मूर्त्ते=लग्नात्, वा=अथवा, इन्दोः=चन्द्रात्, सूनौ=पञ्चमे, सद्भे=शुभग्रहराशौ, स्वामिसद्युक्तदृष्टे=स्वामि—शुभग्रहसहितविलोकिते सति, तदा, नन्दनः=पुत्रः, स्यादिति शेषः। अन्यथा=उक्तप्रकाराद्विपरीते सति तदेहास्मिन्योगे नन्दनः=पुत्रः, न भवेत्।

तथोक्तं बृहज्जातके

"लग्नात्पुत्रकलत्रभे शुभपतिप्राप्तेऽथवा लोकिते।
चन्द्राद्वा यदि सम्पदस्ति हि तयोर्ज्ञेयोऽन्यथा सम्भवः॥" इति।

केन्द्र इति। केन्द्रे त्रिकोणे वा नन्दनागारनाथे=पञ्चमेशे भवति, तदा, विज्ञैः=पण्डितैः, सूनुलब्धिः=पुत्रप्राप्तिः, सम्भवा=शक्या, वेद्या=ज्ञेया।

जीवनाथोऽपि

"पञ्चमाधिपतिः केन्द्रे त्रिकोणे वा शुभैर्युतः।
तदा पुत्रसुखं सद्यो विलोमेन विलम्बतः॥" इति।

लग्न या चन्द्रमा में से जो अधिक बलवान् हो, उसी से पंचम भाव में यदि ग्रह की राशि हो और वह राशि स्वस्वामिदृष्ट होने से या शुभदृष्टयुक्त होने से बलवान् हो तो पुत्र की प्राप्ति होती है।

इससे विपरीत स्थिति में पुत्र प्राप्ति नहीं होती है।

यदि पंचमेश केन्द्र या त्रिकोण में गया हो तो पुत्र प्राप्ति होती है।

इस श्लोक में तीन योग बताए गए हैं। सर्वप्रथम लग्न एवं चन्द्रमा के बल का विचार करना अभीष्ट है। दोनों में जो बली हो, उसी का पंचम भाव सन्तान भाव है। उस पंचम भाव, पंचमेश एवं बृहस्पति से सन्तान का विचार करना होगा। फलदीपिका में ऐसा ही बताया गया है—

सुस्थाः विलग्न शशिनोः सुतभेशजीवाः
सुस्थाननाथ शुभदृष्टियुते सुतर्क्षे ॥
(मन्त्रेश्वर)

'पंचमेश (चन्द्र या लग्न से) एवं गुरु शुभ भावों में हों अथवा शुभ स्थानों के स्वामी या शुभ ग्रहों की दृष्टि या योग पंचम भाव पर हो तो पुत्र सुख होता है।'

वैसे सन्तान (पुत्र) विचार के समय ५, ७, ९ भावों एवं बृहस्पति का विचार करना चाहिए।

संस्कृत टीका में उद्धृत भावकुतूहल के श्लोक में बताया गया गया है कि पंचमेश शुभ स्थानों (केन्द्र त्रिकोण) में हो या शुभयुक्त हो तो जल्दी पुत्र लाभ होता है। यदि ऐसा न हो अर्थात् केन्द्र त्रिकोण से बाहर पंचमेश हो या पाप दृष्टि युक्त हो तो पुत्र नहीं होता है।

सन्तान कारक ग्रह का विचार :

दैत्यामात्यद्वादशार्चिर्दशाश्वाः
सन्तानानां कारका वीर्य्यवन्तः।
युक्तौ दृष्टौ ध्यङ्गपौ चेन्मिथो वा
ऽन्योन्यर्क्षस्थौ नन्दनाप्ति विधत्तः ॥२॥

दैत्येति। दैत्यामत्यद्वादशार्चिर्दशाश्वाः = शुक्र-गुरु-चन्द्राः, वीर्यवन्तः = बलिनः, चेत्स्युः, तर्हि, सन्तानानां = प्रजानां, कारकाः = कर्तारः, ज्ञेया इति शेषः।

युक्ताविति। चेद्यदि, ध्यङ्गपौ = पञ्चमेश—लग्नेशौ, मिथः = परस्पर, युक्तौ दृष्टौ वा अन्योन्यर्क्षस्थौ स्यातां तदा, नन्दनाप्ति = पुत्रलाभं, विधत्तः = कुरुतः।

फलदीपिकायामपि

"लग्नात्मपौ यदि युतौ च मिथः सुदृष्टौ क्षेत्रे परस्परगतौ यदि पुत्रसिद्धिः" इति ॥

शुक्र, बृहस्पति व चन्द्रमा में से जो बलवान् हों वे ही सन्तान के कारक ग्रह होते हैं।

पंचमेश व लग्नेश एक-दूसरे की राशि में हों। ये दोनों एक स्थान में हों। ये दोनों परस्पर दृष्टि सम्बन्ध रखते हों। इन स्थितियों में पुत्र प्राप्ति अवश्य होती है।

हमारे विचार से सन्तान होगी या नहीं ? इस संदर्भ में बृहस्पति, पंचम भाव, पंचमेश, लग्नेश, सप्तमेश, चन्द्रमा एवं लग्न का भी विचार एवं गौण दृष्टि से नवम भाव का विचार भी करना चाहिए। पुत्र प्राप्ति के बहुत से योग बहुत सी जातक पुस्तकों में बताए गए हैं। बादरायण संहिता में बताए गए १२ सन्तान योगों का संग्रह हमने अपनी **'प्रश्नविद्या'** (क्षमा) के बिखरे मोती प्रकरण में किया है। तदर्थ पृ० १२६-१२९ देखें। इसके अतिरिक्त बहुत से योग जातक पारिजात, फलदीपिका आदि में बताए गए हैं। पाठक उक्त स्थलों का अध्ययन करें।

अन्य योग :

केन्द्रोपगौ तौ सशुभौ स्वपे बलै-
र्युक्तेऽथ दैवोदयपौ स्मरेऽर्थपे।
मूर्त्तौ ततो मूर्त्तिपतौ मतिस्थले
धीशेज्ययोर्वीर्य्यवतोः सुतागमः ॥३॥

केन्द्रेति। तौ (ध्यङ्गपौ) पञ्चमेशलग्नेशौ, सशुभौ=शुभग्रहसहितौ, केन्द्रोपगौ=चतुष्टयगतौ, स्वपे=द्वितीयेशे, बलैः=स्थानादिषड्बलैः, युक्ते=सहिते सति तदा, सुतागमः=पुत्रप्राप्तिः, भवेदिति शेषः।
अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। दैवोदयपौ=नवमेश—लग्नेशौ, स्मरे=सप्तमे, स्यातां, अर्थपे=द्वितीयेशे, मूर्त्तौ=लग्ने, सति तदा, सुतागमः=पुत्रप्राप्तिः, भवेत्।
तत इति। ततः=योगविचारानन्तरं, मूर्त्तिपतौ=लग्नस्वामिनि, मतिस्थले=पञ्चमे, धीशेज्ययोः=पञ्चमेश-गुर्व्वोः, वीर्यवतोः=बलिनोः सतोः, सुतागमः=पुत्रप्राप्तिः, भवेत्।

यदि पंचमेश केन्द्र में हो, लग्नेश साथ हो या किसी भी केन्द्र में हो, ये दोनों ग्रह शुभ युक्त हों और द्वितीयेश बलवान् हो तो पुत्र होते हैं।

नवमेश और लग्नेश सप्तम भाव में हों और द्वितीयेश लग्न में गया हो।

लग्नेश पंचम में हो और पंचमेश तथा गुरु ये दोनों बलवान् हों। इन सब योगों में पुत्र प्राप्ति होती है।

पांच पुत्रों के योग :

पञ्चात्मजाः स्युस्तनये सकुम्भ-
कोणे सनक्रार्कसुते कुमार्य्यः।
तिस्रोऽथ सैणासृजि तत्र पुत्रा
स्त्रयोऽब्जभज्ञा यदि तत्र कन्याः॥४॥

पञ्चेति। तनये=पञ्चमे, सकुम्भकोणे=कुम्भ राशि—शनिसहिते, यदि तदा, पञ्च, आत्मजाः=पुत्राः स्युः=भवेयुः। सनक्रार्कसुते=मकर राशि—शनि-सहिते, तनय इत्यनुषङ्गः, यदि तदा, तिस्रः, कुमार्य्यः=कन्याः स्युः मकरस्य स्त्रीराशित्वादिति भावः।

अथानन्तर्यार्थे। तत्र=पञ्चमभावे, सैणासृजि=मकरराशि—भौमसहिते, यदि तदा, त्रयः पुत्राः स्युः। यदि तत्र=पञ्चमभावे, अब्जभज्ञाः=चन्द्र-शुक्र-बुधाः स्युः, तदा कन्याः, भवेयुरिति शेषः।

तथा च जातकालङ्कारे

"कुम्भे चेत्पञ्चपुत्रास्तदनु च मकरे नन्दनेऽप्यात्मजाः स्यु
स्तिस्रो भौमः सुतानां त्रितयमथ सुतादायको रौहिणेयः।
इत्थं काव्यः शशाङ्को जनुषि च" इति।

पंचम में कुम्भ राशिगत शनि हो तो पांच पुत्र, मकर में पंचमस्थ शनि हो तो तीन कन्याएं, मकरगत पंचमस्थ मंगल हो तो ३ पुत्र एवं पंचम में चन्द्र, शुक्र, बुध हों तो कन्या होती हैं।

जातकालंकारोक्त इस योग की विशेष व्याख्या हेतु एवं अन्य योगों की ऋषिसम्मत व्याख्या हेतु हमारी जातकालंकार टीका देखें। यहां पिष्टपेषण न कर विशेष बताते हैं। सन्तान की संख्या के विषय में मन्त्रेश्वर ने फलदीपिका में कई प्रकार बताए हैं। उनमें से यह बात कुछ अधिक प्रचलित है—

(i) पंचम भाव में पुरुष राशि, पुरुष नवांश और पुरुष ग्रह हों तो पुत्र या पंचम को पुरुष ग्रह देखते हों और पंचमेश पुरुष

राशि, नवांश में पुरुष ग्रह दृष्ट हो तो पुत्र होते हैं। यही बात यदि स्त्री ग्रहों व स्त्री राशि से बनें तो कन्याप्रज कहना चाहिए।

(ii) संख्या विचार हेतु पंचम भाव व पंचमेश एवं बृहस्पति से पंचम भाव व पंचमेश के साथ बैठे ग्रहों की संख्या जान लीजिए। इनमें से जितने ग्रह शत्रु, नीचगत एवं अस्तंगत नहीं होंगे, उतने ही पुत्र होते हैं।

(देखें, फलदीपिका १२, १३)

(iii) पंचमेश व बृहस्पति की रश्मि संख्या जान लें। रश्मि साधन सारावली, जातकादेश मार्ग, पाराशर होरा आदि ग्रन्थों में स्पष्ट है। पंचमेश व गुरु में से जो बलवान् हो, उसकी रश्मि संख्या से सन्तान संख्या जानें—

पुत्रसंख्या विनिर्देश्या सुतेश गुरुरश्मिभिः ॥

(जातकादेश, सन्तानचिन्ता)

(iv) बृहस्पति के अष्टक वर्ग में बृहस्पति से पंचम राशि में जितनी शुभ रेखा हों उतनी सन्तान होती हैं। लेकिन ध्यान रखिए, उक्त प्रकार से प्राप्त रेखा संख्या का हानि वृद्धि संस्कार अवश्य कर लें। अस्तंगत, नीच, शत्रुगत ग्रह की रेखा नहीं लेनी होंगी और स्वराशि या उच्चराशिगत ग्रह की रेखाओं को दुगुना करना होगा। एतदर्थ विशिष्ट बहुत से नियम हमारे **अष्टक वर्ग महानिबन्ध (मंजुलाक्षरा)** में देखें।

स्युः केवलेनेन्द्रपुरोधसा सुताः
पञ्चानिलाह्योर्वृषभाजकर्किषु ।
स्यान्नो विलम्बोऽथ विधौ सकर्कटे
सन्तानगेऽल्पात्मजवान्सकन्यकः ॥५॥

स्युरिति। एवं केवलेन=ग्रहयोगरहितेन पञ्चमगतेन, इन्द्रपुरोधसा=गुरुणा, पञ्च, सुताः=पुत्राः, स्युः=भवेयुः।

अनिलेति। वृषभाजकर्किषु=वृष-मेष-कर्किणामन्यतमे, तनय इत्यनुषङ्गः

अनिलाह्यो: = केतु राह्वोरन्यतरे, यदि तदा, नो विलम्ब:, सन्ततिजनने प्रतिबन्धो न भवतीत्याशय:।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। सकर्कटे = कर्कराशिसहिते, विधौ = चन्द्रमसि, सन्तानगे = पञ्चमभावगते सति तदा, सकन्यक: = कन्यासहित:, अल्पात्मजवान् = स्वल्पपुत्रभाक् भवतीति शेष:।

पंचम में अकेला बृहस्पति हो तो पांच पुत्र होते हैं।

पंचम में मेष, वृष, कर्क राशि में राहु या केतु हों तो सन्तानोत्पत्ति शीघ्र ही होती है।

पंचम में कर्कस्थ चन्द्रमा हो तो अल्प पुत्र व अधिक कन्या होती हैं।

सामान्यतया पंचम में बैठकर बृहस्पति पुत्र भाव को क्षति पहुंचाता है, ऐसा हमने अनुभव किया है। कदाचित् धनु, मीन, कर्क में विलम्ब से कम पुत्र देता है। तब भी कन्या सन्तति की अधिकता होती है। जातकादेश में पंचमस्थ कर्क राशि में विभिन्न ग्रहों का फल बताया है—

(i) पंचम में कर्कगत शनि हो तो बहुत से पुत्र, बुध हो तो कम पुत्र होंगे।

(ii) चन्द्रमा हो तो अधिक कन्याएं होंगी।

(iii) गुरु हो तो कन्याएं खूब होंगी।

(iv) मंगल, सूर्य या शुक्र हों तो दूसरे विवाह से पुत्र होता है।

(v) पंचम में वृष, कन्या, सिंह, वृश्चिक राशि पड़े तो कम पुत्र होते हैं। यदि ये ग्रहहीन हों तो विशेषतया कम पुत्र होते हैं।

(जातकादेश, पुत्रचिन्ता ५-६)

एक पुत्र के योग :

सूनुस्तदर्क: स्वगृहात्सुतेऽसिते
तद्वत्त्रिकोणे समभे विधावथो।
सल्लोकितेऽर्के तनये त्रिनन्दना:
सूनौ ध्वजेऽहौ किमु कुत्सितात्मज: ॥६॥

सूनुरिति। स्वगृहात् = स्वराशेः सकाशात् मकरात्कुम्भाद्वा सुते = पञ्चमस्थाने, वृषे मिथुने वेत्यभिप्रायः। असिते = शनौ भवति चेत्तदैकः सूनुः = पुत्रः 'सूनुः पुत्रेऽनुजे रवौ' इति विश्वः। भवेदिति शेषः।

तद्वदिति। सभभे = शुक्रराशिसहिते, वृषतुलान्यतरसहित इत्यर्थः। त्रिकोणे = पञ्चमनवमे, विधौ = चन्द्रमसि भवति, तदा, तद्वत्तेनैव प्रकारेणैकपुत्रो भवति।

अथो इति। अथो आनन्तर्य्यार्थे। सल्लोकिते = शुभग्रहदृष्टे, अर्के = रवौ, तनये = पञ्चमे, यदि तदा, त्रिनन्दनाः = त्रिपुत्राः, स्युरिति शेषः।

सूनाविति। सूनौ = पञ्चमे, ध्वजे = केतौ, किमु = वार्थे, अहौ = राहौ, यदि तदा, कुत्सितात्मजः कुपुत्रः, भवतीति शेषः।

यदि शनि अपनी राशि अर्थात् मकर व कुम्भ से पंचम में हो अर्थात् वृष या मिथुन राशि में हो तो एक पुत्र होता है।

पंचम या नवम में शुक्र की राशि में चन्द्रमा हो तो एक पुत्र होता है।

पंचम में शुभदृष्ट सूर्य हो तो तीन पुत्र एवं पंचम में राहु केतु हों तो कुपुत्र होता है।

पुत्रहीन योग :

सन्तानहीनस्तनुतः सुतेऽर्च्चिते
तस्मात्सुतेऽसत्युत वीर्य्य वर्जितैः।
खेटैः समग्रैरथ खोदयेऽन्त्यपे
वेज्ये त्रिकोणे सखले विदेहजः॥७॥

सन्तानेति। तनुतः = लग्नात् सुते = पञ्चमे, अर्चिते = जीवे, तस्मात् (जीवात्) सुते = पञ्चमे, असति = पापग्रहे सति, तदा, सन्तानहीनः = अपत्यरहितः स्यादिति शेषः।

उतेति। उत वार्थे। समग्रैः = सकलैः, खेटैः = ग्रहैः, वीर्यवर्जितैः = बलरहितैः सद्भिः, तदा सन्तानहीनः = अनपत्यो भवेत्।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। खोदये = दशम—लग्ने, अन्त्यपे = व्ययेशे, यदि तदा, विदेहजः = विपुत्रः भवतीति शेषः।

वेति। वा = विकल्पार्थे। सखले = पापसहिते, इज्ये = जीवे, त्रिकोणे = पञ्चमनवमे, यदि तदा, विदेहजः = पुत्ररहितः भवतीति शेषः।

लग्न से पंचम स्थान में बृहस्पति एवं तत्पंचम अर्थात् नवम स्थान में पाप ग्रह स्थित हों।

सूर्यादि सभी ग्रह निर्बल हों।

व्ययेश दशम या लग्न में पहुंच गया हो। त्रिकोण में बृहस्पति पाप ग्रहों से युक्त हो।

इन सब योगों में व्यक्ति सन्तानरहित या पुत्ररहित होता है।

कुछ अन्य योग :

धीशे स्मरेऽङ्गेऽशल ईर्म्मपेक्षित-
युक्तेऽथवा सौर्य्यसृजौ शुभाभ्रयोः।
वास्ते महीजैनिसितैर्गतात्मजो-
गर्भे कुजेऽर्के प्रथमेऽथवा सुते ॥८॥

सौम्यैरदृष्टे समदेश्वरौ तपो
धीनायकौ दुष्टगतौ गतौजसौ।
वेज्यात्सुतेशे त्रिकगे सुतोदय-
तीर्थाधिनाथैस्त्रिकगैर्विनन्दनः ॥९॥

धीश इति। सौम्यैरिति च। अंशले=बलिनि, धीशे=पञ्चमेशे, स्मरे=सप्तमे, अङ्गे=लग्ने, ईर्म्मपेक्षितयुक्ते=षष्ठेशदृष्टसहिते सति तदा, गतात्मजः=पुत्र-रहितः, भवेदिति शेषः।

तथा च सुधासागरे

"अपुत्रो दाराङ्गे बलिनि सुतपे षष्ठपयुते तथा दृष्टे।" इति।

अथवेति। अथवा=वार्थे। सौर्य्यसृजौ=शनिभौमौ, शुभाभ्रयोः=नवम-दशमयोरन्यतरे स्यातां, तदा, गतात्मजः=पुत्र रहितः, भवेत्।

वेति। वा प्रकारान्तरार्थे। अस्ते=सप्तमे, महीजैनिसितैः=भौम-शनि-शुक्रैः सद्भिः तदा, गतात्मजः=पुत्ररहितः, भवेत्।

तथा च सुधासागरे

"......वा स्त्रीभवनगतमन्दारभृगवः।" इति।

गर्भे इति। गर्भे=पञ्चमे, कुजे=भौमे, अर्के=रवौ, प्रथमे=लग्ने सति, तदा, विनन्दनः=पुत्ररहितः, भवेदिति शेषः।

अथवेति। अथवा=वार्थे। सुते=पञ्चमे, सौम्यैः=शुभग्रहैः, अदृष्टे=नाव-लोकिते, समदेश्वरौ=सप्तमेशसहितौ, गतौजसौ = बलरहितौ, तपोधीनायकौ= नवमेशपञ्चमेशौ, दुष्टगतौ, यदि तदा, विनन्दनः=पुत्ररहितः भवेत्।

वेति। वा प्रकारान्तरार्थे। इज्यात्=गुरोः, सुतेशे=पञ्चमेशे, अर्थाद् गुरुर्यस्मिन् राशौ विद्यते तस्माद्यः पञ्चमराशिस्तस्य यः स्वामी तस्मिन्नित्यर्थः। त्रिकगे= दुष्टगते, युतोदयतीर्थाधिनाथैः=पञ्चमेश-लग्नेश-नवमेशैः, त्रिकगैः=दुष्ट-स्थानगते, सद्भिः, तदा, विनन्दनः=पुत्ररहितः, भवेत्।

यदि पंचमेश सप्तम या लग्न में बैठकर बलवान् षष्ठेश से युक्त या दृष्ट हो।

नवम या दशम में शनि एवं मंगल हों।

सप्तम स्थान में मंगल, शनि, शुक्र हों।

पंचम में मंगल एवं लग्न में सूर्य हो।

पंचम स्थान पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो और पंचमेश, सप्तमेश एवं नवमेश त्रिक स्थानों में निर्बल हों।

गुरु की अधिष्ठित राशि से पंचमेश एवं जन्म व चन्द्र से १, ५, ६ भावों के स्वामी त्रिक स्थानों में गए हों।

इन योगों में मनुष्य पुत्ररहित अर्थात् सन्तानरहित होता है।

सन्तानोत्पत्ति में बिलम्ब एवं निराकरण :

वदन्ति किञ्चित्समयं विलम्बं
शुभाभ्रवासैः सहितैर्यदा तैः।
गिरां प्रभौ वा कलुषग्रहेन्द्रे
ऽमृतेमृगाङ्के मरणे मतौ वा ॥१०॥

खाग्निप्रमाब्दोन्मित एव सन्तते-
रुक्तः प्रबन्धोऽथ शुभेक्षणोनिताः।
यावन्त उग्राः सुतगास्तदुन्मित-
वर्षप्रमाणो नियतं विलम्बकः ॥११॥

स्यात्सन्तते रोधनरोहिणीशभ-
दोषे सुताप्तिर्गिरिजेशपूजनात् ।
दोषे गुरोरोषधियंत्रमंत्रतो
दोषे परेषां निजवंशपार्चनात् ॥१२॥

वदन्तीति। खाग्नीति। स्यादिति च। यदा तैः (मुतोदयतीर्थाधिनाथैः), शुभाभ्र-वासैः=सौम्यग्रहैः, सहितैः=युक्तैः सद्भिः, तदा, किञ्चित्समयं=अल्पकालं, विलम्बं=प्रतिबन्धं वदन्ति=कथयन्ति, दैवज्ञा इति शेषः।

गिरां प्रभाविति। गिरां प्रभौ=बृहस्पतौ, वा विकल्पार्थे। कलुषग्रहेन्द्रे=पापग्रहे: अमृते=चतुर्थे, मृगाङ्के=चन्द्रे, मरणे=अष्टमे, वा अथवा, मतौ=पञ्चमे, यदि तदा, खाग्निप्रमाब्दोन्मितः=त्रिशद्वर्षमित एव, सन्ततेः=सन्तानस्य, प्रबन्धः=प्रकृष्टो बन्धो विलम्ब इत्यर्थः। उक्तः=कथितः बुधैरिति शेषः।

अथेति। अथानन्तर्यार्थे। शुभेक्षणोनिताः=शुभदृष्टिरहिताः, यावन्तः=यदुन्मिताः, उग्राः=पापग्रहाः, सुतगाः=पञ्चमगताः स्युः 'बलाधीनफलाः खगा' इत्युक्त-प्रकारैः स्थानदिगादिबलरूपकैः किं तदिति ध्येय तदुन्मितवर्षप्रमाणः=बलसम्मित-वत्सरतुल्यः, सन्ततेः=प्रजायाः 'प्रजा स्यात्सन्ततौ जने' इति कोशात्। नियतं=निश्चयेन, विलम्बः=प्रतिबन्धः स्यात्।

रोधनेति। 'प्रतिबन्धकभञ्जकं सन्तानोपायमाह'—रोधनरोहिणीशभदोषै=बुध-चन्द्र-शुक्रदोषे, अर्थाद् विलम्बप्रयोजनकाश्चेत्तदा, गिरिजेशपूजनात्=शङ्करा-राधनात्, सुताप्तिः=पुत्रलाभः। स्यात् गुरोः=बृहस्पतेः, दोषे=विलम्बप्रयोजके, चेत्तदा ओषधियंत्रमंत्रतः सुताप्तिः स्यात्। परेषां=अन्येषां रविभौमशनिराहु-केतूनामित्यर्थः। दोषे=विलम्बप्रयोजके, निजवंशपार्चनात्=निजकुलदेवतापूज-नात्, सुताप्तिः स्यात्।

यदि पंचमेश, लग्नेश एवं नवमेश त्रिक स्थानों में गए हों और शुभ ग्रह उन्हें देखते हों तो सन्तान प्राप्ति में विलम्ब होता है।

चतुर्थ स्थान में गुरु या पाप ग्रह हो और पंचम या अष्टम में चन्द्रमा हो तो सन्तानोत्पत्ति में ३० वर्ष तक विलम्ब होता है।

पंचम स्थान में जितने पाप ग्रह हों और उन्हें शुभ ग्रह न देखते हों तो उनके बल की संख्या तुल्य वर्षों तक सन्तान प्राप्ति में विलम्ब होता है।

अब सन्तान प्रतिबन्धक ग्रह की शान्ति का उपाय बताते हैं।

यदि बुध, चन्द्र और शुक्र सन्तान प्रतिबन्धक हों तो शिवजी के पूजन से सन्तान प्राप्ति होती है।

यदि बृहस्पति सन्तान प्रतिबन्धक हो तो औषधि, यन्त्र मन्त्रादि से पुत्रोत्पत्ति होती है।

यदि इनके अतिरिक्त ग्रह प्रतिबन्धक हों तो अपने कुलदेवता की पूजा से सन्तानोत्पत्ति होती है।

सन्तान की प्राप्ति धर्म मूलक है। पूर्व जन्म व वर्तमान में पुण्यात्मा, सत्कृत्य करने वाले स्वच्छ मानस लोगों के घर में सन्तान सुख होता है। अतः आदित्य सप्तमी व्रत, सन्तान गोपाल, हरिवंश पुराण श्रवण आदि के करने से सन्तान प्राप्ति में प्रतिबन्धक तत्त्वों का निराकरण किया जा सकता है।

इस विषय में **संकेत निधि** में विशेष उपाय बताए गए हैं—

(i) बुध, शुक्र का प्रतिबन्ध होने पर शिवपूजन, रुद्राभिषेकादि करना चाहिए।

(ii) चन्द्र व गुरु का दोष होने पर औषधादि सेवन विहित है।

(iii) शनि, मंगल का दोष होने पर रुद्राभिषेक करना चाहिए।

(iv) राहु या केतु का दोष होने पर कन्या दान व गो की सेवा करनी चाहिए।

(v) सूर्य के दोष में हरिवंश पारायण करवाना चाहिए।

(vi) सन्तान गोपाल का अनुष्ठान करने से सभी ग्रहों के दोष शान्त होते हैं।

भावकुतूहल में भी **जीवनाथ** ने अनेक उपाय बताए हैं—

(i) सूर्य के दोष में हरिवंश श्रवण, राहु दोष में कन्यादान, केतु दोष में काली गाय का दान, शनि मंगल में रुद्र पाठ करना चाहिए।

(ii) चन्द्रमा का दोष होने पर देव दोष से, सूर्य व गुरु का प्रतिबन्ध होने पर पितृ दोष से, मंगल में यक्ष दोष से, बुध से भूत बाधा, शुक्र से वीर्य दोष, शनि से रजो दोष या गर्भावास दोष, राहु-केतु से भ्रूणहत्या दोष से सन्तान नहीं होती है।

(iii) दैवदोष में भूदान, गृहदान या देवपूजन विहित है। पितृ दोष में नारायण बलि या भागवत सप्ताह कराना चाहिए। यक्ष दोष में यक्ष की प्रतिमा की स्थापना, विष्णु पूजा आदि करनी चाहिए।

(iv) रजोवीर्य दोष में चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।

(v) मंगल व्रत, सूर्य व्रत, सन्तानगोपाल सब दोषों का निराकरण करते हैं।

बादरायण संहिता में कुछ विशेष उपाय बताए गए हैं—

"आदित्ये व्रतवेदपाठकरणं जाप्यं तथा त्र्यम्बकम्।
आश्वत्थं वटवृक्षपूजनमथो दानं च वेदोदितम्॥

सत्पुत्रं लभते तथैव हरिवंशेन श्रुतेऽर्के सुते।
नष्टेन्दौ हरिवासरे बहुविधं सन्तर्पयेद् ब्राह्मणान्॥

गाव: श्वेतहिरण्यवस्त्रसहितं मुक्ताफलै: संयुतं।
पात्राणामखिलं च धान्यसहितं देयं द्विजेभ्यस्तदा॥

कृत्वा वेदपुराणशास्त्रविधिना भानुर्यदा पंचमे।
नित्यं पार्थिवपूजनं व्रतकरं पुत्रर्क्षगे भूमिजे॥"

(बादरायण संहिता)

'सूर्य दोष होने पर वेद पाठ, त्र्यम्बक जप, पीपल वट वृक्ष का पूजन एवं शास्त्रोक्त दान करना चाहिए। अथवा हरिवंश का श्रवण करना चाहिए।

चन्द्रमा दोषकारक हो तो अनेक विध दानों से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना चाहिए। जैसे गो, सफेद वस्त्र, सुवर्ण, मोती, बहुत से पात्र, जिनमें अनाज भरा हो।

यदि पंचम में सूर्य हो तो वेद शास्त्र विधि से दान; एवं पार्थिवेश्वर शिव की पूजा करनी चाहिए यदि पंचम में मंगल हो।'

जार जात योग :

रुग्रन्ध्रपौ सेन्दुसृजौ कगावुत
क्वापि स्थितौ स्तः सखलौ क्षयाङ्कपौ ।
जातोऽन्यजस्तौ शनिना समन्वितौ
शूद्रात्कुमारेण विशो विवस्वता ।।१३।।

क्षत्रात्सितेनाङ्गिरसा च वाडवा-
त्सूतोऽथ खस्त्री सखिसोदराधिपैः ।
क्वापि स्थितैर्देहनिकेतनाधिभू-
युक्तैस्तदानीं पुरुषोऽन्यसम्भवः ।।१४।।

रुजिति । क्षत्रादिति च । रुग्रन्ध्रपौ=षष्ठेशाष्टमेशौ, सेन्दुसृजौ=चन्द्रभौम-सहितौ, कगौ=चतुर्थस्थानगतौ, स्यातां चेत्तदा जातः, अन्यजः=जारजातः स्यादिति शेषः ।

उतेति । उत वार्थे 'उतात्यर्थविकल्पयोः' इति विश्वः । सखलौ=पापसहितौ, क्षयाङ्कपौ=अष्टमेश-नवमेशौ, क्वापि स्थितौ=यत्र कुत्रापि स्थितौ स्तः, चेत्तदा जातः, अन्यजातः=जारजातः, स्यात् ।

ताविति । तौ (क्षयाङ्कपौ) शनिना=शनैश्चरेण, समन्वितौ=युक्तौ, स्यातां चेत्तदा, शूद्रात्=द्विजेतरात्, सूतः=उत्पन्नः, भवतीति शेषः । कुमारेण=बुधेन, विशः=वैश्यात् 'द्वौ विशौ वैश्यमनुजौ' इति कोशात् । सूतः=जातः । विवस्वता=रविणा, युतौ चेत्तदा, क्षत्रात्=राजन्यात्, सूतः । सितेन=शुक्रेण, अङ्गिरसा=गुरुणा च युक्तौ चेत्तदा, वाडवाद्=ब्राह्मणात् सूतः=जातः, भवति ।

अथेति । अथानन्तर्य्यार्थे । देहनिकेतनाधिभूयुक्तैः=लग्नेशसहितैः, खस्त्रीसखि-सोदराधिपैः=दशम-सप्तम-चतुर्थ-तृतीयस्थानस्वामिभिः, क्वापि स्थितैः=यत्र कुत्रापिस्थितैः, चेत्तदानीं जातः पुरुषः, अन्यसम्भवः=जारजातः, स्यात् ।

चतुर्थ स्थान में षष्ठेश तथा अष्टमेश हों और वे चन्द्र तथा मंगल से युक्त हों ।

किसी भी स्थान में पाप ग्रहों से युक्त अष्टमेश व नवमेश हों तो पुरुष जार जात अर्थात् अन्य पुरुषोत्पन्न होता है ।

यदि अष्टमेश व नवमेश शनि से युक्त हों तो शूद्र से, बुध से युक्त

हों तो वैश्य से, सूर्य से युक्त हों तो क्षत्रिय से, शुक्र गुरु से युक्त हों तो ब्राह्मण से उत्पन्न जारज सन्तान होती है।

यदि दशमेश, चतुर्थेश, तृतीयेश एवं सप्तमेश किसी भी स्थान में लग्नेश से युक्त हों तो मनुष्य जार जात होता है।

पुत्र नाश योग :

पुत्रेऽथवा पुत्रप उग्रमध्ये
तत्कारकेऽघैः कलिते सुतस्य।
नाशोऽस्तमत्यङ्कप युग् लवेशाः
साघा असौम्यांशगतास्तथैव ।।१५।।

पुत्र इति। पुत्रे = पञ्चमभावनाथे, उग्रमध्ये = पापान्तराले, अथवा, तत्कारके = पुत्रकारके (गुरौ) अघैः = पापैः 'दुःखैनोव्यसनेष्वघम्' वैजयन्तीयादवौ। कलिते = सहिते सति, चेत्तदा, सुतस्य = पुत्रस्य, नाशः = क्षयः स्यादिति शेषः।

अस्येति। साघाः = पापसहिताः, अस्तमत्यङ्कपयुग्लवेशाः = सप्तम-पञ्चम-नवमभावस्वामिसहितनवांशस्वामिनः, असौम्यांशगताः = पापग्रहनवांशगताः, तथैव, तेनैव प्रकारेण, पुत्रनाशः स्यात्।

तथा च सर्वार्थचिन्तामणौ

"भाग्यपुत्रकलत्रेशसंयुक्तनवभागपाः।
पापांशगाः पापयुताः पुत्रनाशं वदेत्तदा।।" इति।

पंचम भाव या पंचमेश पाप ग्रहों के मध्य में हों। अथवा सन्तान कारक बृहस्पति पाप ग्रहों से युक्त हो। इन योगों में पुत्र का नाश होता है।

सप्तमेश, नवमेश एवं पंचमेश की नवांश राशियों के स्वामी यदि पापयुक्त होकर पाप ग्रह के नवांश में गए हों तो भी पुत्र का नाश होता है।

वंश विच्छेद योग :

याम्यान्त्यधीस्थैर्दुरितैरुतास्तगे
भेऽब्जे पदेऽघाहृदि किं मतौ रवौ।
अङ्गारकेऽङ्गे मृतिमन्दिरे मृदौ
वंशस्य विच्छेदमुशन्ति सूरयः ।।१६।।

याम्येति। दुरितैः=पापग्रहैः, याम्यान्त्यधीस्थैः=अष्टम-व्यय-पञ्चमस्थितैः सद्भिः, चेत्तदा, वंशस्य=कुलस्य 'वंशः पृष्ठास्थिगेहोर्ध्वकाष्ठे वेणौ गणे कुले' इति केशवः। विच्छेदं=सन्ततिरहितं सूरयः=पण्डिताः, उशान्त=इच्छन्ति।

उतेति। उत वार्थे। भे=शुक्रे, अस्तगे=सप्तमगते, अब्जे=चन्द्रे, पदे=दशमे, अघाः=पापाः हृदि=चतुर्थे, यदि तदा, वंशनाशः स्यात्।

किमिति। किं वार्थे। रवौ=सूर्ये, अङ्गारके=भौमे 'अङ्गारकः कुजो भौम' इत्यभिधानात्। अङ्गे=लग्ने, मृदौ=शनौ, मृतिमन्दिरे=अष्टमे, यदि तदा वंशनाशः स्यात्।

यदि पंचम, अष्टम एवं द्वादश स्थानों में पाप ग्रह स्थित हों।
यदि सप्तम में शुक्र, दशम में इन्दु, चतुर्थ स्थान में पाप ग्रह हों।
पंचम में सूर्य, लग्न में मंगल और अष्टम में शनि हो।
इन योगों में मनुष्य का वंश विच्छेद हो जाता है।

यहां बताए गए तीसरे योग में यदि शुभ दृष्टि योग हो तो विलम्ब से सन्तान प्राप्ति होती है, ऐसा मत सर्वार्थ चिन्तामणिकार का है—

'जातो यदि स्यात्क्षितिसूनु लग्ने,
रन्ध्रे शनौ पंचमगे रवौ वा।
पुत्रादि लाभं मुनयो वदन्ति,
कालान्तरे शोभनदृष्टियोगात्॥'

(सर्वार्थ चिन्तामणि)

विद्या विचार :

विद्याधीशे स्वभवनतपः केन्द्रयाते सविद्यो
दुःस्थे तस्मिन्नुत सचिववित्संयुते विद्ययोनः।
वाग्भावेशे सुरपतिगुरौ वा त्रिके वाग्विहीनः
प्रज्ञामान्द्यं जनुषि खसदां शैशवे वार्द्धके वा॥१७॥

विद्याधीश इति। विद्याधीशे=पञ्चमेशे, स्वभवनतपःकेन्द्रयाते=पञ्चम-नवम-केन्द्रान्यतमगते, सति, तदा जातः, सविद्यः=विद्यासहितः, स्यादिति शेषः।

दुःस्थ इति। तस्मिन् (विद्याधीशे) दुःस्थे = त्रिकस्थानस्थिते। उत वार्थे। तस्मिन् (विद्याधीशे) सचिववित्संयुते = सचिवो गुरुः 'सचिवो भृतकेऽमात्ये' इति हैमः। विद् बुधः, ताभ्यां संयुते = सहिते, दुःस्थे = त्रिकस्थानस्थिते सति, तदा जातः, विद्यया = ज्ञानेन, ऊनः = वर्जितः स्यादिति शेषः।

वाग्भावेशे = पञ्चमेशे, वा अथवा, सुरपतिगुरौ = जीवे, त्रिके = दुःस्थे, सति, तदा जातः, वाग्विहीनः = मूकः स्यादिति शेषः।

प्रज्ञेति। जनुषि = जन्मकाले, प्रज्ञायोगकर्त्तृणां, खसदां = ग्रहाणां, शैशवे = बालत्वे, वार्द्धके = वृद्धत्वे, वा यदि तदा जातस्य, प्रज्ञामान्द्यं = अल्पबुद्धिः स्यादिति शेषः।

यदि बालो वृद्धो वा ग्रहः स्वक्षेत्रगतः, तदा दोषहृत्, प्रज्ञामान्द्यत्वप्रयोजकदोषं दूरीकरोतीत्यर्थः। 'दोषकृन्नतु सर्वत्र स्वोच्चस्वर्क्षगतो ग्रह' इत्याद्युक्तेः।

यदि पंचमेश केन्द्र या त्रिकोण में हो तो मनुष्य विद्यावान् होता है।

यदि पंचमेश ६, ८, १२ भावों में गया हो या त्रिक में पंचमेश बुध, गुरु से युक्त हो तो मनुष्य विद्याहीन होता है।

यदि पंचमेश व बृहस्पति त्रिक में गया हो तो व्यक्ति विद्याहीन होता है या विद्या पढ़कर भी बोल नहीं पाता।

जन्म समय में बुद्धिकारक ग्रह (बुध, गुरु) बालावस्था या वृद्धावस्था में हो तो वह व्यक्ति मन्दबुद्धि वाला होता है।

बुद्धिमान् योग :

धीकेन्द्रशे धीमति वात्मपेऽन्तः
सतां किमुच्चे मतिमान् स जातः।
खतीर्थधीशा निजभेऽधिवीर्य्य-
वशात्सुधीस्तस्य खगस्य दाये॥१८॥

धीति। धीमति = गुरौ, धीकेन्द्रशे = पञ्चम-केन्द्र-नवमे सति, तदा यो जातः, स मतिमान् = बुद्धिमान्, स्यादिति शेषः।

तथोक्तं सर्वार्थचिन्तामणौ

"गुरौ केन्द्रत्रिकोणे वा बुद्धिमार्गविशारदः।" इति।

वेति। वा विकल्पार्थे। आत्मपे = पञ्चमेशे, सतां = शुभग्रहाणां, अन्तः = मध्ये स्थिते, किमु वार्थे। उच्चे = निजोच्चराशौ सति, तदा जातः, मतिमान् स्यात्।

तथोक्तं सुधासागरे

"सुतेशे च तुङ्गेऽथवा सौम्यमध्ये ।" इति ।

खेति । खतीर्थधीशाः = दशम-नवम-पञ्चमभावस्वामिनः, निजभे = स्वराशौ सति तदा । अधिवीर्य्यवशाद् = अधिकबलवशेन, अर्थात् तेषां योऽधिकबली तस्य खगस्य = ग्रहस्य, दाये = दशायां, सुधीः = सुबुद्धिः स्यादिति शेषः ।

गुरु यदि केन्द्र या त्रिकोण में हो । पंचमेश शुभ ग्रहों के मध्य में हो ।

पंचमेश अपनी उच्च राशि में हो । इन योगों में मनुष्य बुद्धिमान् होता है ।

यदि दशमेश, पंचमेश व नवमेश स्वराशि में हों तो उनमें से सर्वाधिक बलवान् ग्रह की दशा में सुबुद्धि होती है ।

कोणे यदा कर्म्मणि साधिकारे
जले जडांशोस्तनये जडांशौ ।
कलेवरस्थे किमुतात्मभावे-
ऽनघेक्षिताढ्येऽनघभे ससंवित् ।।१६।।

कोण इति । साधिकारे = अधिकारसहिते, गृहहोराद्रेष्काणाधिपत्यसहित इत्यर्थः । कोणे = शनौ 'कोणो वाद्यप्रभेदे स्यात् कोणोऽब्धौ लगुडेऽर्कजे वीणादिवादनोपायेऽप्येकदशे गृहस्य च' इति विश्वः । कर्म्मणि = दशमे, जडांशोस्तनये = बुधे, जले = चतुर्थे, जडांशौ = चन्द्रे, कलेवरस्थे = लग्नस्थिते सति, तदा जातः, ससंविद् = बुद्धिसहितः, बुद्धिमानित्यर्थः । भवेदिति शेषः ।

किमुतेति । किमुत वार्थे । आत्मभावे = पञ्चमस्थाने, अनघेक्षिताढ्ये = शुभदृष्टयुक्ते, अघभे = शुभग्रहराशौ सति, तदा जातः ससंविद् = बुद्धिसहितः स्यात् ।

तथा च सर्वार्थचिन्तामणौ

"बुद्धिस्थानाधिपे सौम्ये शुभदृष्टिसमन्विते ।
शुभग्रहाणां क्षेत्रे वा बुद्धिमान्नीतिमान्भवेत् ।।" इति ।

यदि दशम स्थान में शनि स्व होरा द्रेष्काण नवांशादि के अधिकार से युक्त हो, चतुर्थ में बुध एवं लग्न में चन्द्रमा हो ।

पंचम भाव में शुभ ग्रह की राशि हो और पंचम भाव पर शुभ ग्रहों की दृष्टि योग हो तो इन सब योगों में मनुष्य बुद्धिमान् होता है ।

बुद्धिहीन योग :

प्रज्ञोनोऽङ्गगतं शनिं च शशिनं पश्येत्कुजोऽस्तेक्षया
वार्केन्द्वोर्विवरे कुजः किमु बुधः पूर्णेक्षया पश्यति।
कल्पस्थं कुटिलं विधुं किमसृजा चन्द्राङ्गपौ पीडितौ
वाङ्गे ज्ञे खललोकितौ रविशनी एकर्क्षभागे गदे॥२०॥

प्रज्ञोन इति। अङ्गगतं=लग्नस्थितं, शनिं=सौरिं, शशिनं=चन्द्रं च, अस्तेक्षया= सप्तमदृष्ट्या, कुजः=भौमः, पश्येत्=विलोकयेत्, चेत्तदा, प्रज्ञोनः=बुद्धिरहितः स्यादिति शेषः।

वेति। वा विकल्पार्थे। अर्केन्द्वोः=सूर्याचन्द्रमसौ, विवरे=अन्तराले, कुजः= भौमः, भवति, यदि तदा, प्रज्ञोनः स्यात्।

किमु इति। किमु वार्थे। कल्पस्थं=लग्नस्थितं, कुटिलं=भौमं, विधुं=चन्द्रमसं च, बुधः=चान्द्रिः 'ज्ञातचान्द्रिसुरा बुधाः' इति क्षीरस्वामी। पूर्णेक्षया=सप्तम-दृष्ट्या, पश्यति=विलोकयति, चेत्तदा जातः प्रज्ञोनः स्यात्।

किमिति। किं वार्थे। चन्द्राङ्गपौ=चन्द्र-लग्नस्वामिनौ, असृजा=भौमेन, पूर्ण-दृष्ट्या योगेन वा पीडितौ=आक्रान्तौ, यदि तदा, प्रज्ञोनः स्यात्।

वेति। वा विकल्पार्थे। अङ्गे=लग्ने, ज्ञे=बुधे, खललोकितौ=पापग्रहदृष्टौ, रविशनी=सूर्यसौरी, एकर्क्षभागे=एकराशौ वैकनवांशे, अथवा एकभागे चक्रस्य पूर्वार्द्धे परार्द्धे वा एकत्रगौ, गदे=रोगभावे षष्ठ इति यावत्। स्थितौ चेत्तदा, प्रज्ञोनः स्यात्।

लग्न में शनि एवं चन्द्रमा हो और मंगल सप्तम स्थान में हो।

मंगल यदि सूर्य व चन्द्रमा के मध्य में स्थित हो।

लग्न में मंगल व चन्द्रमा हो और बुध सप्तम भाव में स्थित हो।

लग्नेश एवं चन्द्रमा ये दोनों मंगल से पूर्ण दृष्ट हों।

लग्न में बुध एवं षष्ठ स्थान में एक राशि में या एक नवांश में सूर्य, शनि हों।

इन योगों में उत्पन्न मनुष्य बुद्धिहीन होता है।

इन सब योगों में शुभ दृष्टि होगी तो उक्त फल अल्प होगा। यह बात यहां स्पष्ट की जा रही है—

'लग्नेश्वरे शशिनि भौमनिपीडिते च,
बुद्ध्या विहीन उदये सबुधेऽपितद्वत्।
एकर्क्षगेकलवगौ रिपुगौ शनीनौ,
दृष्टौ खलेर्गतमतिः शुभदृष्टि हीनौ ॥'
(जातक सारदीप)

'अर्थात् शुभ दृष्टिहीन एवं अशुभ दृष्टि योग होने पर ही बुद्धिहीनता कहनी चाहिए। शेष योग ग्रन्थोक्त योगों से मेल खाते हैं।

॥ इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां
प्रणवरचनायां सुतभावाध्यायः सप्तमः ॥

[८]

रोगभावाध्यायः

सामान्य रोग योग :

> रम्येतराक्रान्त उषेश्वरे पुरे
> किं कण्टकेऽघे सुकृतैरनीक्षिते।
> यद्वाऽऽस्फुजिद्भे कलुषे कुजार्च्चित-
> काव्यैरदृष्टे जनितो रुजान्वितः ॥१॥

रम्य इति। रम्येतराक्रान्ते = रव्यादिभिः पापैः, योगेन दृष्ट्या वा आक्रान्ते = पीडिते, उषेश्वरे = चन्द्रे, पुरे = लग्ने 'पुरं पुरि शरीरे च' इति विश्वः। सति, तदा, जनितः = जातः, रुजान्वितः = रोगयुक्तः, रोगी भवेदित्यर्थः।

किमिति। किं वार्थे। अघे = पापग्रहे, कण्टके = चतुष्टये, सुकृतैः = शुभग्रहैः, अनीक्षिते = अदृष्टे सति, तदा जातः, रुजान्वितः स्यात्।

भावप्रकाशेऽपि

"शुभखगदृष्टिविहीने पापे केन्द्रस्थाने रोगपरीतः।" इति।

यद्वेति। यद्वा वार्थे। कलुषे = पापग्रहे 'कलुषं त्वाविले पापे, इति मेदिनी। आस्फुजिद्भे = शुक्रराशौ वृषे तुलायां वेत्यर्थः। कुजार्च्चितकाव्यैः = भौम-गुरु-शुक्रैः, अदृष्टे = अनवलोकिते सति, तदा जातः, रुजान्वितः स्यात्।

लग्न में पाप ग्रहों से पीड़ित चन्द्रमा हो।

केन्द्र में पाप ग्रहों की स्थिति हो और शुभ ग्रहों की दृष्टि का उन पर अभाव हो।

वृषभ एवं तुला राशि में पाप ग्रह स्थित हों और उस पाप ग्रह पर मंगल, बृहस्पति व शुक्र की दृष्टि न हो।

इन सब योगों में मनुष्य सामान्यतः रोग पीड़ित होता है।

ये योग भावप्रकाश एवं जातकालंकार में पठित हैं। इस विषय में उदयभास्कर नामक ग्रन्थ में कुछ अतिरिक्त बताया गया है—

'यदि रिपौ पतिसौम्ययुतेक्षिते,
रिपुरुजो भवति परथा न चेत् ।
सखलवैरिपतिस्तनुमृत्युगो,
व्रणकृदेवमथ स्वजनेष्वपि ।।'
(उदयभास्कर)

'यदि षष्ठ स्थान पर शुभ दृष्टि योग या षष्ठेश की दृष्टि योग हो तो वैरियों को रोग होता है। यदि ऐसा न हो तो वैरियों को कष्ट नहीं होता।

यदि षष्ठेश पापयुक्त होकर लग्न या अष्टम में स्थित हो तो मनुष्य एवं उसके सम्बन्धियों को भी व्रणकारक होता है।

जातक पारिजात का मत है कि षष्ठेश, षष्ठ पर दृष्टि रखने वाले ग्रह एवं षष्ठ में स्थित ग्रह इन तीनों में से दो भी ग्रह यदि शुभ हों या केन्द्र त्रिकोण में गए हों, बली हों तो छोटे रोगों का स्वयमेव नाश हो जाता है।

यदि इनमें से एक ही बलवान् हो तो सामान्य व्रण, रोगादि होते हैं।

(जातक पारिजात १३.७६)

वधविधुर्व्ययमानमदाशुभा
अधिककष्टकराः कलुषेङ्गपे ।
वपुषि वा कृशमासि घने गदः
किमुत तौ तनुगौ गददायकौ ।।२।।

वधेति। वधविधुः = अष्टमे चन्द्रः, व्ययमानमदाशुभाः = द्वादश-दशम-सप्तमेषु पापाः स्युश्चेत्तदा, अधिककष्टकराः = प्रभूतदुःखप्रदाः, भवन्तीति शेषः।

तथोक्तं उदयभास्करे

"खमदनव्ययगा यदि पामरा बहुलकष्टकराश्च विधुर्मृतौ।" इति।

कलुष इति। अङ्गपे = लग्नस्वामिनि, कलुषे = पापग्रहे, वपुषि = लग्ने सति, तदा जातस्य देहे, गदः = रोगः स्यादिति शेषः। वा अथवा, कृशमासि = क्षीणचन्द्रमसि, घने = लग्ने सति, तदा गदः = रोगः, भवेत्।

तथा च होरारत्ने

"तनुभं चन्द्रसंयुक्तं, चन्द्रोऽपि क्षीणतां गतः।
रोगातुरो नरश्चैव कथितो गणकोत्तमैः ।।" इति।

किमुतेति। किमुत वार्थे। तौ (पापलग्नपचन्द्रौ) तनुगौ=लग्नगत, चेत्तदा, गददायकौ=रोगप्रदौ, भवेतामिति शेषः।

अष्टम स्थान में चन्द्रमा हो, व्यय, सप्तम व दशम में पाप ग्रह हो तो अधिक कष्ट देने वाली स्थिति होती है।

लग्न में पाप ग्रह की राशि हो तो रोगकारक होती है।

यदि चन्द्रमा क्षीण हो तो रोगकारक होता है। लग्न में पापी लग्नेश एवं क्षीण चन्द्रमा हो तो रोगदायक होते हैं।

सामान्यतः पाप राशि लग्न, क्षीण चन्द्रमा, ६, ८, १२ में पापग्रहों की स्थिति, लग्नेश की निर्बलता आदि बातें सीधे ही स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाती हैं। होरारत्न में बलभद्र मिश्र ने कुछ विशेष बताया है—

(i) लग्नेश अष्टम में एवं अष्टमेश लग्न में हो और लग्न में पाप ग्रह की दृष्टि या योग हो तो जातक रोगी होता है।

(ii) लग्नेश षष्ठ में हो और लग्न में चन्द्रमा हो, लग्न को क्रूर ग्रह देखते हों तो मनुष्य विशेष रोगी होता है।

(iii) पंचम में क्रूर ग्रह और लग्नेश अष्टम में हो एवं क्रूर युक्त हो तो मनुष्य विशेषतया रोगी होता है।

(iv) गुरु व शुक्र अस्त हों, विशेषतया लग्नेश अस्त हो एवं ६, ८ में चन्द्रमा हो तो मनुष्य बहुत से रोगों से घिरा रहता है।

(v) लग्न में सूर्य, षष्ठ में चन्द्रमा, लग्नेश पंचम पापयुक्त हो तो मनुष्य रोगों का धनी होता है।

(vi) षष्ठेश व लग्नेश का यदि परस्पर दृष्टि योग हो तो मनुष्य शत्रु एवं रोगों से पीड़ित होता है।

(होरा रत्नम् ६.५०—५६)

अन्य रोग योग :

ज्ञासृग्भगेऽङ्गेशि विपक्षवीक्षिते
स्यादासनार्द्धे जनिमान्युतो रुजा।
मन्दासृजौ मान्द्यगतौ तदुद्भवो
रोगोऽरिगे साघनिशाकरे गदी।।३।।

अङ्गेति । अङ्गेशि = लग्नस्वामिनि, ज्ञासृग्भगे = बुधभौमराशिगते, मिथुनकन्यामेष-वृश्चिकान्यतमगत इत्यर्थः' विपक्षवीक्षिते = शत्रुग्रहदृष्टे सति, तदा जनिमान् = प्राणी, आसनार्द्धे = गुदसमीपे, रुजा = रोगेण, युतः स्यात् ।

उदयभास्करेऽपि

"कुजबुधर्क्षगतोऽपि च कुत्रचित्किल तदासनकार्द्धरुजान्वितः ।" इति ।

भावप्रकाशेऽपि

"कुजज्ञभेऽङ्गपो दृष्टः शत्रुणाऽर्द्धासने रुजः ।" इति ।

मन्देति । मन्दासृजौ = शनिभौमौ = मान्द्यगतौ = षष्टसंस्थौ, चेत्तदा, तद्रुद्भवः = तज्जातः, रोगः स्यादिति शेषः ।

अरिग इति । सापनिशाकरे = पापसहितचन्द्रे, अरिगे = षष्ठस्थानस्थिते सति, तदा, गदी = रोगी, स्यादिति शेषः ।

यदि लग्नेश मेष, वृश्चिक, मिथुन या कन्या में हो और शत्रु ग्रह उसे देखते हों तो व्यक्ति को गुदा प्रदेश में रोग होता है ।

षष्ठ स्थान में शनि व मंगल हो तो इन ग्रहों से सम्वन्धित रोग होता है ।

षष्ठ स्थान में पापयुक्त चन्द्रमा हो तो मनुष्य रोगी होता है ।

लग्नेश बुध मंगल की राशि में हो, केवल इतने भर से उदयभास्कर में रोग की सम्भावना गुदा के आस-पास मानी है । लेकिन भावप्रकाश में इस स्थिति में लग्नेश पर शत्रु ग्रह की दृष्टि आवश्यक मानी गई है । ऐसा अर्थ संस्कृत टीका में उद्धृत उद्धरणों में स्पष्ट है ।

वात रोग के योग :

वाताधिक्यं वपुषि सचिवे मन्मथे मन्दगे वा
धीधर्म्मास्ते धरणितनये विग्रहे ब्रध्नजे वा ।
क्षीणे चन्द्रे तपनजनिना संयुते प्रान्त्यगेऽथो
वातो रोगो रिपुपरिवृढे निम्नभे सैनसूनौ ।।४।।

वातेति । सचिवे = देवामात्ये 'सचिवे भृतकेऽमात्ये' इति हैमः । वपुषि = लग्ने, मन्दगे = शनैश्चरे, मन्मथे = सप्तमे सति, तदा, वाताधिक्यं = वातजन्यरोगस्य बाहुल्यं भवेदिति शेषः ।

तथा च होरारत्ने

"वातरोगी विलग्नस्थे द्यूनगते शनौ ।" इति ।

वेति। वा विकल्पार्थे। धरणितनये=भौमे, धीधर्म्मास्ते=पञ्चम-नवम-सप्तमे, ब्रध्नजे=शनौ, विग्रहे=लग्ने सति तदा वाताधिक्यं स्यात्।

तथा च श्यामसंग्रहे

"त्रिकोणयामित्रगते महीजे तनुस्थिते सूर्यसुते च यद्वा।" इति।

वेति। वा विकल्पार्थे। क्षीणे=अर्द्धोने कृश इति यावत्। चन्द्रे=शशिनि, तपनजनिता=शनिना, संयुते=युक्ते, प्रान्त्यगे=व्ययभावस्थिते सति तदा वाताधिक्यं भवेत्।

तथा च श्यामसंग्रहे

"क्षीणेन्दुमन्दौ व्ययभावयातौ भवेत्समीराधिकता नितान्तम्।" इति।

अथो इति। अथो आनन्तर्य्यार्थे। रिपुपरिवृढे=षष्ठभावस्वामिनि, सेनसूनौ=शनिसहिते, निम्नभे=नीचराशौ सति, तदा, वातः=वायुः, रोगः=आमयः भवेदिति शेषः।

लग्न में बृहस्पति एवं सप्तम में शनि हो तो वायु रोग होता है।

सप्तम या त्रिकोण में मंगल हो और लग्न में शनि हो तो भी मनुष्य वात रोगी होता है।

व्यय भाव में शनि व क्षीण चन्द्रमा साथ हों तो मनुष्य अधिक वात रोगी होता है।

नीच राशि में शनि (मेष में) षष्ठेश से युक्त हो तो भी मनुष्य वात रोगी होता है।

शनि वात रोग का कारक है। शनि का प्रभाव लग्न या चन्द्रमा पर हो और लग्न निर्बल हो तो वायु रोग की सम्भावना हो जाती है। शनि का जल ग्रह चन्द्रमा या अग्नि ग्रह मंगल से योग हो तो भी उक्त सम्भावना होती है। यहां वात रोग या वायु रोग से तात्पर्य गैस, अपचन से नहीं है। इस रोग में शरीर की हरकत कम हो जाती है, सूजन आ जाती है, शरीर में दर्द बना रहता है। इसके सन्धिवात, धनुर्वात आदि कई भेद होते हैं।

पित्त रोग के योग :

दुःस्थे सज्ञे प्रथमरमणे वारुणेऽरावचारु-
दृष्टोपेते किमु वध इने मुक्तवीर्य्ये महीजे।
क्रूरे कोशे किमु कुजयुतेऽङ्गेशि याम्ये विलग्ने
रम्यादृष्टेऽङ्ग उत धनपे नैधने पित्तरुग्भाक्॥५॥

दु:स्थ इति। सज्ञे=बुधसहिते, प्रथमरमणे=लग्नस्वामिनि, दु:स्थे=त्रिकस्थान-स्थिते सति, तदा जात: पित्तरुग्भाक्=पित्तरोगी, भवेदिति शेष:।

तथोक्तं सुधासागरे

"लग्नेशज्ञौ त्रिके यातौ पित्तरोगी भवेन्नर:।" इति।

वेति। वा विकल्पार्थे। अरुणे=रवौ 'अरुणो भास्करेऽपि स्याद्' इत्यभिधानात्। अरौ =षष्ठस्थानस्थिते, अचारुदृष्टोपेते=पापदृष्टयुते सति तदा पित्तरुग्भाग् भवतीति सर्वत्रानुवृत्ति:।

किमु इति। किमु वार्थे। इने=रवौ 'इन: पत्यौ नृपार्कयो:' इति मेदिनी। वधे= अष्टमे, महीजे=भौमे, मुक्तवीर्य्ये=बलरहिते, क्रूरे=पापग्रहे, कोशे=धनस्थाने 'कोशोऽस्त्री कुड्मलेखड्गे पिधानेऽर्थौघदिव्ययो:' इत्यमर:। सति तदा पित्त-रुग्भाग्भवति।

किमु इति। किमु वार्थे। अङ्गेशि=लग्नेशे, कुजयुते=भौमयुक्ते, याम्ये=अष्टमे, विलग्ने=समुदये, तथा अङ्ग=लग्ने 'लग्नं मूर्त्तिस्तथाङ्गं तनुरुदयवपु'रिति गणेशोक्ते:। रम्यादृष्टे=न शुभदृष्टे सति, तदा जात: पित्तरुग्भाग् भवति।

तथा च सन्तानदीपिकायाम्

"लग्नेशसहिते भौमे लग्ने वाऽप्यष्टमेऽपिवा।

शुभैरवीक्षिते लग्ने पित्तरोगान्वितो भवेत्॥" इति।

उतेति। उत वार्थे। धनपे=लग्नेशे, नैधने=अष्टमे सति, तदा जात:, पित्तरुग्भाग् भवति।

यदि लग्नेश से युक्त बुध ६, ८, १२ भावों में गया हो।

षष्ठ स्थान में पाप ग्रह से दृष्ट या युक्त सूर्य हो।

अष्टम स्थान में सूर्य हो और मंगल निर्बल हो तथा द्वितीय भाव में पाप ग्रह स्थित हो।

अष्टम या लग्न में लग्नेश एवं मंगल साथ-साथ हों और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।

लग्नेश यदि अष्टम भाव में गया हो।

इन सब योगों में मनुष्य को पित्त रोग होता है।

पित्त रोग से तात्पर्य शरीर में विद्यमान वात, पित्त, कफ में से पित्त दोष से होने वाले रोगों से है। इसमें सामान्यत: पित्तज्वर, गर्मी, फफोले आदि का ग्रहण है। दस्त, पेट गैस, अम्लता आदि इसी श्रेणी में आएंगे। आयुर्वेद ग्रन्थों में इसके ४० भेद बताए गए हैं। सूखापन, गर्मी,

दाह, अम्लता, रक्त विकार, त्वग् विकार, कामला, गुदपाक आदि इसके भेद हैं।

कफ रोग योग :

यमेनयोगेऽथ भगेऽथवा भपे
यमार्दितेऽम्भोभवनेऽथ सेन्दुजे।
सितेन्दुदृष्टेघलवे विपक्षगे
वसुन्धराजे कफतः प्रपोड्यते॥६॥

यमेति। यमेनयोगे=शनि-सूर्ययोर्योगे सति, तदा जातः, कफतः=श्लेष्मणा 'सार्वविभक्तिभ्यस्तसि'। प्रपीड्यते=दुःखी भवतीत्यर्थः।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। भगे=सूर्ये 'भगोऽर्कज्ञानमाहात्म्यवैराग्यादिषु' इति वैजयन्ती। 'भग श्रीयोनिवीर्येच्छा' इत्यारभ्य धर्मे मोक्षेऽथवा रवौ इति मेदिनी। अतश्च भगशब्देन सूर्य उच्यते। अथवा भपे=चन्द्रे, यमार्दिते=शनिना योगेन दृष्ट्या वा अर्दिते पीडिते, अम्भोभवने=चतुर्थे सति, तदा जातः कफतः प्रपीड्यते इति सर्वत्रानुवृत्तिः।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। सेन्दुजे=बुधसहिते, सितेन्दुदृष्टे=शुक्र-चन्द्रदृष्टे, अघलवे=पापांशस्थिते, एवं विधे, वसुन्धराजे=भौमे, विपक्षगे=षष्ठस्थानस्थिते सति, तदा जातः, कफतः प्रपीड्यते।

शनि व सूर्य एक ही राशि में हों।

चतुर्थ स्थान में सूर्य व चन्द्रमा हो और शनि से पीड़ित हों।

षष्ठ स्थान में पाप नवांश में मंगल हो और वह बुध से युक्त होकर शुक्र व चन्द्रमा से दृष्ट हो।

इन सब योगों में मनुष्य कफ रोगी होता है।

कफ विकार से उत्पन्न रोगों में बलगम, जुकाम, बुखार, गले की खराबी, फेफड़ों में विकार, पीनस, नजला आदि का ग्रहण होगा। सामान्यतः जलीय राशि में जन्म, जल ग्रहों का प्रभाव जन्म लग्न या जन्म राशि पर हो तो ऐसी स्थिति बनती है। कुछ अन्य कफ कारक योग इस प्रकार हैं—

'सोग्रे विधौ कभनवांशगतेऽथ कस्थे,
कालार्दिते शशिनि किं तपनेऽथ योगे।

मन्देनयोरथ कुजं रुजि वित्तमेते,
ग्लौभेक्षितेऽघलवगे कफपीडितः स्यात् ॥'
(गदावली)

'यदि चतुर्थ भाव की राशि या चतुर्थगत नवांश राशि में पाप युक्त चन्द्रमा हो, चतुर्थ भाव में शनि पीड़ित सूर्य या चन्द्रमा हो, शनि सूर्य एकत्र हों, षष्ठ भाव में बुध व मंगल पाप राशि के नवांश में हो एवं चन्द्र शुक्र की उन पर दृष्टि हो तो मनुष्य कफ रोगी होता है।'

गम्भीर रोग योग :

स्वोच्चेऽरिपे पुंतनुगेऽघलोकिते
गूढो गदोऽङ्गेऽरिवशाज्जनुष्मताम् ।
नाभौ रुजा स्यात्सहजे सपत्नपे-
ऽथादित्यजे द्वेष्यगतेऽङ्घ्रिरोगवान् ॥७॥

स्वोच्च इति । अरिपे = षष्ठेशे, स्वोच्चे = स्वीयतुङ्गे, पुंतनुगे = पुंराशिलग्ने वा, अघलोकिते = पापदृष्टे सति, तदा जनुष्मतां = जन्मिनां, अङ्गे = शरीरावयवे 'अङ्ग प्रतीकोऽवयवः' इति कोशात् । अरिवशात् = शत्रुजनवशतः, गूढः = गूढरूपः प्रच्छन्नः, गदः = रोगः स्यादिति शेषः । अत्र ग्रहतुङ्गराशीनां प्रायः स्त्रीराशित्वात् पुंलग्ने वा शब्दप्रयोगे भिन्न एव योगो ज्ञायते ।

एवं भावप्रकाशेऽपि
"पुरुषग्रहराशौ षष्ठेशे खलदृष्टे तुङ्ग ।" इति ।

उदयभास्करेऽपि
"....यदि तुङ्गगतेऽरिपे । नरतनौ रिपुतोऽपि च गूढरुक् ।" इति ।

नाभाविति । सपत्नपे = षष्ठस्वामिनि, सहजे = तृतीये सति, तदा जातस्य, नाभौ = नाभिस्थाने 'अथ नाभिस्तु जन्त्वङ्गे यस्य सञ्ज्ञा प्रतारिका । रथचक्रस्य मध्यस्थपिण्डिकायां च ना पुनः । आयक्षत्रियभेदे तु मतो मुख्यमहीपतौ' इति केशवः । रुजा = रोगः स्याद् भवेत् ।

अथेति । अथानन्तर्य्यार्थे । आदित्यजे = शनैश्चरे, द्वेष्यगते = षष्ठस्थानस्थिते सति तदा जातः, अंघ्रिरोगवान् = पादरोगी स्यादिति शेषः ।

यदि षष्ठेश पापयुक्त होकर अपनी उच्च राशि में या पुरुष (विषम) राशि लग्न में स्थित हो तो ऐसे व्यक्ति के शरीर में शत्रुओं से उत्पन्न गूढ़ रोग होता है।

यदि षष्ठेश तृतीय स्थान में हो तो वह व्यक्ति नाभि रोग वाला होता है।

यदि षष्ठ स्थान में शनि हो तो व्यक्ति के पैरों में रोग होता है।

शत्रुओं द्वारा किसी को धीमा विष या अन्य कोई औषधि विशेष दे दी जाए जिससे व्यक्ति के शरीर में थोड़े समय बाद रोगोत्पत्ति हो। ऐसी स्थिति की ओर संकेत है। गुप्त वैरियों द्वारा भोजन में विष देने के सैकड़ों उदाहरण हो सकते हैं। आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द को उनके रसोइए ने भोजन में विष दिया था। अभी इस शताब्दी के अन्त में प्रसिद्ध आचार्य रजनीश को भी अमेरिका में कारावास के दौरान धीमा विष मिथाइल दे दिया गया था, ऐसा मैंने पत्रिकाओं में पढ़ा है। यह रोग योग जातकालंकार, भावप्रकाश आदि ग्रन्थों में भी बताया गया है। षष्ठेश निर्बल हो और पाप ग्रह से दृष्ट हो या पाप मध्य में हो तो शत्रु पीड़ा होती है—

पापग्रहेण संदृष्टे बलहीनेऽरिनायके।
पापान्तरगते वापि शत्रुपीडा भविष्यति॥

(वैद्यनाथ)

यह स्थिति तभी बननी चाहिए जब षष्ठेश ६, ८, १२ में न हो। यदि वह त्रिक में होगा तो चाहे नीच भी हो, अस्त हो, लेकिन लग्नेश बली हो तो शत्रु नाश होता है, ऐसा स्वयं वैद्यनाथ ने माना है—

शत्रुस्थानाधिपे दुःस्थे नीचमूढारिराशिगे।
लग्नेशे बलसंयुक्ते शत्रुनाशं वदेद् बुधः॥

(वैद्यनाथ)

अतः षष्ठेश पाप दृष्ट या पापान्तराल में ६, ८, १२ भावों को छोड़कर अन्यत्र हो, ऐसा समझना चाहिए।

तृतीय में षष्ठेश हो तो नाभि में रोग बताया है। नाभि पेट का केन्द्र है। जिस प्रकार रथ चक्र के मध्य में पिण्डिका (गोला) होता है, उसी प्रकार पेट व पाचन का केन्द्र नाभि होती है। तृतीय स्थान का नाभि से क्या सम्बन्ध है यह विचारणीय है। तथापि शुकसूत्र में कुछ और ही योग कहा गया है—

अष्टमदेहाधिपौ षष्ठस्थानस्थितौ चेन्नाभिरोगी।

(शुकसूत्र)

अर्थात् लग्नेश व अष्टमेश षष्ठ में हों तो नाभि रोग होता है।

षष्ठस्थ शनि से पैरों में रोग बताया गया है। शनि स्वयं लंगड़ा है। इसका एक नाम पंगु है। शनि पापरोगों का प्रतिनिधि भी है। षष्ठ भाव के कारकत्व में पैरों का भी ग्रहण है। अत: षष्ठस्थ शनि पैर में रोग दे, चोट दे या लंगड़ापन दे तो आश्चर्य की बात नहीं है। यदि इस पर पापदृष्टि हो तो क्या कहने? सामान्यत: शनि कृत रोगादि लम्बे समय तक चलते हैं। अत: शनि को दीर्घ रोगकारक भी माना गया है। अत: शनि कृत लंगड़ापन या चोट सदैव के लिए या लम्बे समय तक परेशानी करेगी ऐसा समझना चाहिए।

वात रोगों के योग :

अङ्गेऽङ्गजेऽहौ दशनामयी भवी
किं दन्तुरोऽहौ स्मरपाद्धने रदा:।
स्थूला: कलेशेनयमै: कलत्रगै:
किं दारयातैर्दुरितैर्नभश्चरै: ॥८॥
दन्ताभिघात: क्रियगोहयोदये-
ऽघैर्युक्तदष्टे किमनङ्गगैरघै:।
दृष्टैर्न सौम्यै: किमुतोदयस्थितौ
भोगीन्द्रगौरौ रदरोगवान्नर: ॥९॥

अङ्ग इति। यामित्रगैरिति च। अहौ = राहौ 'सर्पे वृत्रासुरेऽप्यहि:' इति वैजयन्ती। अतश्च सर्पशब्देन राहुरुच्यते। अङ्गे = लग्ने, अङ्गजे = पञ्चमे वा यदि तदा, भवी = जन्मी, दशनामयी = दन्तरोगी, किं = अथवा, दन्तुर: = स्थपुट:, विषम इति यावत् 'दन्तुरस्तून्नतो त्रिषु' इति मेदिनी। भवेदिति शेष:।

तथोक्तं सुधासागरे

"दन्तुरो दन्तरोगी वा सुतेऽङ्गे तमसि स्थिते।" इति।

अहाविति। अहौ = राहौ, स्मरपात् = सप्तमेशात्, धने = द्वितीये सति, तदा जातस्य, स्थूला: = पीवरा:, रदा: = दन्ता:, स्युरिति शेष:।

तथोक्तं सुधासागरे

"...स्थूलदन्तौ यदि धनगते सप्तमेशाच्च राहौ।" इति।

कलेशेति। कलेशेनयमै: = चन्द्र-रवि-शनिभि:, कलत्रगै: = सप्तमस्थितै: सद्भि:, चेत्तदा, दन्ताभिघात: = दन्तनाश: स्यादिति शेष:।

तथोक्तं सुधासागरे

"...शशिरविरविजाः सप्तगा दन्तघातः।" इति।

किमिति। किं वार्यं। दुरितैर्नभश्चरैः=पापग्रहैः, दारयातैः सप्तमगैः, चेत्तदा दन्ताभिघातः=दन्तनाशः स्यादिति शेषः।

क्रियेति। क्रियगोहयोदये=मेष-वृष-धनुरन्यतमलग्ने, अघैः=पापैः, युक्तदृष्टे=सहित-विलोकिते सति तदा जातो नरः, रदरोगवान्=दन्तरोगी, भवतीति शेषः।

किमिति। किं वार्यं। अनङ्गगैः=सप्तमस्थितैः, अघैः=पापैः, सौम्यैः=शुभग्रहैः, न दृष्टैः=नावलोकितैः सद्भिः, तदा जातः, रदरोगवान्=दन्तरोगी, भवतीति सर्वत्रानुवृत्तिः।

किमुतेति। किमुत वार्यं। उदयस्थितौ=लग्नगतौ, भोगीन्द्रगौरौ=राहु-गुरु, यदि तदा, जातो नरः, रदरोगवान्=दन्तरोगी, भवति॥

लग्न या पंचम में राहु हो तो मनुष्य बड़े दांतों वाला या दन्त रोगी होता है।

सप्तमेश जिस राशि में हो उस राशि से द्वितीय स्थान में राहु हो तो मनुष्य मोटे दांतों वाला होता है।

यदि सप्तम स्थान में सूर्य, चन्द्र व शनि हो तो दांतों का नाश होता है।

निम्नलिखित योगों में व्यक्ति दांतों में रोगयुक्त होता है—

(i) सप्तम स्थान में पापग्रह हो।
(ii) मेष या वृष या धनु लग्न में जन्म हो और उस पर पापदृष्टि हो या पापयोग हो।
(iii) सप्तम में पापग्रह को शुभग्रह न देखता हो।
(iv) लग्न में राहु व गुरु साथ-साथ हों।

वराहमिहिर ने भी कहा है कि **'विकृतदशनः पापैर्दृष्टे वृषाज हयोदये'**। लेकिन इस योग को ज्योतिष श्यामसंग्रह में दूसरे ढंग से बताया गया है—

वृषाजगः क्रूरखगैर्विलग्ने क्रूरेक्षिते वैकृतदन्तकः स्यात्।

(ज्योतिष श्यामसंग्रह)

अर्थात् मेष या वृष लग्न में क्रूर ग्रह हों और लग्न को पापग्रह देखें तो दांतों में विकार होता है।

लेकिन अन्यत्र इसमें धनु लग्न भी सम्मिलित है—

पापैर्दृष्टे गोऽजचाप लग्ने विकृतदन्तवान्।

(जातकसारदीप)

सप्तम स्थान में क्रूर ग्रह सदैव दांतों का विकार उत्पन्न करते हैं। इस विषय में कोई सन्देह नहीं है—

सप्तमे क्रूरसंदृष्टा क्रूरा दन्तविकारदाः।

(बलभद्र मिश्र)

वराहमिहिर व कल्याण वर्मा ने दन्त विकृति के लिए यही बात कही है—

धर्माय सहजसुतगाः पापाः सौम्यैर्न वीक्षिताः जन्तोः।

श्रवणविनाशं कुर्युः सप्तमसंस्थाश्च दन्तानाम्॥

(सारावली)

'३, ५, ६, ११ भावों में पापग्रह शुभदृष्ट न हों तो मनुष्य के कानों का नाश होता है और सप्तमस्थ पापग्रह सदैव दांतों का नाश करते हैं।'

इसी प्रकार **'रदवैकृत्यकराश्च सप्तमे'** वराहमिहिर ने भी कहा है।

दन्त विकृति के अन्य योग :

धनधवे सखले सविपक्षपे
रदगदी जनितो जन उच्यते।
फणिपतौ किमुताचिकुरेऽरिगे
रदरुजा किमु रुक् च रदच्छदे॥१०॥

धनेति। धनधवे=द्वितीयेशे, सखले=पापसहिते, सविपक्षपे=षष्ठेशसहिते च, तदा, जनितः=जातः, जनः=लोकः 'जनो लोके महर्लोकात्परलोके च पामरे' इति विश्वः। उच्यते=कथ्यते, बुधैरिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"दन्तरोगी सपापौ स्याद्धनारीशयुतौ यदा।" इति।

फणिपताविति। फणिपतौ=राहौ, उत वार्थे, अचिकुरे=केतौ, अरिगे=षष्ठगते सति, तदा, रदरुजा=दन्तरोगः, किमु वार्थे, रदच्छदे=ओष्ठे, रुग्=रोगः, भवेदिति शेषः।

द्वितीयेश के साथ षष्ठेश एवं पापग्रह हों तो मनुष्य दन्त रोगी होता है।

षष्ठ में राहु या केतु हों तो दांत या होंठ में रोगोत्पत्ति करते हैं।

भावप्रकाश में षष्ठस्थ राहु-केतु को दांत या होंठ में रोगदायक बताया है। इस विषय में वेंकटेश ने कुछ विशेष बातें बताई हैं—

वाक्स्थानपेनापि युतोऽरिनाथस्तद्भावपस्यांशकयुक्तनाथः।
षष्ठेश्वरेणापि युतः स्वभुक्तौ दन्तादिरोगः पतनं च तेषाम्।।
वाक्स्थानपे षष्ठगते सराहौ राहुस्थितर्क्षाधिपसंयुते वा।
दन्तस्य रोगः पतनं च तेषां युक्तौ तयोर्वा पतनं च तेषाम्।।

(सर्वार्थ चिन्तामणि)

'अर्थात् षष्ठेश व द्वितीयेश एक साथ हों अथवा द्वितीयेश का नवांशेश षष्ठेश से युक्त हो अथवा षष्ठेश द्वितीय स्थान में गया हो तो उसकी दशान्तर्दशा में दांतों में रोग होता है या दांत गिर जाते हैं।

यदि द्वितीयेश षष्ठ स्थान में राहु से युक्त हो, अथवा राहु जिस राशि में स्थित हो उस राशि का स्वामी षष्ठ में गया हो तो इनकी दशान्तर्दशा में दांतों में रोग या दन्तपतन हो जाता है।'

मुख रोग एवं दाद के योग :

मघाभवे वाग्मिनि वाङ्गयाते-
ऽरीशेऽघदृष्टे जन आस्यशोफी।
भूकण्टकेऽर्के भपतौ कुटुम्बे
सार्कावुताम्भश्चरभे सदद्रुः।।११।।

मघेति। मघाभवे = शुक्रे, वा अथवा, वाग्मिति = गुरौ, यदि अरीशे = षष्ठेश भवति, तस्मिन्नघदृष्टे = पापदृष्टेविलोकिते, अङ्गयाते = लग्नगते यदि तदा जातः, जनः = लोकः, आस्यशोफी = मुखाधिकरणकश्वयथुरोगयुतः, स्यादिति शेषः। भूकण्टक इति। भूकण्टके = भूमिकेन्द्रे अर्थात् लग्ने, अर्के = रवौ, सार्कौ = शनि-सहिते, भपतौ = चन्द्रे, कुटुम्बे = द्वितीये, उत वार्थे, भपतौ = चन्द्रे, अम्भश्चरभे, जलचरराशौ कुटुम्बे द्वितीये भवति, तदा जातः सदद्रुः = दद्रु (कुष्ठ) रोगसहितः, भवेदिति शेषः।

षष्ठेश होकर शुक्र या बृहस्पति लग्न में स्थित हो और पापग्रह उसे देखते हों तो मनुष्य के मुख में शोफ रोग होता है।

द्वितीय स्थान में जलचर राशिगत या शनि से युक्त चन्द्रमा हो तो मनुष्य को दाद रोग से पीड़ा होती है।

लग्न में अकेला सूर्य हो तो भी मनुष्य दाद से पीड़ित होता है।

प्लीहा रोग (जिगर तिल्ली) के योग :

पुण्यादृष्टे पापदृष्टेऽरिपेन्दा
एवं भूते कामकल्पेट्कलेशे।
प्लीही चन्द्रेनोत्थयोर्धीस्थयोर्वा-
ऽरीशग्लौभेशोरसद्दृष्टयोः स्यात् ।।१२।।

प्लीह्यारार्क्योर्मध्यगे शीतभानौ
भानौ नक्रे श्वासभाक् प्लीहवांश्च।
पङ्गौ पौरे प्लीहवान् सम्मदोनः
सौरौ सौख्ये प्लीहवान्नष्टदृष्टिः ।।१३।।

पुण्येति। प्लीहीति च। अरिपेन्दौ=षष्ठेशचन्द्रे, पुण्यादृष्टे=शुभग्रहैरनवेक्षिते, पापदृष्टे=केवलं क्रूरैर्विलोकिते तदा जातः, प्लीही=प्लीह (भाषायां तिल्ली) रोगवान् भवेदिति शेषः। एवं भूते=एवं विधे, कामकल्पेट्कलेशे= सप्तमनाथे लग्ननाथे वा चन्द्रे केवलं क्रूरदृष्टे प्लीही स्यात्।

चन्द्रेति। चन्द्रेनोत्थयोः=चन्द्र-शन्योः, धीस्थयोः=पञ्चमस्थितयोः सतोः तदा प्लीही स्यात्।

तथोक्तं सुधासागरे

"सुतस्थौ शनीन्दू भवेतां तदाद्या महाश्वासकासामयाः स्युर्नरस्य।" इति।

वेति। वा विकल्पार्थे। अरीशग्लौभेशोः=षष्ठेश-चन्द्राधिष्ठितराशिस्वामिनोः, असद्दृष्टयोः=पापावलोकितयोः सतोः तदा जातः प्लीही स्यात्।

आरार्क्योरिति। शीतभानौ=चन्द्रे, आरार्क्योः=भौमशन्योः, मध्यगे=अन्तराले, भानौ=रवौ, 'भानवोऽर्कहरांशवः' इति वैजयन्ती। नक्रे=मकरराशौ सति, तदा जातः, श्वासभाक्=श्वासरोगी, प्लीहवान् च स्यात्।

पङ्गाविति। पौरे=लग्ने, पङ्गौ=शनैश्चरे 'पुण्यादृष्टे पापदृष्टे' इत्यनुषङ्गः। सति तदा जातः, प्लीहवान्=प्लीहरोगयुक्तः, सम्मदोनः=हर्षहीनश्च स्यात्।

सौराविति। सौख्ये=चतुर्थभवने, सौरौ=शनैश्चरे 'पुण्यादृष्टेपापदृष्टे' इत्यनुषङ्गः। सति तदा जातः, प्लीहरोगयुक्तः, नष्टदृष्टिः=अन्धश्च स्यात्।

यदि षष्ठ स्थान में कर्क राशि पड़े और षष्ठेश चन्द्रमा पापग्रहों से दृष्ट एवं शुभग्रहों से अदृष्ट हो तो तिल्ली रोग होता है।

यदि कर्क लग्न या मकर लग्न में जन्म हो और चन्द्रमा शुभग्रहों से दृष्ट न होकर पापग्रहों से दृष्ट हो तो भी तिल्ली रोग होता है।

पंचम स्थान में चन्द्रमा व शनि हो अथवा षष्ठेश एवं जन्म राशीश पापदृष्ट हों तो प्लीहा रोग होता है।

यदि चन्द्रमा, मंगल एवं शनि के बीच में स्थित हो, मंगल शनि की पापकर्तरी में हो एवं मकर राशि में सूर्य स्थित हो तो श्वास एवं प्लीहा रोग होता है।

बृहज्जातक में चन्द्रमा को पापग्रहों के अन्तराल में मानकर उक्त प्लीहा रोग के साथ ही सांस, टी० बी० आदि की भी सम्भावना मानी है—

अन्तः शशिन्यशुभयोर्मृगगे पतंगे,
श्वासक्षयाप्लिहकविद्रधिगुल्मभाजः ।
(बृहज्जातक)

'यदि चन्द्रमा पापग्रहों के अन्तराल में हो और सूर्य मकर राशि में स्थित हो तो सांस, टी० बी०, प्लीहा, फोड़ा, केन्सर (विद्रधि) आदि रोग होते हैं।'

श्वेतकुष्ठ के योग :

कुष्ठं सितं वक्रविधू बुधाङ्गपौ
क्वापि स्थितौ वा शिखिनाऽहिना युतौ ।
विधत्त इन्दौ मृदुमङ्गलान्विते-
ऽजे पुङ्गवे वा सितकुष्ठभाग्भवेत् ॥१४॥

कुष्ठमिति । वक्रविधू = भौम-चन्द्रौ बुधाङ्गपौ = बुध-लग्नेशौ, शिखिना = केतुना, वा अथवा, अहिना = राहुणा, युतौ = समेतौ, क्वापि स्थितौ = यत्र कुत्रापि स्थितौ स्यातां, तदा, सितं = श्वेतं, कुष्ठं = विधत्तः = कुरुतः ।

इन्दाविति । मृदुमङ्गलान्विते = शनि-भौमसहिते, इन्दौ = चन्द्रे, अजे = छागे मेषराशाविति यावत् । वा = अथवा, पुङ्गवे = वृषभे । भवति तदा जातः, सित-कुष्ठभाक् = श्वेतकुष्ठी, भवेत् ।

चन्द्रमा व मंगल किसी भी स्थान में राहु या केतु से युक्त हों। अथवा लग्नेश एवं बुध राहु या केतु से युक्त हों तथा कहीं भी स्थित हों तो मनुष्य को श्वेत कुष्ठ होता है।

यदि मेष या वृष राशि में चन्द्रमा हो एवं साथ में मंगल व शनि हों तो भी श्वेतकुष्ठ होता है।

ये योग जातकालंकार के आधार पर बताए गए हैं। वराहमिहिर ने २, १२ भावों में पापग्रह, लग्न में चन्द्रमा और सप्तम में रवि होने पर श्वेतकुष्ठ का योग माना है—

श्वित्रोऽरि:फधनस्थयोरशुभयोश्चन्द्रोदयेऽस्तेरवौ।
(बृहज्जातक, अनिष्टाध्याय)

होरारत्न में इन योगों में यथासम्भव कुष्ठ, अपस्मार या अन्य महारोगों की सम्भावना मानी गई है। वहां इस प्रकार के बहुत से योग बताए गए हैं—

(i) सूर्य, बुध, गुरु अष्टम में या षष्ठ में हों।
(ii) लग्नेश क्रूर राशि में व लग्न क्रूरदृष्ट हो तो कुष्ठ होता है।
(iii) गुरु बृहस्पति अष्टम में, शनि बुध षष्ठ में एवं लग्न क्रूरदृष्ट हो। इत्यादि।

कुष्ठ से तात्पर्य कोढ़ से तो है ही, जो आजकल समझा जाता है, लेकिन आयुर्वेद ग्रन्थों में कुष्ठ शब्द का प्रयोग मकड़ी से या छिपकली या तत्सदृश किसी विषैले जन्तु के स्पर्श से उत्पन्न खाल के विकार, बड़ी खुजली, दाद, एग्जिमा अथवा सदा रहने वाला चमला आदि रोगों के लिए किया है। इसी कारण लूताकुष्ठ, दद्रुकुष्ठ, रुधिरकुष्ठ (कदाचित् विकृत मुंहासे या रक्त विकार) आदि शब्दों का प्रयोग देखने में आता है। बड़े कुष्ठ (कोढ़) के लिए महाकुष्ठ या गलितकुष्ठ शब्द का प्रयोग किया जाता है। अत: तदनुसार संगति लगाकर फलादेश करना चाहिए।

रक्त कुष्ठादि योग :

कृष्णास्रकुष्ठ्यार्किकुजान्वितेऽरुणे
कुष्ठी सलूतो झषकर्कटालिभिः।

सोग्रैरथो वृश्चिककर्कमीनगैः
कृष्णारभग्लौभिरिहास्रकुष्ठवान् ॥१५॥
सौख्येन हीनो बहुपापकृद् भवी
प्रान्त्ये गुरौ गुप्तगदी नरो भवेत् ।
कोणः कविं कायगतं विलोकये-
च्छ्रोण्या विभागे विकलः कलेवरी ॥१६॥

कृष्णेति । सौख्येनेति च । अरुणे = रवौ 'अरुणोऽर्कार्कसारथ्योररुणो लोहितेऽन्यवत्' इति कोशात् । आर्किकुजान्विते = शनि-भौमसहिते सति तदा जातः, कृष्णास्र-कुष्ठी = रक्तकृष्णवर्णनामककुष्ठवान्, स्यादिति शेषः ।

कुष्ठीति । सोग्रैः = क्रूरसहितैः, झषकर्कटालिभिः = मीन-कर्क-वृश्चिकैः सद्भिः, तदा जातः, सलूतः = लूताकारेण सहितः कुष्ठी स्यादिति शेषः ।

अथो इति । अथो आनन्तर्यार्थे । कृष्णारभग्लौभिः = शनि-भौम-शुक्र-चन्द्रैः, वृश्चिककर्कमीनगैः सद्भिः, तदा जातः, भवी = प्राणी, अस्रकुष्ठवान् = रक्तकुष्ठी, सौख्येन = शरीरजन्यसुखेन, हीनः = रहितः, बहुपापकृत् महापातकी च स्यादिति ।

प्रान्त्य इति । गुरौ = बृहस्पतौ 'गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठे गुरौ पितरि दुर्भरे। गुरुर्महत्याङ्गिरसे पित्रादौ धर्मदेशके' इति शब्दार्णवहैमौ । प्रान्त्ये = व्यये सति तदा जातः, नरः = पुरुषः, गुप्तगदी = गुप्तरोगी, वैद्याज्ञानरोगी स्यादित्यर्थः ।

कोण इति । कोणः शनिः 'कोणो वाद्यप्रभेदे स्यात्कोणोऽश्रौ लगुडेऽर्कजे' इति मेदिनी । कायगतं = देहगतं लग्नगतमिति यावत् 'काये, अपमूर्ध्नि कलेवरे' इति । 'कायो देहः क्लीबपुंसो शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इति कोशात् । कविं = शुक्रं, विलोकयेत्, पश्येत्, तदा जातः, कलेवरी = जन्मी, श्रोण्याः = कट्या, विभागे = प्रदेशे, कटितट इत्यर्थः । विकलः = विह्वलो व्याकुल इत्यर्थः । भवेदिति शेषः ।

यदि किसी भी स्थान में सूर्य के साथ शनि व मंगल हों। इस योग में मनुष्य को रक्तकुष्ठ होता है।

कर्क, वृश्चिक, मीन राशि में पापग्रह हों तो लूता (मकड़ी) कुष्ठ होता है।

इन्हीं तीन राशियों में शनि, मंगल व चन्द्रमा हों तो रक्तकुष्ठ होता है। ऐसा व्यक्ति दुःखी एवं पातकी होता है।

द्वादश स्थान में बृहस्पति हो तो मनुष्य गुप्त रोगी होता है।

लग्न में स्थित शुक्र को शनि देखता हो तो कमर में रोग या विकलता होती है।

रोगों के कारण, निदान एवं ग्रहयोगादि के लिए पाठकों को **प्रश्नमार्ग** का अध्ययन करना चाहिए।

षष्ठेश एवं अष्टमेश ये दो ग्रह रोगपति होते हैं। यदि दोनों या एक बलवान् हो तो रोग होता है—

व्याधीनामीश्वरो ज्ञेयः षष्ठपो रन्ध्रपस्तथा।
बाधया सबलेऽरीशे रन्ध्रेशे रुक् त्रिदोषतः॥

(प्रश्नमार्ग)

वहां प्रश्नमार्ग में सभी ग्रहों के रोगों की विस्तृत सूची दी गई है। पाठकगण **प्रश्नमार्ग** का अध्ययन विशेष ज्ञान के लिए कर सकते हैं।

विकलता योग :

क्वापीनजो वा कुटिलो बुधोऽथवा-
ऽऽचार्य्येण युक्तः सलिलालये सिते।
कट्याविभागे चरणाभिधे तथा
प्राणी सपाणौ विकलत्वमाप्नुयात् ॥१७॥

क्वेति। आचार्य्येण = गुरुणा, युक्तः = सहितः, इनजः = शनिः, वा = अथवा, कुटिलः = भौमः, अथवा बुधः = चान्द्रिः, क्वापि = यत्र कुत्र स्थितः, सिते = शुक्रे, सलिले = चतुर्थे सति, तदा जातः, कट्याः = श्रोण्याः, विभागे = प्रदशे, कटितट इत्यर्थः। सपाणौ = हस्तसहिते, चरणाभिधे = पादे, प्राणी = जन्मी, विकलत्वं = व्याकुलतां, आप्नुयात् = लभेत्।

किसी भी स्थान में गुरु से युक्त शनि, मंगल या बुध हो और चतुर्थ स्थान में शुक्र हो तो कमर (कटिप्रदेश) में विकलता होती है। अथवा इसी योग में हाथ या पैर में विकलता होती है।

गण्डरोग योग :

ना तापगण्डीनयुतेऽङ्गपे त्रिके
गण्डः कलेशेन कजः कुसूनुनः।
ग्रन्थ्यायुधेर्म्मोऽथबुधेन पित्तरुगा-
मोद्भवो गीष्पतिनः क्षयो गदः ॥१८॥

काव्येन युक्ते त्रिकगे तनूविभौ
चौरान्त्यजोद्भूतगदोऽगुनाऽऽर्किणा ।
किं केतुनाढ्येऽङ्गधवे त्रिके ततो-
ऽङ्गायुःपयोः केत्वहिकोणयुक्तयोः ॥१९॥

द्वेष्ये तदेर्म्माणि तदीयदायके-
ऽर्य्यन्त्यस्थयोर्मङ्गलमन्दयोर्व्रणी ।
प्रत्यर्थिपाले यदि पामरान्विते
कालालये कल्पगृहे व्रणास्तनौ ॥२०॥

नेति । काव्येनेति । द्वेष्य इति च । अङ्गपे=लग्नाधिपे, इनयुते=सूर्ययुक्ते, त्रिके=दुःस्थे, भवति तदा जातः, ना=पुरुषः, तापगण्डी=तापगण्डान्वितः, गण्डो रोग-विशेषः 'गण्डः कपोलेचिन्हे च' इति विश्वः । कलेशेन=चन्द्रेण, युते लग्नेशे त्रिकस्थे चेत्तदा कजः=जलजः 'कं जले शिरसि चे'त्यमरः । गण्डः स्यात् । कुसूनुना=भौमेन, युते लग्नेशे त्रिकस्थे चेत्तदा ग्रन्थ्यायुधेर्म्मः=ग्रन्थिशस्त्रव्रणः, ग्रन्थ्युपलक्षितः शस्त्रजो व्रणः स्यादित्यर्थः । बुधेन=चान्द्रिणा 'ज्ञातृचान्द्रिसुरा बुधाः' इति क्षीर-स्वामी । युते लग्नेशे त्रिकस्थे चेत्तदा पित्तरोगः स्यात् । गीष्पतिना=जीवेन युते लग्नेशे त्रिकस्थे चेत्तदा आमोद्भवः=आमकोपजः 'आमो रोगे रोगभेदे आमोऽपक्वे तु वाच्यवत्' इति विश्वः । रोगः स्यात् । काव्येन=शुक्रेण, युक्ते, अङ्गविभौ=लग्नेशे, त्रिकगे=दुःस्थे सति तदा क्षयः=क्षयरोगः 'क्षया गृहाणि क्षयो नाशो वा' 'अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरःसरः । राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति च स्मृतः' इति वाग्भटः । अङ्गधवे=लग्नेशे, अगुना=राहुणा, आर्किणा=शनिना, किमथवा केतुना युक्ते त्रिके भवति तदा चौरान्त्यजोद्भूतगदः=चौरास्तस्कराः, अन्त्यजा रजकचर्म्मकारादयस्तेभ्य उद्भूत उत्पन्नो वा रोगः स्यात् ।

तत इति । ततो योगविचारानन्तरं, केतुना, राहुणा, शनिना वा युक्तयोर्लग्नेशाष्ट-मेशयोर्द्वेष्ये=षष्ठे चेत्तदा, तदीयदायके=तयोर्दशायां ईर्माणि=व्रणाः स्युः । अर्य्यन्त्येति । मङ्गलमन्दयोः=भौम-शन्योः, अर्य्यन्त्यस्थयोः=षष्ठ-द्वादश-स्थित-ग्रहे, चेत्तदा जातः, व्रणी=व्रणरोगवान्, स्यादिति शेषः ।

प्रत्यर्थीति । पामरान्विते=पापग्रहसहिते, प्रत्यर्थिपाले=षष्ठाधिपे, कालालये-ऽष्टमे, कल्पगृहे=लग्ने वा 'लग्नं मूर्त्तिस्तथाङ्गं तनुरुदयवपुः कल्पमाद्यम्' इति गणेशोक्तेः । तदा जातस्य, तनौ=शरीरे, व्रणाः=ईर्माणि, स्युरिति शेषः ।

सूर्य से युक्त होकर लग्नेश ६, ८, १२ भावों में कहीं हो तो मनुष्य को तापगण्ड (गलगण्ड) टांसिल, गद्द या गले में सूजन होती है।

यदि उक्त प्रकार से स्थित लग्नेश चन्द्रमा से युक्त हो तो जलजन्य गण्ड होता है।

मंगल से युक्त हो तो ग्रन्थि रोग अर्थात् गांठें बनना, शरीर में कहीं फूल जाना आदि रोग होते हैं।

बुध से युक्त हो तो पित्त रोग होता है। गुरु से युक्त हो तो आम (आंव) रोग होता है।

शुक्र से युक्त हो तो क्षयरोग और शनि, राहु, केतु से युक्त हो तो शूद्र, नीच जाति, चोरों आदि से पीड़ा होती है।

यदि लग्नेश एवं अष्टमेश, षष्ठ स्थान में हों और वे राहु, केतु या शनि से युक्त हों तो वे व्रणकारक (घाव) हो जाते हैं। इन ग्रहों की दशान्तर्दशा में शरीर में घाव लगते हैं।

यदि ६, १२ स्थानों में एकत्र शनि मंगल हों तो भी घाव होते हैं।

पापग्रहों से युक्त षष्ठेश लग्न या अष्टम स्थान में हो तो भी मनुष्य के शरीर में घाव होते हैं।

ग्रहों के व्रणस्थान :

सार्घैः क्षयेऽङ्गेऽङ्गजमातृतात-
योषाभपैस्तत्तनुषु व्रणाः स्युः।
तद्भावगामीत्थमिनः क इन्दु
रास्ये गलेऽस्रो हृदि विद्यमोंऽघ्रौ ॥२१॥

काव्योऽक्षिपृष्ठे धिषणस्तु नाभि
मूले तदेम्मं कुरुतेऽधरेऽहिः।
कायोपयाते कुटिलाभिधाने कामे
कवौ मंत्रिणि वा व्रणाः के ॥२२॥

सार्घैरिति। काव्य इति च। अङ्गजमातृताताययोषाभपैः=पुत्र-मातृ-पितृ-भार्याभाव नाथैः, सार्घैः=पापग्रहसहितैः, क्षये=अष्टमे, अङ्गे=लग्ने यदि तदा, तत्तनुषु= तेषां पुत्रादीनां शरीरेषु, व्रणा ईर्म्माणि स्युरिति।

तदिति। इत्थममुना प्रकारेण, तद्भावगामी=तत्स्थानगामी (तनुनिधनगतः)

षष्ठेश इनः सूर्यः 'इनः पत्यौ नृपार्कयोः' इति मेदिनी। चेत् तदा के=शिरसि 'कं शिरोऽम्बुनोः' इत्यभिधानात्। ईर्म्म=व्रणं, कुरुते=विधत्ते। इन्दुश्चन्द्रश्चेदास्ये मुखे, असो भौमश्चेद् गले=कण्ठे, विद्बुधश्चेद् हृदि=हृदये, यमः शनिश्चेद् अंघ्रौ=चरणे, काव्यः शुक्रश्चेद् अक्षिपृष्ठे=लोचने पृष्ठेधिषणोगुरुश्चेद् नाभिमूले, अही राहुश्चेद् अधरे=ओष्ठे ईर्म्म=व्रणं कुरुते=विधत्ते।

उदयभास्करेऽपि

"शिरसि भानुरनुष्णगुराननें धरणिजश्च गले हृदये बुधः।
सुरगुरौ च कटौ भृगुरक्षिगोऽथ इनजश्चरणाधरयोस्ततः॥" इति।

कायेति। कुटिलाभिधाने=भौमे, कायोपयाते=लग्नगते, कवौ=शुक्रे 'उशना भार्गवः कविः' इत्यभिधानात्। अथवा मन्त्रिणि=जीवे, कामे=सप्तमे भवति चेत्तदा जातस्य के=शिरसि, व्रणाः=इर्म्माणि स्युरिति शेषः।

इसी पद्धति से जिस सम्बन्धी का कारक ग्रह, पापयुक्त होकर अष्टम या लग्न में हो तो उसी सम्बन्धी को कष्ट होता है।

लग्न में षष्ठेश सूर्य हो तो सिर में, चन्द्रमा हो तो मुख में, मंगल हो तो कण्ठ में, बुध हो तो हृदय में, शनि हो तो पैरों में, शुक्र हो तो आंख या कमर में, गुरु हो तो नाभि में, राहु हो तो होंठ में घाव होता है।

लग्न में मंगल और सप्तम में शुक्र या गुरु हो तो सिर में घाव होता है।

यहां प्रोक्त अन्तिम योग में होरारत्नकार सिर में चिन्ह मानते हैं। आशय यही है कि घाव होकर उसका निशान रह जाए।

शत्रुविनाशादि योग :

दुष्टे विमूढे रिपुनीचभेऽरिपे
ऽङ्गेशे सवीर्य्येऽरिविनाशनं भवेत्।
रंगेऽरिपाले बहुदुष्ट उद्भवी
पुत्रात्तवित्तोऽङ्गगतेऽरिपेऽरिहा ॥२३॥

दुष्ट इति। अरिपे=षष्ठाधिपे, दुष्टे=त्रिके, विमूढे=अस्तङ्गते, रिपुनीचभे=शत्रुराशौ नीचराशौ वा भवति, अङ्गेशे=लग्नेशे, सवीर्ये=बलसहिते सति तदा, अरिविनाशनं=शत्रुक्षयः, भवेत्।

रंग इति। अरिपाले=षष्ठाधिपे, रंगे=धनस्थानगते सति तदा जातः, उद्भवी=

प्राणी, बहुदुष्ट:=अतिदुर्जन:, पुत्रात्तवित्त:=पुत्रेण आत्तं गृहीतं वित्तं धनं यस्य स तथा स्यात् ।

अङ्गेति । अरिपे=षष्ठाधिपे, अङ्गगते=लग्नगते सति, तदा जात:, अरिहा=अरीन् शत्रून् हन्तीति, शत्रुनाशक इत्यर्थ: ।

भावप्रकाशेऽपि

"तनुस्थे षष्ठेशे रिपुनिवहहन्ता ।" इति ।

यदि षष्ठेश नीचगत, अस्तंगत या शत्रुराशिगत हो और लग्नेश बली हो तो मनुष्य के शत्रु परास्त हो जाते हैं ।

यदि षष्ठेश धनस्थान में हो तो अतिदुष्ट एवं पुत्रों द्वारा उसका धन छीन लिया जाता है ।

यदि षष्ठेश लग्न में हो तो मनुष्य शत्रुहन्ता होता है ।

यहां प्रोक्त प्रथम योग सर्वार्थचिन्तामणि एवं जातक पारिजात में बताया गया है ।

द्वितीयस्थ षष्ठेश होने से भावप्रकाश में भी यही फल बताया गया है—

(धनगे) सुतात्तार्थो भ्रातर्य्यपि रिपुपतौ ग्रामरहित: ।

(भावप्रकाश)

इस विषय में यवनों ने उक्त फल के साथ-साथ अधिक फल बताया है—

(i) षष्ठेश लग्न में हो तो व्यक्ति निरुत्सव, कुटुम्ब को कष्ट देने वाला, साथियों वाला, रिपुहन्ता एवं वचन पालक होता है ।

(ii) यदि द्वितीय में हो तो दुष्ट, चतुर, संग्रहकर्ता, अपने आस-पास मान्य, विदित, रोगी एवं पुत्रों द्वारा गृहीत धन होता है ।

(वृद्धयवन)

॥ इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां रोगभावाध्यायोऽष्टम: ॥

[६]

जायाभावाध्याय:

विवाह होने के योग :

नितम्बिनीनिकेतने सुभावपानघाधिपैः।
युतेक्षिते घनाब्जयोः कलत्रवान् स नान्यथा ।।१।।

नितम्बिनीति। घनाब्जयोर्लग्नचन्द्रयोर्मध्ये यो बली तस्माद्यन्नितबिनीनिकेतनं सप्तमस्थानं तस्मिन्, सुभावपानघाधिपैः=सुभावस्वामिभिः सद्भिः, अधिपेन स्वामिना च, युतेक्षिते=सहितावलोकिते सति, तदा यो जातः स कलत्रवान्= स्त्रिया सहितः, भवेदिति शेषः। अन्यथा=परथा. चेन्न स्यात्, कलत्रवानिति शेषः।

फलदीपिकायामपि

"शुभाधिपयुतेक्षिते सुतकलत्रभे लग्नतो।
विधोरपि तयोः शुभं त्वितरथा न सिद्धिस्तयो।।" इति।

सर्वप्रथम लग्न व चन्द्रमा के बलाबल का निर्णय कर लें। इन दोनों में से जो बलवान् हो, उसी से सप्तम भाव से स्त्री का विचार होगा। उक्त सप्तम भाव यदि अपने स्वामी ग्रह से या ६, ८, १२ भावों के अधिपतियों के अतिरिक्त ग्रहों से दृष्ट हो या युक्त हो तो विवाह होता है।

इसके विपरीत स्थिति हो अर्थात् सप्तम भाव स्वस्वामी या त्रिकेतर भावेशों से दृष्ट न हो और त्रिकेशों से दृष्ट हो तो विवाह नहीं होता है।

सप्तम भाव का विचार लग्न व चन्द्र कुण्डली से करना चाहिए। जो इनमें से वली हो, उसी कुण्डली के सप्तम भाव का विचार इस प्रसंग में अभीष्ट है। कहा गया है—

लग्नाद् चन्द्राच्च वीर्याढ्यात्कलत्रं सप्तमं यदि।
स्वेशसौम्येक्षितं युक्तं स्त्रीप्राप्त्यै चान्यथा नहि।।

(जातक रत्न)

वराहमिहिर इस प्रसंग में पंचम भाव का भी विचार करते हैं। पंचम सन्तान स्थान है। सन्तान की प्राप्ति बिना स्त्री प्राप्ति के नहीं हो सकती है। अतः चन्द्र या लग्न से ५, ७ भाव या इनमें से कोई एक भी शुभ भावेशों से दृष्ट युक्त हो तो स्त्री प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं।

लग्नात्पुत्रकलत्रभे शुभपतिप्राप्तेऽथवाऽऽलोकिते।
चन्द्राद् वा यदि सम्पदस्ति हितयोर्ज्ञेयोऽन्यथा सम्भवः॥
(बृहज्जातक)

इसी प्रकार विवाह कारक वृहस्पति एवं शुक्र का भी विचार करना चाहिए। द्वितीय भाव कुटुम्ब भाव है, इसका भी विचार आवश्यक है। अतः इन सबके विचार से पहले विवाह होगा या नहीं? इसका निर्णय कर लेना चाहिए।

शीघ्र विवाह योग :

स्वर्क्षे स्वोच्चे केन्द्रकोणेऽस्तपे
सद्युक्ते दृष्टे सत्वरं स्याद्विवाहः।
योऽस्तेशः स्त्रीकारको योऽभ्रसत्तन्
मध्ये प्राणी तद्दशायां विवाहः॥२॥

स्वर्क्ष इति। अस्तपे=सप्तमेशे, स्वर्क्षे=स्वराशौ, स्वोच्चे=निजतुङ्गे, केन्द्रकोणे=केन्द्रत्रिकोणे तिष्ठति, तया सद्युक्ते दृष्टे=शुभैः सहिते विलोकिते सति तदा, सत्वरं=शीघ्रं, विवाहः पाणिग्रहणं स्यात्।

तथोक्तं भावकुतूहले
"जायाधीशे निजक्षेत्रे निजोच्चे कोणकण्टके।
शुभग्रहैर्युते दृष्टे विवाहः सत्वरं भवेत्॥" इति।

य इति। यो ग्रहः, अस्तेशः=सप्तमभावपतिः, योऽभ्रसद्=ग्रहः, स्त्रीकारकः=विवाहकारकश्च, तन्मध्ये=तयोर्द्वयोर्मध्ये, यो ग्रहः, प्राणी=बली, तद्दशायां=तस्य पाककाले, विवाहः=पाणिग्रहणं स्यादिति शेषः।

यदि सप्तमेश केन्द्र या त्रिकोण में स्वराशि या स्वोच्चराशि या शुभयुक्त दृष्ट हो तो जातक का विवाह शीघ्र होता है।

सप्तमेश एवं विवाह कारक इन-दोनों ग्रहों के मध्य में जो बलवान् ग्रह हो, उसी की दशा में जातक का विवाह होता है।

विवाह समय ज्ञान के विषय में कई सम्प्रदाय प्रचलित हैं। भावप्रकाश का मत ऊपर श्लोक में दिया गया है। अर्थात् सप्तमेश एवं विवाह कारक ग्रह में से बली ग्रह की दशा में विवाह होता है।

एक अन्य मत यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—

'शुक्र व चन्द्रमा से सप्तम स्थान को देखिए। उस भाव की राशितुल्य वर्षों में या सप्तमस्थ ग्रहों की कारकावस्था में विवाह होता है।'

ग्रहों की कारकावस्था पीछे बता चुके हैं। राशि वाली बात हमें नहीं जंचती। कारण राशियां १२ हैं। अधिकतम विवाह वर्ष १२ ही होंगे जो सर्वथा अव्यावहारिक है।

मन्त्रेश्वर ने कुछ सटीक तथ्य इस विषय में बताए हैं—

(i) शुक्र या सप्तमेश जब लग्नेश की नवांश राशि से त्रिकोण में गोचर करें तो विवाह होगा।

(ii) सप्तम भावस्थ ग्रह, सप्तमदृष्टा ग्रह और सप्तमेश की दशा में विवाह होता है।

(iii) लग्नेश जब सप्तम स्थानगत राशि में गोचर करे तो विवाह होता है।

(iv) सप्तमेश की नवांश राशि एवं अधिष्ठित राशि के स्वामी एवं चन्द्र शुक्र में से जो बलवान् हो उसी की दशा में विवाह होगा।

(v) अथवा सप्तमेश की नवांश या राशि से त्रिकोण में जब बृहस्पति जाए तब विवाह होता है।

(देखें फलदीपिका, कलत्रभाव)

विवाह संख्या ज्ञान :

नृणां विवाहाः सबला यदुन्मिताः
स्वपेक्षिताः स्वास्तसमीकगाः खगाः।
तदुन्मिताः स्युर्हरिदश्व चन्दिरा
सुजां बलं तर्कहरिन्नगोन्मितम् ॥३॥

नृणामिति। यदुन्मिताः = यावन्तः, सबलाः = बलसहिताः, स्वाधिष्ठितराशिस्वामि विलोकिताः, खगाः = ग्रहाः, स्वास्तसमीकगाः = द्वितीय-सप्तमाष्टमगताः स्युः

तदुन्मिताः = तावन्तः, नृणां = पुरुषाणां, विवाहाः = उद्वाहाः, भवन्तीति शेषः। तर्कहरिन्नगोन्मितं = षड्-दश-सप्ततुल्यं क्रमेण हरिदश्वचन्दिरासृजां = सूर्य-चन्द्र-भौमानां बलं वेद्य अर्थाद्रवेः षड्रूपाणि, चन्द्रस्य दशरूपाणि, भौमस्य सप्तरूपाणि, अन्येषां षड्रूपाण्येव 'अङ्करूपाधिको बली' इति पद्धत्युक्तेः।

इहाष्टमस्थग्रहमितितुल्यविवाहा नोक्ताः किन्तु सुधासागरकारेणाष्टमस्थग्रहमिति-तुल्यविवाहा उक्ताः, कुटुम्बस्थग्रहमितितुल्यविवाहा नो उक्ताः।

'इहोदयभास्करकारेण तु केवलं सप्तमस्थग्रहमितितुल्यविवाहा उक्ताः' तथा च तद्वचनम्—

"मदनगा विहगाः स्वपतीक्षिताः स्वमितितुल्यविवाहकरा मताः।
इह रवीन्दुकुजाः प्रबलाः क्रमाद्रसदशाश्वमितप्रमदाप्रदाः॥" इति।

द्वितीय, सप्तम एवं अष्टम भाव में जितने बलवान् ग्रह स्थित हों और वे अपने भावेश से दृष्ट हों, उतने ही विवाह होते हैं।

बली ग्रह के निर्णयार्थ सूर्य का ६ रूपा, चन्द्र का १० रूपा, मंगल का ७ रूपा एवं शेष ग्रहों का ६ रूपा बल जानना चाहिए।

विवाह संख्या के विचार में विभिन्न मत हमें प्राप्त होते हैं। अपने भावेश से दृष्ट होने से तात्पर्य है कि जिस राशि में ग्रह हो, उस राशि के स्वामी से दृष्ट होना।

जातकालंकार में सप्तम भावस्थ ग्रह से ही उक्त योग माना है। लेकिन सुधासागर में अष्टम स्थान का भी ग्रहण किया गया है।

यावद्ग्रहा द्यूनगता बलाधिका,
द्यूनेशदृष्टाऽथवाऽष्टमस्थाः ।
यावद्ग्रहाश्चाष्टमपावलोकिता-
स्तावद्विवाहाः पुरुषस्यनिश्चयात्॥
(सुधासागर)

'सप्तम में जितने बली ग्रह हों। अष्टम में बली हों। सप्तमेश से दृष्ट ग्रहों में या अष्टमेश से दृष्ट ग्रहों में जितने बली ग्रह हों, उतने ही विवाह होते हैं।'

जीवनाथ ने बताया है कि अष्टम में जितने ग्रह अष्टमेश से दृष्ट एवं बली हों उतने विवाह होते हैं—

यावन्तो निधने खेटा निजस्वामिसमीक्षिताः।
तावन्तोऽपि विवाहाः स्युः प्राणिनां कथिता बुधैः॥
(भावकुतूहल)

मन्त्रेश्वर ने भी कुछ नई बातें बताई हैं—

(i) शुक्र व चन्द्रमा से सप्तम में मंगल व शनि हों तो स्त्रीहीन हो।

(ii) सप्तम में नपुंसक ग्रह और ग्यारहवें भाव में दो ग्रह हों तो दो स्त्री हों।

(iii) शुक्र व सप्तमेश दोनों ही द्विस्वभाव राशि में या द्विस्वभाव नवांश में हों तो दो स्त्रियां होती हैं।

(iv) सप्तमेश व शुक्र जितने ग्रहों से युक्त हों, उतनी ही स्त्रियां होती हैं।

(देखें, फलदीपिका, कलत्रभाव)

बहुपत्नी योग :

स्त्रियोऽस्तपांशप्रमिता विहङ्गदृक्-
तुल्यास्ततोऽर्थास्तपयोः स्वभस्थयोः।
स्त्रीकारकाः केन्द्रशुभात्मगाः खगा
एको विवाहोऽथविलग्नपे परे ॥४॥
वाङ्गे स्मरे शान्तविभौ किमर्थपे
षष्ठे कलत्रे कलुषे वधूद्वयम्।
सोग्रै स्मरे स्वाङ्गसपत्नपैः किमु
भेन्दू सवीर्यौ सहितौ बहुस्त्रियः ॥५॥

स्त्रिय इति। वेति च। अस्तपांशप्रमिताः=सप्तमेशनवांशसंख्यातुल्याः, अथवा विहङ्गदृक्तुल्याः=सप्तमदर्शिग्रहमितितुल्याः, स्त्रियः=पत्न्यः, स्युरिति शेषः।
तत इति। ततो योगविचारानन्तरं, स्त्रीकारकाः, खगाः=ग्रहाः, केन्द्रशुभात्मगाः=चतुष्टय-नवम-पञ्चमगताः, अर्थास्तपयोः=द्वितीयसप्तमेशयोः, स्वभस्थयोः=स्वराशिस्थितयोः सतोः तदा, एको विवाहः, जातस्येति शेषः।
अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। विलग्नपे=उदयाधिपे, परे=शत्रुभावे षष्ठ इति यावत्। वा=प्रकारान्तरार्थे, शान्तविभौ=अष्टमेशे, अङ्गे=लग्ने, वा स्मरे=सप्तमे। किं=वार्थे, अर्थपे=द्वितीयेशे, षष्ठे, कलुषे=पापग्रहे, कलत्रे=सप्तमे भवति तदैषु त्रिषु योगेषु वधूद्वयं=स्त्रीद्वयं, स्यादिति शेषः।
सोग्रैरिति। स्मरे=सप्तमभावे, सोग्रै=पापसहितैः, स्वाङ्गसपत्नपैः=द्वितीयेश-लग्नेश-षष्ठेशैः सद्भिः, चेत्तदा, बहुस्त्रियः=बहुभार्याः, स्युरिति शेषः।

किम् इति । किम् वार्थे । भेन्दू =शुक्र-चन्द्रौ, सहितौ=मिलितौ, एकराशिगा-विन्यथः । सवीर्यौ =बलसहितौ भवतः, चेत्तदा, बहुस्त्रियः=बहुभार्याः स्युः ।

सप्तमेश जितनी नवांश संख्या में हो, उतने विवाह होते हैं।

सप्तम भाव को जितने ग्रह देखते हों उतने ही विवाह होते हैं।

केन्द्र व त्रिकोण में स्त्रीकारक ग्रह हों और द्वितीयेश व सप्तमेश अपनी राशि में हों तो एक ही विवाह होता है।

लग्नेश षष्ठ में हो तो दो स्त्रियां होती हैं। लग्न या सप्तम में अष्टमेश हो। षष्ठ में द्वितीयेश व सप्तम में पापग्रह हों तो मनुष्य की दो स्त्रियां होती हैं।

सप्तम भाव में पापयुक्त द्वितीयेश हो, साथ ही लग्नेश व षष्ठेश हों। एक राशि में बलवान् चन्द्र व शुक्र हों तो मनुष्य की बहुत-सी स्त्रियां होती हैं।

उक्त नवांश संख्यातुल्य स्त्रियों की संख्या वाला सिद्धान्त सारावली आदि मान्य ग्रन्थों में बताया गया है। तथापि इसकी योग्यता विचारणीय है। आजकल दो पत्नियां रखना अवैध है। वैसे भी बहुविवाह की प्रथा नहीं है। कदाचित् इतनी स्त्रियों से उसके सम्बन्ध हों, यह बात भी सर्वसामान्य है, परन्तु लागू नहीं की जा सकती है। सारावली में बताया गया है कि सप्तम स्थान में चन्द्र, शुक्र, बृहस्पति का नवांश हो तो नवांश संख्यातुल्य स्त्रियां होती हैं। यहां गनीमत है—

भवनाधिपांशतुल्या भवन्ति नार्यो निरीक्षणाद्वापि।
एकैक रविकुजांशे गुरुबुधयोश्चापि यामित्रे ।।
(सारावली ३४.४७)

पृथुयशा भी इसी मत के पोषक हैं। लेकिन उनके मत से सूर्य मंगल का नवांश हो तो एक स्त्री अन्यथा नवांश संख्यातुल्य स्त्रियां होती हैं। संकेत निधि में भी ऐसा ही बताया गया है। लेकिन यह बात आजकल विशेष अर्थ नहीं रखती है। कारण यह है कि आजकल बहुविवाह प्रचलित नहीं है।

स्त्री विनाश योग :

कन्योदये दिनकरेऽनिमिषे शनौ वा
ऽस्तेऽहौ कुजे रुजि मृदौ मरणेऽथधिष्ण्ये।
वाऽब्जे जलेऽधरगते किमु निम्नखेटे
लग्नेऽङ्गपेऽधरमिते वनिताविनाशः ॥६॥

कन्येति। कन्योदये = कन्यालग्ने, दिनकरे = रवौ, अनिमिषे = मीनराशौ, शनौ = सौरौ भवति तदा वनिताविनाशः स्त्रीमरणं 'वनिता जनितात्यर्थानुरागायां च योषिति' इति विश्वः। स्यादिति शेषः।

वेति। वा विकल्पार्थे। अस्ते = सप्तमे, अहौ = राहौ, रुजि = षष्ठे, कुजे = भौमे, मरणे = अष्टमे, मृदौ = शनैश्चरे, भवति तदा वनिताविनाशः स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। धिष्ण्ये = शुक्रे, वा = अथवा, अब्जे = चन्द्रे, जले = चतुर्थे, अधरगते = नीचराशिगते सति तदा वनिताविनाशः स्यात्।

किमु इति। किमु = वार्थे, निम्नखेटे = नीचराशिगतग्रहे, लग्ने = उदये, अङ्गपे = लग्नेशे, अधरमिते = नीचराशिगते सति, तदा वनिताविनाशः स्यात्।

तथोक्तं सुधासागरे
"...अथ नीचग्रहेऽङ्गपे नीचगे स्यात्तथैव।" इति।

कन्या लग्न में जन्म हो, जन्म लग्न में सूर्य एवं मीन राशि में शनि स्थित हो।

षष्ठ स्थान में मंगल, सप्तम में राहु और अष्टम में शनि हो।

चतुर्थ स्थान में नीच राशिगत शुक्र या नीचगत चन्द्रमा हो।

लग्न में नीच राशिगत ग्रह हो और नीच राशि में लग्नेश हो।

इन योगों में स्त्री का नाश होता है।

श्लोकोक्त प्रथम योग वराहमिहिर ने बताया है—

पाथोनोदयगे रवौ रविसुते मीनस्थिते दारहा।
(बृहज्जातक)

किसी भी प्रकार से सप्तम स्थान पर पाप प्रभाव एवं सप्तमेश या कुटुम्बेश की हीन स्थिति अवश्य ही कुटुम्ब में स्त्री सुख का हरण एवं उथल-पुथल करती है। ऐसी स्थिति में स्त्री का सुख नहीं होता है। वैसे सप्तम में पापदृष्ट युक्त शनि सदैव उस भाव का नाश करता है।

यवनाचार्यों के मत से यह सब विचार लग्न एवं चन्द्र दोनों से करना चाहिए—

'मूर्ति च होरां शशिनं च विन्द्यात् ।'

(यवन)

इसी प्रकार ६, ७, ८ में पापग्रह स्थित हों तो भी स्त्री हानि अवश्यंभाविनी होगी।

स्त्री हानि संख्या एवं सुखाभाव :

साच्छौ कलत्रार्थपती त्रिकाश्रितौ
यावद्भिरुग्रैर्द्युचरैर्निरीक्षितौ ।
स्यात्तावतीनां विरतिर्मृगीदृशां
न स्त्रीसुखं भे सखले खलान्तरे ॥७॥

साच्छाविति। साच्छौ=शुक्रसहितौ, कलत्रार्थपती=सप्तमेश-द्वितीयेशौ, त्रिकाश्रितौ=दुःस्थौ, यावद्भिः=यदुन्मितैः, उग्रैः=क्रूरैः, द्युचरैः=ग्रहैः, विलोकितौ सन्तौ, यदि तदा, तावतीनां=तदुन्मितानां, मृगीदृशां=स्त्रीणां, विरतिः=विरामः, विनाश इति यावत्। भवेदिति शेषः।

भावप्रकाशेऽपि

"सशुक्रौ कोशकान्तेशौ त्रिके यावद्भिरीक्षितौ।
तावतीनां कलत्राणां हानिः पापग्रहैर्युतौ॥" इति।

नेति। सखले=पापसहिते, अथवा खलान्तरे=पापयोरन्तरे, भे=शुक्रे, सति तदा स्त्रीसुखं=भार्यासुखं, न स्यादिति शेषः।

यदि सप्तमेश एवं द्वितीयेश ६, ८, १२ में शुक्र से युक्त हों। इस स्थिति में वे जितने पापग्रहों से दृष्ट होंगे, उतनी ही स्त्रियों का नाश होगा।

यदि शुक्र पापग्रह से युक्त हो अथवा पापग्रहों के मध्य में हो तो स्त्री का सुख नहीं होता है।

स्त्री हानि संख्या के उक्त योग का समर्थन कई ग्रन्थों में किया गया है। इस विषय में वराहमिहिर ने बताया है—

(i) शुक्र से ४, ८ भावों में पापग्रह हों या दो पापग्रहों के मध्य में शुक्र हो और वह शुभयुक्तदृष्ट न हो तो इन तीनों योगों में जातक की पत्नी क्रमशः आग से, ऊंचे स्थान से गिरकर और फांसी लगाकर मर जाती है।

इस सन्दर्भ में अधोनिर्दिष्ट कुण्डली विचारणीय है। इनकी पत्नी का देहावसान विवाह के १५ वर्ष बाद बड़े रोग से हुआ था।

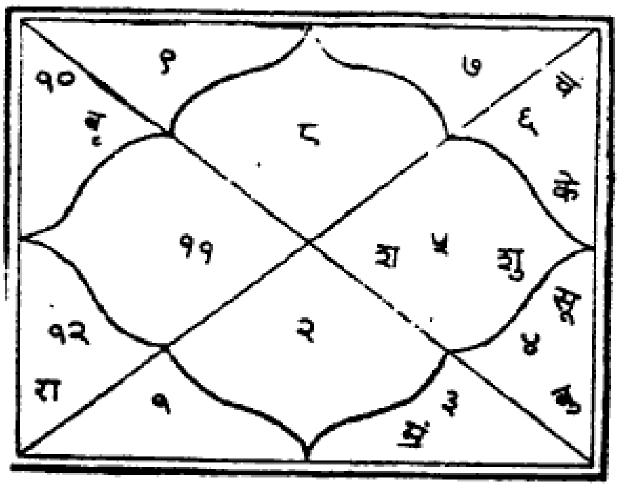

यहां सप्तमेश एवं शुक्र दोनों एक ही हैं। शनि से युक्त है। उस पर किसी भी ग्रह की दृष्टि नहीं है। अष्टम में पापग्रह है।

शुक्र से अष्टम में राहु है। लेकिन बृहस्पति से सप्तम भाव दृष्ट है और गुरु चन्द्रमा से सप्तमेश भी है। अतः कुछ समय तक स्त्री सुख मिला, तदुपरान्त स्त्री हानि हुई।

एक और कुण्डली देखिए। इनकी पत्नी ने ऊंचे स्थान से कूदकर अपने प्राण त्याग दिए थे—

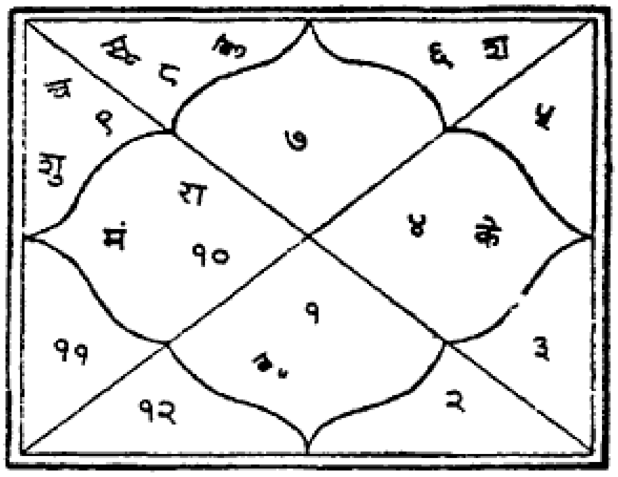

यहां वराहोक्त योगानुसार शुक्र पाप मध्य में है। सप्तमेश पापयुक्त है। चन्द्रमा से सप्तमेश पापयुक्त एवं दृष्ट है।

बांझ पत्नी के योग :

क्रोडासृजौ द्विषि किमम्बुगृहेततोऽर्के
काये कलत्र इनजेऽथ मदेऽर्कमन्दौ।
नेज्येक्षिते दिवि विधौ किमु हेम्नदृष्टे-
ऽस्तेऽब्जेऽरिपे रुजि समन्दरवौ वशा स्त्री ।।८।।

क्रोडेति। द्विषि=षष्ठे, किं वार्थे. अम्बुगृहे=चतुर्थे, क्रोडासृजौ=शनि-भौमौ भवतश्चेत्तदा जातस्य स्त्री=पत्नी, वशा=वन्ध्या 'वशावन्ध्याऽन्नतोकात्वि'-त्यभिधानात् भवेदिति शेषः।

तत इति। ततस्तदनन्तरं, काये=लग्ने, अर्के=रवौ, कलत्रे=सप्तमे, इनजे=शनौ भवति तदा स्त्री वशा भवतीति सर्वत्रानुवृत्तिः।

अथेति। अथानन्तर्यार्थे। मदे=सप्तमे, अर्कमन्दौ=रवि-शनी, दिवि=दशमे, विधौ=चन्द्रे, नेज्येक्षिते=न गुरुविलोकिते सति तदा स्त्री वशा स्यात्।

'एष योग उदयभास्करे किञ्चिद्भिन्न उक्तः' स च यथा—

"तरणिबन्धुरनङ्गतोऽम्बरे विधुरजीवदृशा वृषलीपतिः।" इति।

'तरणिबन्धुः शनिः'।

किमु इति। किमु वार्थे। अस्ते=सप्तमे, अब्जे=चन्द्रे, हेम्नदृष्टे=बुधविलोकिते, रुजि=षष्ठे, समन्दरवौ=शनि-रविसहिते, अरिपे=षष्ठेशे सति तदा जातस्य स्त्री वशा स्यात्।

चतुर्थ या षष्ठ स्थान में शनि एवं मंगल हों।

लग्न में सूर्य एवं सप्तम में शनि स्थित हो। सप्तम भाव में सूर्य व शनि हों एवं दशम में चन्द्रमा पर गुरु की दृष्टि न हो।

सप्तम में बुधदृष्ट चन्द्रमा हो और षष्ठ में शनि, सूर्य एवं षष्ठेश हो तो इन योगों में जातक की पत्नी वन्ध्या होती है।

पत्नीरहित योग :

मदे ज्ञभावथेन्दुतोऽसितासृजौ सभार्गवौ।
स्मरेऽथकोणदारगौ सितारुणौ गताङ्गनः ।।९।।

मद इति। मदे=लग्नात्सप्तमे, ज्ञभौ=बुध-शुक्रौ भवतश्चेत्तदा जातः, गताङ्गनः=जायाविहीनः, स्यादिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"भृगुज्ञौ मदे वा रवौ द्यूनभावे प्रकाशे प्रिया नैव जीवेन्नरस्य।" इति।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। इन्दुतः=चन्द्रात् 'पञ्चम्यास्तसिल्'। स्मरे=सप्तमे, सभार्गवौ=शुक्रसहितौ, असितासृजौ=शनि-भौमौ, यदि तदा, गताङ्गनः= जायाविहीनः स्यात्।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। सितारुणौ=शुक्र-सूर्यौ कोणदारगौ=पञ्चम-नवम-सप्तमगतौ भवतः, चेत्तदा जातः, गताङ्गनः=जायाविहीनः स्यात्।

सप्तम में बुध एवं शुक्र एकत्र स्थित हों। चन्द्र कुण्डली में सप्तम स्थान में शनि व मंगल हों।

पंचम, सप्तम या नवम स्थान में सूर्य व शुक्र हों तो इन योगों में जातक की पत्नी नहीं होती है। अथवा होकर भी नष्ट हो जाती है।

जातक तत्त्व में द्वितीय योग के विषय में कहा गया है कि चन्द्रमा से सप्तम में शनि व मंगल शुक्र से युक्त हों तो व्यक्ति पत्नी रहित होता है।

अल्प कामशक्ति योग :

वक्रर्क्षस्थे भार्गवे तोषकारी
स्यात्कामिन्या नो रतेर्वोदयेशे।
काये काव्ये कामभे किं कुसूनौ
मानि मित्रे सेन्दुमन्दे तथैव॥१०॥

वक्रेति। भार्गवे=शुक्रे 'उशना भार्गवः कविः' इत्यभिधानात्। वक्रर्क्षस्थे=वक्र-ग्रहराशिगते सति, तदा जातो नरः, कामिन्याः=कामवत्याः स्त्रियः, रतेः= सम्भोगाद्धेतोः, तोषकारी=सुखदायी नो स्यात्।

वेति। वा विकल्पार्थे। उदयेशे=लग्नाधिपे, काये=लग्ने, काव्ये=शुक्रे, कामभे=सप्तमे सति तदा जातः, कामिन्याः, रतेः, नो तोषकारी स्यात्।

किमिति। किं वार्थे। कुसूनोः=भौमात्, माने=दशमे, वा मित्रे=चतुर्थे, सेन्दु-मन्दे=चन्द्रयुक्तशनौ भवति चेत्तदा, तथैव=तेनैव प्रकारेण कामिनी तोषदाता न स्यात्।

शुक्र यदि वक्री ग्रह की राशि में स्थित हो। लग्न में लग्नेश एवं सप्तम में शुक्र हो। मंगल जिस राशि में हो, उस राशि से ४, ८ भावों में चन्द्रमा युक्त शनि हो तो इन योगों में पुरुष सम्भोग के समय शीघ्र पतनादि दोषों के कारण अपनी पत्नी को पूर्ण सन्तुष्ट नहीं कर पाता है।

कामेच्छा विचार :

कामाधिक्यं भेऽरिपे भौमयुक्ते
दृष्टे क्रूरैश्चेद्विशेषात्ततो भे।
स्वर्क्षे युग्मे मारवान् मन्दगोगो
कोदण्डाङ्के मानवः स्वल्पकामः ॥११॥

कामेति। अरिपे=षष्ठेशे, भे=शुक्रे, भौमयुक्ते=मङ्गलसहिते सति, तदा जातस्य, कामाधिक्यं=कामप्राचुर्य्यम् स्यादिति शेषः। चेद्यदि तस्मिन् (शुक्रे) क्रूरैः=पापैः, दृष्टे=विलोकिते सति तदा विशेषात् कामाधिक्यं स्यात्।

तत इति। ततस्तदनन्तरं, भे=शुक्रे, स्वर्क्षे=स्वराशौ वृषे तुलायां वेत्यर्थः। युग्मे=मिथुने वा सति तदा, मारवान्=कामवान्, स्यादिति शेषः।

मन्दग इति। गोकोदण्डाङ्के=वृष-धनुषोरन्यतरे लग्ने, मन्दगः=शनिर्भवति चेत्तदा जातः, मानवः=पुरुषः, स्वल्पकामः स्यादिति शेषः।

लग्न से षष्ठ स्थान में यदि शुक्र की राशि हो और षष्ठ में मंगल हो और विशेषतया पापदृष्ट हो तो मनुष्य अधिक कामी होता है।

यदि शुक्र अपनी राशि या मिथुन राशि में स्थित हो तो मनुष्य कामवान् होता है।

लग्न में धनु या वृषभ में शनि हो तो मनुष्य कम कामेच्छा वाला होता है।

गुदगामी या व्यभिचारी योग :

स्यात्पुंश्चलो मृत्युमदाम्बरस्थौ
भज्ञौ किमाज्ञास्तगतौ कुजाच्छौ।
किं वक्रशुक्रौ हितकर्म्मयातौ
वाकौं विधोर्व्योम्नितत्तोऽम्बुभे ॥१२॥

स्यादिति। भज्ञौ=शुक्र-बुधौ, मृत्युमदाम्बरस्थौ=अष्टम-सप्तम-दशमस्थितो यदि तदा जातः पुंश्चलः=व्यभिचारी गुदमैथुनभाग्वा स्यात्।

किमिति। किं वार्थे। कुजाच्छौ=भौम-शुक्रौ, आज्ञास्तगतौ=दशम-सप्तमगौ यदि तदा जातः, पुंश्चलः स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

किमिति। किं वार्थे। वक्रशुक्रौ=भौम-भार्गवौ, हितकर्म्मयातौ=चतुर्थ-दशम-गतौ, यदि तदा जातः, पुंश्चलः स्यात्।

वेति। वा प्रकारान्तरार्थे। विधोः=चन्द्रात्, व्योम्नि=दशमे, आर्कौ=शनैश्चरे ततः=तस्मात् (शनितः) अम्बुभे=चतुर्थे, भे=शुक्रे सति तदा जातः, पुंश्चलः स्यात्।

सप्तम, अष्टम या दशम में बुध शुक्र एकत्र हों।

सप्तम या दशम में मंगल शुक्र इकट्ठे हों। चतुर्थ और दशम मंगल और शुक्र हों।

चन्द्रमा से दशम में शनि हो और उससे चतुर्थ में शुक्र हो तो उक्त योगों में व्यक्ति गुदा मैथुन करने वाला या व्यभिचारी होता है।

वाऽच्छेस्वभे ज्ञार्किसिता मदे पदे
तद्वत्सपापौ द्रविणारिमारगौ।
जीवासुरेज्यावुत वैरिपे त्रिके
यद्वाऽम्बरे स्वास्पददर्पपैस्तथा ॥१३॥

वेति। वा=प्रकारान्तरार्थे। अच्छे=शुक्रे, स्वभे=स्वराशौ, वृषे-तुलायां वेत्यर्थः। ज्ञार्किसिताः=बुध-शनि-शुक्राः, मदे=सप्तमे, पदे=दशमे चेत्स्युः, तदा तद्वत् तेनैव प्रकारेण पुंश्चलः स्यात्।

सपापाविति। सपापौ=पापसहितौ, जीवासुरेज्यौ=गुरुशुक्रौ, द्रविणारिमारगौ=द्वितीय-षष्ठ-सप्तमगतौ यदि तदा जातः, पुंश्चलः स्यात्।

उतेति। उत=वार्थे। वैरिपे=षष्ठेशे, त्रिके=दुःस्थे सति तदा जातः पुंश्चलः स्यात्।

यद्वेति। यद्वा=वार्थे। अम्बरे=दशमे, स्वास्पददर्पपैः=धनेश-दशमेश-सप्तमेशैः सद्भिः, चेत्तदा जातः, तथा तेन प्रकारेण पुंश्चलः स्यात्।

वृष या तुला में शुक्र स्थित हो एवं ७, १० में बुध, शुक्र, शनि हों। द्वितीय, षष्ठ, सप्तम में पापयुक्त गुरु और शुक्र हों। षष्ठेश ६, ८, १२ भावों में गया हो।

धनेश दशम स्थान में सप्तमेश एवं दशमेश से युक्त हो। इन योगों में मनुष्य व्यभिचारी होता है।

व्यभिचार योग :

कामेशि कायेऽस्तमये ततोऽनुजे
तुर्य्ये कुटुम्बेशि तथा च विक्रमी।
पङ्केक्षिताः साघवधाध्ववैरिपाः
क्वाप्यङ्गना नुः परगां प्रकुर्व्वते ॥१४॥

कामेशीति। कामेशि = सप्तमेशे काये = लग्ने, अस्तमये = सप्तमे वा भवति तदा जातः, पुंश्चलः स्यात्।

तथोक्तं सुधासागरे

"धनेशे सहजे तुर्ये विक्रमे व्यभिचारवान्" इति।

पङ्केति। साघवधाध्ववैरिपाः = पापयुक्ताष्टमेश-नवमेशषष्ठेशाः पङ्केक्षिताः = पङ्कैः पापैः इति कोशात्। ईक्षिताः = विलोकिताः क्वापि = यत्र कुत्रापि स्थिताः नुः = पुरुषस्य, अङ्गनां = स्त्रीम्, परगाम् = परपुरुषगामिनीं, प्रकुर्वते = विदधते।

लग्न या सप्तम में सप्तमेश स्थित हो तो मनुष्य व्यभिचारी होता है।

तृतीय या चतुर्थ में द्वितीयेश हो तो भी मनुष्य व्यभिचारी होता है। साथ ही वह अति पराक्रमी भी होता है।

षष्ठेश, अष्टमेश व नवमेश किसी भी स्थान में एकत्र हों और उन पर पापग्रहों की दृष्टि या योग हो तो ऐसे योग में जातक की पत्नी परपुरुषगामिनी होती है।

नपुंसक योग :

समौजभस्थौ भपभास्करौ मिथः
प्रपश्यतो वार्किबुधौ तथा क्रमात्।
अयुग्मभस्थोऽत्र इनं समर्क्षगं
विलोकयेद्वौजभगौ तनूविधू ॥१५॥
कुसूनुना युग्मभगेन लोकितौ
किमिन्दुचान्द्री समभौजभाश्रितौ।
धराजदृष्टौ किमयुग्मभागगै-
र्भपाङ्गभैरेषु नपुंसको नरः ॥१६॥

समेति । कुसूनुनेति च । भपभास्करौ = चन्द्र-सूर्यौ, क्रमात् = परिपाट्या:, समौज भस्थौ = युग्मायुग्मराशिस्थितौ सन्तौ, मिथ: = अन्योन्यं, प्रपश्यत: = विलोकयत:, चेत्तदा जात:, नर: = पुरुष:, नपुंसक: = पुंसत्वरहित:, भवेदिति शेष:।

वेति । वा = प्रकारान्तरार्थे । तथा = तेन = प्रकारेण, आर्किबुधौ = शनि-चान्द्री क्रमात् = परिपाट्या:, समौजभस्थौ = युग्मायुग्मराशिस्थितौ सन्तौ, मिथ: = अन्योन्यं प्रपश्यत: = विलोकयत:, चेत्तदा जात:, नपुंसको भवतीति सर्वत्रानुवृत्ति: ।

तथा च भगवान्बादरायण:

"इन्दुजरविजौ वा तथैव नपुंसकं कुरुत:" इति ॥

अयुग्मेति । अयुग्मभस्थ: = विषमराशिस्थित:, अस्र: = भौम:, समर्क्षगं = समराशिगतं, इनं = सूर्यं 'इन: पत्यौ नृपार्कयो:' इति मेदिनी । विलोकयेत् = पश्येत्, यदि तदा नपुंसको भवति ।

तथा च भगवान्बादरायण:

"वक्रो विषमे सूर्य: समगश्चैवं परस्परालोकात्" इति ।

वेति । वा = प्रकारान्तरार्थे । तनूविधू = लग्न-चन्द्रौ, ओजभगौ = विषमराशिगतौ, युग्मभगेन = समराशिगतेन, कुसूनुना = भौमेन, लोकितौ = वीक्षितौ सन्तौ, यदि तदा, नपुंसको भवति ।

तथा च भगवान्बादरायण:

"विषमर्क्षे लग्नेन्दू समराशिगत: कुजोऽवलोकयति" इति ॥

किमिति । किं वार्थे । इन्दुचान्द्री = चन्द्र-बुधौ, क्रमात् = परिपाट्या:, समौजभाश्रितौ = समविषमराशिगतौ, धराजदृष्टौ = भौमावलोकितौ सन्तौ, चेत्तदा नपुंसको भवति ।

तथा च भगवान्बादरायण:

"बुधचन्द्रौ कुजदृष्टौ विषमर्क्षसमर्क्षगौ तथैवोक्तौ" इति ।

किमिति । किं वार्थे । भपाङ्गभै: = चन्द्र-लग्न-शुक्रै:, अयुग्मभागगै: = विषमांशकगतै: सद्भि:, चेत्तदा, नपुंसको भवति ।

तथा च भगवान्बादरायण:

"ओजनवांशकसंस्था लग्नेन्दुसितास्तथैवोक्ता:" इति ॥

समराशि में चन्द्रमा और विषमराशि में सूर्य हो और वे परस्पर देखते हों ।

समराशि में शनि तथा विषमराशि में बुध हो और वे परस्पर दृष्टि रखते हों ।

समराशिगत सूर्य को विषमराशिगत मंगल देखता हो।

लग्न व चन्द्रमा विषमराशियों में हों और समराशिगत मंगल इन्हें देखे।

समराशि में चन्द्रमा और विषमराशि में बुध हो और उन्हें मंगल देखता हो।

विषमराशि के नवांश में चन्द्रमा, लग्न एवं शुक्र हों।

इन छः योगों में उत्पन्न मनुष्य नपुंसक होता है।

ये योग ज्योतिष ग्रन्थों में बहुत्र बताए गए हैं। बादरायण के नाम से इनके स्वल्पान्तर से युक्त पाठ, भट्टोत्पली (बृहज्जातक), सारावली आदि ग्रन्थों में मिलते हैं। इनका संग्रह एवं विशेष व्याख्या हमने अपनी **'प्रश्नविद्या बोधक्षमा'** में की है। लेकिन सम-विषम राशि में स्थित ग्रह परस्पर पूर्ण दृष्टि से देखें, यह सम्भव नहीं है। पाद दृष्टि से योग बने तो प्रभाव में कमी रहेगी। ऐसी स्थिति में कदाचित् एक ग्रह पूर्ण दृष्टि से देखे और दूसरा पाद दृष्टि से, ऐसा भी सम्भव नहीं है, अतः प्रथम दो योगों में अस्पष्टता बनी रहती है। प्रकृत ग्रन्थोक्त आशय प्रायः सभी मान्य ग्रन्थों की टीकाओं से निकलता है। इनका विचार गर्भाधान के समय विशेषतया किया जाता है। स्त्री व पुरुष जन्म योग न हों तभी नपुंसक जन्म योग का विचार करना चाहिए। ऐसा गुणाकर ने कहा है—

बलाबलं विलोक्यैषां ग्रहाणां योगकारिणाम्।
स्त्रीपुंसोनिर्णयः क्लीवयोगास्तु तद्सम्भवात्॥
(होरा मकरन्द)

अन्य नपुंसक योग :

सौरौ सभे व्योम्नि तथाऽथमाद्व्यय-
रुग्गे यमे वा भयमौ विनाशगौ।
नो चारुदृष्टौ किमु नीचगे व्यये
शत्रौ शनौ षण्ड उतेह तादृशः॥१७॥

सौराविति। सभे = शुक्रसहिते, सौरौ = शनौ, व्योम्नि = दशमे सति तदा तथा = तेन प्रकारेण नपुंसको भवति।

अथेति। अथ=नपुंसकयोगविचारानन्तरं, भात्=शुक्रात्, शुक्राधिष्ठितराशेः सकाशादित्यर्थः व्ययरुग्गे=द्वादश-षष्ठगते, यमे=शनौ यदि तदा, षण्ठ उत तादृशः स्यादिति शेषः।

'एष योगस्तु सुधासागरे किञ्चिद्भिन्न उक्तः' तथा तद्वचनम्—

"भृगो रन्ध्ररिप्वोः शनौ षण्ढवद्वा।" इति।

वेति। वा विकल्पार्थे। भयमौ=शुक्र-शनी, विनाशगौ=अष्टमगतौ, नो चारु-दृष्टौ=न शुभावलोकितौ, यदि तदा, षण्ढ उत तादृशः स्यात्।

किमु इति। किमु वार्थे। शनौ=सौरौ, नीचगे=निजनीचराशिगते मेषगत इत्यर्थः। व्यये=द्वादशे, शनौ=षष्ठे वा भवति तदेह, षण्ढः=नपुंसः, उत वार्थे। तादृशः=रूपेण नपुंससदृशः, नतु नपुंसः, भवेदिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"तथा षष्ठरिःफे शनौ नीचगे वा।" इति।

दशम स्थान में शुक्र व शनि हों। शुक्र से अधिष्ठित राशि से षष्ठ या द्वादश भाव में शनि हो।

अष्टम में शुक्र एवं शनि हों और उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो।

व्यय में या षष्ठ भाव में मेष राशिगत शनि हो।

इन सब योगों में उत्पन्न व्यक्ति नपुंसक या नपुंसक के समान आकार वाला होता है।

पीछे श्लोक सात की व्याख्या में स्त्री सुखाभाव के प्रसंग में वृश्चिक लग्न वाली कुण्डली देखिए। वहां दशम स्थान में शुक्र व शनि एकत्र हैं। इनके तीन बच्चे हैं। व्यक्तित्व भी ठीक है। सज्जन पुरुष हैं। अलबत्ता कामेच्छा प्रबल है। अतः उक्त फल नहीं हुआ। योगों का विचार करते समय अधिक योग होने पर ही सम्पूर्ण फल कहना चाहिए।

स्त्री का विशेष विचार :

पौरेन्दुतः प्राणिन उद्गमालये
पश्येत्कलत्राङ्गशुभाशुभं कृती।
पत्युश्च सौभाग्यसुखं वधूगृहे
वैधव्यमायुर्भवने सुतं सुते॥१८॥

पौरेन्दुत इति। पौरेन्दुत:=लग्नचन्द्रयो:, प्राणिन:=बलिन:, उद्गमालये=प्रथम-भवने, कलत्राङ्गशुभाशुभं=स्त्रिया: शरीरस्येष्टानिष्टं फलं, कृती=विद्वान्, हौरिक इति यावत्। पश्येत्=विलोकयेत्। तस्मात्प्रथमभवनात्, वधूगृहे=सप्तमस्थाने, पत्यु=भर्त्तु:, सौभाग्यं सुष्ठु भग: (माहात्म्यादि) यस्य स तथा। सुभगस्य भाव: सौभाग्यं सुदैवं सुखं च कृती पश्येदिति सर्वत्रानुवृत्ति:। आयुर्भवने=अष्टमस्थाने, वैधव्यं=विधवाया: भावस्तत्तथा। भर्त्तुर्वियोगमित्यर्थ:। कृती पश्येत्। सुते=पञ्चमे, सुत=पुत्रं कृती पश्येत्।

ग्रन्थान्तरेऽपि

"वैधव्यं निधनगृहे पतिसौभाग्यं सुखं च जामित्रे।
सौन्दर्यं लग्नगृहे विलोकयेत्पुत्रसम्पदां नवमे॥
एषु स्थानेषु युवत्य: सौम्या: शुभदा बलान्विता ज्ञेया:।
क्रूरास्तु नेष्टफलदा भवनेशविवर्जिता: सदा चिन्त्यम्॥" इति।

लग्न एवं चन्द्रमा, इन दोनों में से जो अधिक बलवान् हो उसी से स्त्री के शरीर सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य का विचार करना चाहिए।

पुरुष की कुण्डली में सप्तम स्थान में पत्नी का सुख एवं स्त्री की कुण्डली में पति का सुख देखना चाहिए।

पंचम स्थान में सन्तान एवं अष्टम स्थान में दम्पत्ति की मृत्यु का विचार करना चाहिए।

यह विचार स्त्री की कुण्डली में करना चाहिए, ऐसा मत स्पष्टतया कल्याण वर्मा ने प्रकट किया है—

वैधव्यं निधने चिन्त्यं शरीरं जन्मलग्नत:।
सप्तमे पतिसौभाग्यं पंचमे प्रसवस्तथा॥
(सारावली, स्त्रीजातक)

ग्रन्थकार ने यहां ऐसे प्रसंग में इस श्लोक को लिखा है जिससे भ्रम होता है कि ये बातें पुरुष की कुण्डली में देखनी हैं या स्त्री की। हमारे विचार से दोनों की ही कुण्डली में सप्तम भाव विपरीत लिंगी का होगा और अष्टम भाव उसका मारक। अत: पुरुष के अष्टम भाव से विधुरता एवं स्त्री के अष्टम भाव से वैधव्य का विचार करना चाहिए। सप्तम स्थान से दम्पत्ति की स्थिति, सम्पदा, वैभव का पता लगेगा। यही बात वराहमिहिर ने भी कही है। कुछ विधवा योग यहां बताए जा रहे हैं—

(i) पापग्रह से दृष्ट पापग्रह अष्टम में हो और शेष ग्रह चाहे उच्च राशि में भी क्यों न हों तो विधवा होती है।

(ii) अष्टमेश की नवांश राशि का स्वामी यदि पापग्रह हो तो स्त्री विधवा होती है। यदि अष्टम में शुभग्रह हो तो पति से पहले मृत्यु हो। यह सब स्त्री की कुण्डली में देखना चाहिए।

(iii) लग्न से सप्तम में सब पापग्रह हों।

(iv) चन्द्रमा से सप्तम में पापग्रह हों तो इन दोनों योगों में भी स्त्री विधवा होती है।

॥ इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणयरचनायां जायाभावाध्यायो नवमः ॥

[१०]

आयुर्भावाध्याय:

आयु का विशेष कारकत्व :

आयुर्व्यापारपौराणां नायकैः सन्निमूर्त्तिजैः ।
आयुर्दायमनिष्टस्य हेतुञ्चात्र विचिन्तयेत् ॥१॥

आयुरिति । सन्निमूर्त्तिजैः=शनिसहितैः, आयुर्व्यापारपौराणां=अष्टम-दशम-लग्नानां, नायकैः=स्वामिभिः, अत्रास्मिन्नध्याये, आयुर्दायं=जीवितकालं । अनिष्टस्य=दुःखस्य, हेतुं=कारणं च 'हेतुर्ना कारणं बीजं' इत्यभिधानात् । विचिन्तयेत्=विचारयेत्, हौरिक इति शेषः ।

तथा च जातकपारिजाते

"आयुर्दायमनिष्टहेतुमुदयव्योमायुरीशार्कजैः ।" इति ।

लग्न, अष्टम, दशम स्थानों के स्वामियों से एवं शनि से विद्वान् दैवज्ञ को आयुर्दाय एवं दुःख या अनिष्ट के कारण का विचार करना चाहिए ।

दीर्घायुर्योग :

केन्द्रत्रिकोणभवगैर्मृतिमूर्त्तिखेशै-
र्दीर्घं पदे धरणिजे धिषणे त्रिकोणे ।
सोमे सुतेऽथ सुकृते वधपे भवे वा
मन्दे क्षयेऽथ निजभेनिधनेशि दीर्घम् ॥२॥

केन्द्रेति मृतिमूर्त्तिखेशैः=अष्टम-लग्न-दशमभावाधिपैः, केन्द्रत्रिकोणभवगैः=केन्द्रत्रिकोणलाभगतैः सद्भिः, चेत्तदा, दीर्घं=विपुलं, आयुः स्यादिति शेषः ।

जातकपारिजातेऽपि

"व्यापारोदयरन्ध्रराशिपतयः केन्द्रत्रिकोणायगा दीर्घायुः ।" इति ।

पद इति । धरणिजे=भौमे, पदे=दशमे, धिषणे=जीवे, त्रिकोणे=पञ्चमे नवमे वा, सोमे=चन्द्रे, सुते=पञ्चमे सति तदा दीर्घमायुः स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः ।

तथोक्तं सुधासागरे

"दीर्घायुर्मनुजो भवेत्सुतगते चन्द्रे गुरौ कोणगे खे भौमे।" इति।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। वधपे=अष्टमाधिपे, सुकृते=शुभग्रहे, भवे=एकादशे सति तदा दीर्घायुः स्यात्।

वेति। वा विकल्पार्थे। मन्दे=शनैश्चरे, क्षये=अष्टमे सति तदा दीर्घायुः स्यात्।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। निधनेशि=अष्टमेशे, निजभे=अष्टमराशिगते सति तदा दीर्घायुः स्यात्।

लग्नेश, अष्टमेश व दशमेश केन्द्र या त्रिकोण या एकादश स्थान में स्थित हों।

दशम स्थान में मंगल, पंचम में चन्द्रमा एवं त्रिकोण में बृहस्पति स्थित हो।

यदि अष्टमेश शुभग्रह होकर एकादश स्थान में स्थित हो।

अष्टम में शनि हो। अष्टम में ही अष्टमेश हो।

इन योगों में मनुष्य की आयु लम्बी होती है।

लग्नेश, अष्टमेशादि की केन्द्र त्रिकोण स्थिति या प्राप्ति स्थान में स्थिति आयुवितान को बढ़ाती है। हजारों आयुर्योग, आयु विचार, विविध प्रकारों से आयु का स्पष्टीकरण आदि विषय हमने **'आयुर्निर्णय, अभिनव भाष्य'** में सोपपत्तिक सोदाहरण बताए हैं। अतः पिष्टपेषण में प्रवृत्त न होकर समासमार्ग से बता रहे हैं। लग्नेश, चन्द्रमा, चन्द्रराशीश, लग्न ये चारों बलवान् हों। केन्द्र, त्रिकोण, अष्टम, द्वादश में पापग्रह न हो, ये सब बातें आयु बढ़ाती हैं। इसके विपरीत आयु घटती है।

अष्टमेश एकादश में स्थित हो तो ग्रन्थकार ने सामान्यतः दीर्घायुर्योग मान लिया है, लेकिन कहा गया है कि अष्टमेश शुभग्रह हो और एकादश में हो तो लम्बी आयु देता है। ऐसे व्यक्ति का बचपन कष्ट में एवं वृद्धावस्था सुखी बीतती है। इसके विपरीत पापी अष्टमेश एकादश में हो तो अल्पायु देता है। यदि उक्त पापी अष्टमेश शुभग्रह से युक्त हो तो लम्बी आयु देता है—

भवतिशैशवदुष्टकृदष्टपो यदि शुभो विहगो विरतौ सुखी।
यदि खलो लघुजीवनकृत्तथा शुभयुतो बहुजीवनदः स्मृतः॥

(उदयभास्कर)

कायुःकरस्थैः सकलैर्विहङ्गै-
र्दीर्घायुरोजःसहितेऽङ्गकान्ते ।
संवीक्षिते कण्टकगैः सुखेटैः
स्याद्दीर्घमायुः कमलासमेतम् ।।३।।

केति । सकलैः = समस्तैः, विहङ्गैः = ग्रहैः, कायुःकरस्थैः = चतुर्थाष्टम-तृतीयस्थैः सद्भिः, दीर्घायुः स्यादिति शेषः ।

ओज इति । ओजःसहिते = षड्बलयुक्ते, अङ्गकान्ते = लग्नेशे, कण्टकगैः = केन्द्रगतैः, सुखेटैः = शुभग्रहैः, संवीक्षिते = विलोकिते सति तदा, कमलासमेतं = लक्ष्मीयुतं दीर्घं = विपुलं, आयुः = जीवनकालः स्यात् ।

तृतीय, चतुर्थ व अष्टम में सभी ग्रह हों तो दीर्घायु होती है ।

यदि बलवान् लग्नेश, केन्द्रगत शुभग्रहों से दृष्ट हो तो जातक धनधान्य से परिपूर्ण एवं दीर्घायु होता है ।

मध्यायुर्योग :

पापैर्भवार्थमतिमित्रवधानुजस्थै-
र्वार्घैर्विधोर्वधगतैर्दिवसे जनिर्वा ।
पौरप्रभौगतबले दुरिते त्रिकस्थे
केन्द्रे मतौ तपसि धीमति मध्यमायुः ।।४।।

पापैरिति । पापैः = क्षीणचन्द्र-सपापबुध-रवि-मङ्गल-मन्दैः, भवार्थमतिमित्र वधानुजस्थैः = एकादश-द्वितीय-पञ्चम-चतुर्थाष्टम-तृतीयस्थितैः, सद्भिः, चेत्तदा, मध्यमायुः स्यादिति शेषः ।

वेति । वा विकल्पार्थे । विधोः = चन्द्राक्रान्तराशेः सकाशात्, वधगतैः = अष्टमोपयातैः, अर्घैः = क्रूरग्रहैः सद्भिः, दिवसे = दिवा जनिः, चेत्तदा मध्यमायुः स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः ।

वेति । वा विकल्पार्थे । गतबले = वीर्य्यहीने, पौरप्रभौ = लग्नेशे, दुरिते = क्रूरग्रहे, त्रिकस्थे = दुष्टगते, धीमति = जीवे, केन्द्रे = चतुष्टये, मतौ = पञ्चमे, तपसि = नवमे, तदा जातस्य मध्यमायुः स्यात् ।

तथोक्तं सुधासागरे

"वाङ्गपे निर्बले जीवे केन्द्रकोणे त्रिके खले ।" इति ।

यदि द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, अष्टम व एकादश में पापग्रह हों।

दिन का जन्म हो और चन्द्रमा से अष्टम भाव में पापग्रह स्थित हो।

लग्नेश निर्बल हो। साथ ही त्रिक में पापग्रह हों और केन्द्र में या त्रिकोण में बृहस्पति हो।

इन सब योगों में मनुष्य की मध्यायु होती है।

अल्पायु ३६ वर्ष, मध्यायु ७२ वर्ष एवं दीर्घायु १०८ वर्ष यह एक मत है सामान्यत: ३०, ६०, ९० ये क्रमश: अल्प, मध्य व दीर्घायु की अधिकतम सीमा होनी चाहिए।

अल्पायुर्योग :

आपोक्लिमेऽघखरचरैरुत सोग्ररन्ध्र-
नाथे व्यये द्विषि किमङ्गपयुग्वधेशः।
रिःफारिगः किमसदायुरधीश आये
यद्वाऽत्यये प्रथमपे जननेऽल्पमायुः॥५॥

आपोक्लिम इति। आपोक्लिमे=तृतीय-षष्ठ-नवम-द्वादशे, अघखचरैः=क्रूरग्रहैः सद्भिः, चेत्तदा, अल्पं=कृशं, आयुः=जीवनकालः स्यात्।

उतेति। उत=वार्थे। सोग्ररन्ध्रनाथे=पापयुक्ताष्टमेशे, व्यये=द्वादशे, द्विषि=षष्ठे सति तदा, अल्पायुः स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

किमिति। किं वार्थे। अङ्गपयुग्वधेशः=लग्नेशयुक्ताष्टमेशः, रिःफारिग=द्वादश-षष्ठगतः, यदि तदा, अल्पायुः स्यात्।

किमिति। किं वार्थे। असदायुरधीशे=पापग्रहाष्टमेशे, आये=एकादशे भवति, तदा जातस्य, अल्पायुः स्यात्।

यद्वेति। यद्वा विकल्पार्थे। यदि जनने=जन्मसमये, प्रथमपे=लग्नाधिपे, अत्यये=मृत्युभावे भवति, तदा जातस्य, अल्पायुः स्यात्।

यदि आपोक्लिम स्थानों (३, ६, ९, १२) में पापग्रह हों।

पापयुक्त अष्टमेश ६, ८ भावों में स्थित हो।

लग्नेश से युक्त अष्टमेश ६, ८ भावों में गया हो।

पापी अष्टमेश लाभ स्थान में स्थित हो। लग्नेश अष्टम में गया हो तो इन सब योगों में जातक की अल्पायु होती है।

हीनायुर्योग :

कायागारे काव्यजीवावघारौ
सन्ताने वा सार्कलग्ने जनीशः।
दृष्टोपेतो निर्मलाघैरनायु-
र्वाच्यं केन्द्रे द्वादशे वासवेज्ये ॥६॥
सोग्राङ्गेशे धैर्य्यधर्म्मारिगे वा
कर्काङ्गे ग्लौमङ्गलौ केन्द्रयाम्यम्।
खेटैरूनं रामवर्षं मृतीश
आद्येऽङ्गेशे मृत्युगेऽक्षाब्दमायुः ॥७॥

कायेति। काव्यजीवौ=शुक्र-गुरू, कायागारे=लग्ने, अघारौ=पाप-भौमौ, सन्ताने=पञ्चमे सति तदा, अनायुः=अल्पायु: वाच्यम्=कथनीयं, बुधैरिति शेषः।

वेति। वा विकल्पार्थे। जनीशः=जन्मचन्द्रराशिस्वामी, निर्मलाघैः=शुभाशुभैः, दृष्टोपेतः=अवलोकितयुक्तः, सार्कलग्ने=सूर्ययुक्तलग्ने, तिष्ठति, यदि तदा, अनायुर्वाच्यम्।

केन्द्र इति। वासवेज्ये=जीवे, केन्द्रे=चतुष्टये, द्वादशे=व्यये वा, सोग्राङ्गेशे=पापयुक्तलग्नेशे, धैर्य्यधर्मारिगे=तृतीय-नवम-षष्ठगते, रामवर्ष=त्रिवर्षं, आयुः स्यात्।

वेति। वा विकल्पार्थे, कर्काङ्गे=कर्कलग्ने, ग्लौमङ्गलौ=चन्द्रमङ्गलौ केन्द्र-याम्यं=केन्द्रा-ष्टमं, खेटैः=ग्रहैः, ऊनं=वर्जितं, चेत्तदा, रामवर्ष=त्रिवर्षं आयु स्यात्।

तथोक्तं गणेशेन

"····कर्कलग्ने कुजतुहिनकरौ केन्द्ररन्ध्रं ग्रहोनम्। रामाब्दं स्यात्।" इति।

मृतीश इति। मृतीशे=अष्टमाधिपे, आद्ये=लग्ने 'तनुरुदयवपुःकल्पमाद्यं' इति गणेशोक्तेः। अङ्गेशे=लग्नाधिपे, मृत्युगे=अष्टमस्थानगते सति तदा, अक्षाब्दं=पञ्चवर्ष, आयुः=जीवितकालः स्यादिति शेषः।

लग्न में शुक्र व बृहस्पति स्थित हो और पंचम में मंगल और पापग्रह हों।

लग्न में ही सूर्य एवं चन्द्रराशीश हो और उस पर शुभाशुभ मिश्रित ग्रहों की दृष्टि या योग हो।

इन योगों में जातक अनायु अर्थात् आयुरहित होता है।

केन्द्र या व्यय में बृहस्पति स्थित हो और तृतीय, षष्ठ या नवम में पापग्रह से युक्त लग्नेश हो।

कर्क लग्न में मंगल एवं चन्द्रमा हो और केन्द्र व अष्टम स्थान खाली हों तो इन योगों में जातक की आयु तीन वर्ष होती है।

लग्न में अष्टमेश हो और अष्टम में लग्नेश हो तो पांच वर्ष की आयु होती है।

इन योगों का आधार जातकालंकार शुकसूत्र है। विशेष अध्ययनार्थ हमारा जातकालंकार शुकसूत्र देखें।

बीस वर्ष की आयु के योग :

आद्याधीशे सद्युतेऽङ्गेऽत्ययेशे
छिद्रे नान्यैर्वीक्षिते वा जडांशौ।
क्षीणे क्रूरे छिद्रगे छिद्रनाथे
केन्द्रे वीतौजोऽङ्गपे वा शनीनौ॥८॥

केन्द्रे कल्पे काश्यपीजे किमुग्रौ
भोगीन्दूनौ नैधनान्त्यार्थगौ वा।
पाङ्गूखेशौ शावकायुर्गृहस्थौ
सौम्यैः षट्त्र्यङ्कान्त्यगैः खाश्विवर्षम्॥९॥

आद्येति। केन्द्र इति च। सद्युते=शुभग्रहयुक्ते, आद्याधीशे=लग्नाधिपे, अङ्गे=लग्ने, अत्ययेशे=अष्टमाधिपे, छिद्रे=अष्टमे, अन्यैः=शेषग्रहैः, न वीक्षिते नावलोकिते सति, तदा खाश्विवर्षं=विंशत्यब्दं, आयुः स्यादित्यनुषङ्गः।

वेति। वा विकल्पार्थे। क्षीणे=कृशेऽर्द्धोन इति यावत्। जडांशौ=चन्द्रे, क्रूरे=पापग्रहे, छिद्रगे=अष्टमगते, छिद्रनाथे=अष्टमेशे, केन्द्रे=चतुष्टये, वीतौजो-ऽङ्गपे=बलवर्जितलग्नेशे सति तदा खाश्विवर्षमायुः स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

वेति। वा विकल्पार्थे। शनीनौ=सौरि-सूर्यौ, केन्द्रे=चतुष्टये, काश्यपीजे=भौमे कल्पे=लग्ने सति, तदा खाश्विवर्षं, आयुः स्यात्।

किमिति। किं वार्थे। भोगीन्दूनौ=राहु-चन्द्ररहितौ, उग्रौ=क्रूरग्रहौ, नैधनान्त्या-र्थगौ=अष्टम-द्वादश-द्वितीयगतौ यदि तदा खाश्विवर्षं, आयुः स्यात्।

पडिग्वति । पङ्गूषेशौ=शनि-चन्द्रौ, शात्रवायुर्गृहस्थौ=षष्ठा-ष्टमस्थितौ, सौम्यैः=शुभग्रहैः, षट्त्र्यङ्कान्त्यगैः=षष्ठ-तृतीय-नवम-द्वादशगतैः सद्भिः, तदा, खाश्विवर्ष, आयु स्यात् ।

लग्न में शुभग्रह से युक्त लग्नेश हो एवं अष्टमेश अष्टम स्थान में किसी भी ग्रह से दृष्ट न हो ।

चन्द्रमा क्षीण हो, अष्टम में क्रूर ग्रह हो, अष्टमेश केन्द्र स्थानों में गया हो और लग्नेश निर्बल हो ।

केन्द्र में शनि एवं सूर्य हो एवं लग्न में मंगल हो ।

द्वादश या द्वितीय भाव में दो पापग्रह हों और राहु एवं चन्द्रमा उनके साथ न हों ।

आपोक्लिम में शुभग्रह हों और षष्ठ या अष्टम भाव में शनि एवं चन्द्रमा हो ।

इन सभी योगों में मनुष्य की आयु बीस वर्ष होती है ।

बाईस वर्ष की आयु के योग :

काये क्रूरगिरीशौ नीहारद्युतिदृष्टौ ।
आस्ते कश्चन काले दोर्दोःसम्मितमायुः ।।१०।।

काय इति । क्रूरगिरीशौ=पापग्रह-गुरू, काये=लग्ने, नीहारद्युनिदृष्टौ=चन्द्रावलोकितौ, काले=अष्टमे, कश्चन ग्रहः, आस्ते=विद्यते, यदि तदा, दोर्दोः-सम्मितं=द्वाविंशतितुल्यं, आयुः=जीवितकालः, स्यादिति शेषः ।

लग्न में एक पापग्रह से युक्त बृहस्पति हो एवं दोनों पर चन्द्रमा की दृष्टि हो । साथ ही अष्टम में कोई एक ग्रह हो तो बाईस वर्ष की आयु होती है ।

पच्चीस वर्ष की आयु के योग :

दिष्टान्तेशो दिष्टगः क्रूरदृष्टे
लेखानाथे नैधने सिद्धवर्षम् ।
विप्राणायुः प्रान्त्यपत्योर्द्विदेह-
लग्ने पङ्गौ पञ्चवर्गाब्दमायुः ।।११।।

दिष्टेति। दिष्टान्तेशः=अष्टमेशः, दिष्टगः=भाग्यगतः, क्रूरदृष्टे=पापदृष्टे लेखानाथे=लग्नाधिपे, नैधने=अष्टमे भवति, तदा, सिद्धवर्षं=चतुर्विंशत्यब्दं, आयुःस्यादित्यनुषङ्गः।
विप्राणेति। विप्राणायुःप्रान्त्यपत्योः=निर्बलाष्टमेश-द्वादशेशयोः, पङ्गौ=शनौ, द्विदेहलग्ने=द्विस्वभावराशिलग्ने सति, तदा पञ्चवर्गाब्दं=पञ्चविंशतिवर्षं, आयुः=जीवितकालः स्यादिति शेषः।

अष्टमेश नवम स्थान में गया हो और अष्टम भाव में लग्नेश पापग्रह से दृष्ट हो तो चौबीस वर्ष की आयु होती है।

अष्टमेश एवं द्वादशेश दोनों निर्बल हों और लग्न में शनि कन्या, मिथुन, धनु, मीन में हो तो पच्चीस वर्ष की आयु होती है।

सत्ताईस वर्ष की आयु :

निर्जरपूज्ये नैजनिकेते
नैजदृगाणे भोन्मितमायुः।
नैधनहोराधामविभू चे-
न्नैधनयातौ रामघनायुः॥१२॥

निर्जरेति। निर्जरपूज्ये=गुरौ, नैजनिकेते=स्वराशौ धनुषि मीने वेत्यर्थः। नैजदृगाणे=स्वद्रेष्काणे च भवति, चेत्तदा, भोन्मितं=सप्तविंशतितुल्यं, आयुः=जीवितकालः स्यादिति शेषः।
नैधनेति। नैधनहोराधामविभू=अष्टमेश-लग्नेशौ, नैधनयातौ=अष्टमगतौ, रामघनायुः=सप्तविंशतिवर्षायुः स्यादिति शेषः।

बृहस्पति यदि धनु या मीन राशि में १०° अंशों के भीतर हो अर्थात् धनु या मीन का ही द्रेष्काण हो।

अष्टमेश अष्टम स्थान में और लग्नेश साथ हो।

इन योगों में मनुष्य की आयु सत्ताईस वर्ष की होती है।

अट्ठाईस से इकत्तीस वर्ष की आयु :

केन्द्रे प्रान्त्ये रन्ध्रपेऽङ्गाच्च सोमा-
दष्टाविंशत्कश्चिदास्ते विनाशे।
सौम्यैः खेटैर्वर्जिते कण्टके वा
केन्द्रे हेम्ने दीर्घवीर्य्ये ग्रहोनम्॥१३॥

रन्ध्रं किं वा केन्द्रगौ वीतवीर्य्यौ
कालाङ्गेशौ किं शुभाः सद्मभागे।
त्रिंशद्वर्षं भास्करेऽघान्तराले
मूर्त्तावेकत्रिंशदब्दं तदायुः ॥१४॥

केन्द्र इति। रन्ध्रमिति च। अङ्गात्=लग्नात्, सोमात्=चन्द्राच्च, रन्ध्रपे=अष्टमेशे, केन्द्रे=चतुष्टये, प्रान्त्ये=द्वादशे वा भवति, चेत्तदा, अष्टाविंशत्, वर्षाणामायुः स्यादित्यनुषङ्गः।

कश्चिदिति। विनाशे=अष्टमे, कश्चित्=शुभोऽशुभो वा, आस्ते=विद्यते, तथा, कण्टके=चतुष्टये, सौम्यैः खेटैः=शुभग्रहैः, वर्जिते=रहिते सति तदा त्रिंशद्वर्षं=वर्षाणां त्रिंशत्, आयुः स्यादित्यनुषङ्गः।

हेम्न इति। हेम्ने=बुधे 'हेम्नो विज्ञो बोधनश्चेन्दुपुत्रः' इत्याचार्योक्तेः। केन्द्रे=चतुष्टये, दीर्घवीर्य्ये=अतिबलवति 'सप्तेन्दुपुत्रस्य बलं' मिति वेङ्कटेशोक्तेः। रन्ध्रं=अष्टमं, ग्रहोनम्=ग्रहरहितं, यदि तदा, त्रिंशद्वर्षमिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

किं वेति। किं वा वार्थे। वीतवीर्यौ=बलरहितौ, कालाङ्गेशौ=अष्टमलग्नाधीशौ, केन्द्रगौ=चतुष्टयगतौ, यदि तदा, त्रिंशद्वर्षमायुः स्यात्।

किमिति। किं वार्थे। शुभाः=सौम्यग्रहाः, सद्मभागे=शुभग्रहराशौ नवांशे वा सति तदा त्रिंशद्वर्षमायुः स्यात्।

भास्कर इति। भास्करे=सूर्ये, अघान्तराले=पापग्रहमध्यगते, मूर्त्तौ=लग्ने सति, तदा एकत्रिंशदब्दं=अब्दानामेकत्रिंशत्, आयुः=जीवितकालः, स्यादिति शेषः।

लग्न या चन्द्रमा से अष्टमेश केन्द्र या द्वादश स्थान में गया हो तो अट्ठाईस वर्ष की आयु होती है।

अष्टम में कोई एक ग्रह हो और केन्द्र में कोई शुभग्रह न हो। केन्द्र में अत्यन्त बलवान् बुध हो और अष्टम में कोई भी ग्रह न हो।

निर्बल अष्टमेश एवं लग्नेश केन्द्र में हों।

शुभ राशि एवं शुभ नवांश में सभी शुभग्रह हों।

इन चारों योगों में तीस वर्ष की आयु होती है।

लग्न में सूर्य हो और द्वितीय, द्वादश दोनों भावों में पापग्रह हों तो इकत्तीस वर्ष की आयु होती है।

बत्तीस से पचपन वर्ष की आयु :

दृष्टे पापैः क्षीणवीर्य्योद्गमेशे
तारेशेऽङ्कान्त्यारिशौर्य्ये रदाब्दम्।
याम्यं दृष्टं चारुभिर्ज्ञे सशक्तौ
केन्द्रे वायुर्नायकेऽङ्गे सदूनम् ॥१५॥
छिद्रं चत्वारिंशदब्दं सनक्रौ
कोणादित्यौ सोदरारातियातौ।
केन्द्रेऽन्तेशे वेदवेदाब्दमायु-
र्नीरेखे ज्ञेऽन्त्यायुरङ्गे हिमांशौ ॥१६॥
गीष्पत्यच्छावेकभेऽभ्राशुगाब्दं
कर्काङ्गेऽर्के वाक्पतौ कण्टकस्थे।
पङ्कोपेते पर्वरौ व्योम्नि पञ्च-
पञ्चाशत्संवत्सराणामिहायुः ॥१७॥

दृष्ट इति। छिद्रमिति। गीष्पतीति च। क्षीणवीर्य्योद्गमेशे=बलरहितलग्नेशे, पापैः=क्रूरैः, दृष्टे=विलोकिते, तारेशे=चन्द्रे, अङ्कान्त्यारिशौर्य्ये=नवम-व्यय-षष्ठ-तृतीये सति, तदा रदाब्दं=द्वात्रिंशदब्दं, आयुः स्यादित्यनुषङ्गः।

याम्यमिति। याम्यं=अष्टमं, चारुभिः=शुभैः, दृष्टं=विलोकितं, सशक्तौ=बलसहिते, ज्ञे=बुधे, केन्द्रे=चतुष्टये सति तदा चत्वारिंशदब्दं, आयुः स्यादित्यनुषङ्गः।

वेति। वा विकल्पार्थे। आयुर्नायके=अष्टमाधिपे, अङ्गे=लग्ने, छिद्रं=अष्टमं, सदूनं=शुभग्रहरहितं यदि तदा, चत्वारिंशदब्दं, आयुः स्यात्।

सनक्राविति। सनक्रौ=मकरसहितौ, कोणादित्यौ=शनि-सूर्यौ, सोदराराति-यातौ=तृतीय-षष्ठगतौ, अन्तेशे=अष्टमेशे, केन्द्रे भवति, चेत्तदा, वेदवेदाब्दं=चतुश्चत्वारिंशद्वर्षं, आयुः स्यादिति शेषः।

नीर इति। ज्ञे=बुधे, नीरे=चतुर्थे, वा खे=दशमे, हिमांशौ=चन्द्रे, अन्त्या-युरङ्गे=द्वादशा-ष्टम-लग्ने, गीष्पत्यच्छौ=गुरु-शुक्रौ, एकभे=एकराशौ भवतः, चेत्तदा, अभ्राशुगाब्दं=पञ्चाशद्वर्षं, आयुः स्यात्।

कर्काङ्ग इति। अर्के=रवौ, कर्काङ्गे=कर्कटलग्ने, वाक्पतौ=जीवे, केन्द्रे=चतुष्टये, पङ्कोपेते=पापयुक्ते, पर्वरौ=चन्द्रे, व्योम्नि=दशमे सति, तदा संवत्सराणां=वर्षाणां पञ्चपञ्चाशत्, आयुः स्यादिति शेषः।

लग्नेश निर्बल होकर पापग्रह से दृष्ट हो और चन्द्रमा आपोक्लिम (३, ६, ९, १२) भावों में हो तो बत्तीस वर्ष की आयु होती है।

अष्टम स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टि हो और केन्द्र में अति बलवान् बुध हो।

लग्न में अष्टमेश हो और केन्द्र में शुभग्रह न हो।

इन दोनों योगों में मनुष्य की आयु चालीस वर्ष की होती है।

तृतीय या षष्ठ भाव में मकर राशि गत शनि हो तथा सूर्य साथ में हो और अष्टमेश केन्द्र में गया हो तो चवालीस वर्ष की आयु होती है।

चतुर्थ या दशम में बुध हो; लग्न, द्वादश या अष्टम में चन्द्र हो और बृहस्पति व शुक्र एक ही राशि में हों तो पचास वर्ष की आयु होती है।

कर्क लग्न में जन्म हो, लग्न में सूर्य हो और दशम में पापयुक्त चन्द्रमा हो तो पचपन वर्ष की आयु होती है।

अट्ठावन से सत्तर वर्ष की आयु :

पीयूषांशौ साङ्गपाले त्रिकस्थे
कृष्णांशेऽङ्गस्वामिभानोशुगाब्दम् ।
कर्के वाङ्गेऽब्जे शुभः कान्तगो वा
सन्तः स्वर्क्षे सत्वभाज्यङ्गपेऽङ्गे ।।१८।।
स्वोच्चे सोमे वा स्वभे सन्नभोगा
लग्नोच्चस्थोऽब्जोऽथवा सत्खगेहाः ।
दिष्टान्तोनाः पाप्मयुग् दुष्टयातो
होरालेखेड् वामराच्यों न केन्द्रे ।।१९।।
राश्यङ्गेशौ नाशगौ सारुणौ वा
सर्वैर्धीस्थैः षष्ठिरायुः समानाम् ।
मूर्त्तेर्वेन्दोर्याम्यभं नो खगाढ्य
दृष्टं केन्द्रे सन्त इज्ये विलग्ने ।।२०।।
आहो देहेन्दू व्यधौ केन्द्रयाते
चारौ जीवेऽङ्गे खगोनो लयो वा ।
पुत्रेऽन्त्येऽब्जेऽस्त्रारियुग्भानुरङ्गे
विप्राणीज्यः सप्ततिर्वत्सराणाम् ।।२१।।

पीयूषेति। स्वोच्च इति। राशीति। आहो इति च। साङ्गपाले=लग्नेशसहिते, पीयूषांशौ=चन्द्रे, त्रिकस्थे=दुष्टस्थिते, अङ्गस्वामिनि=लग्नेशे, कृष्णांशे= शनिनवांशे सति तदा, इभाशुगाब्दं=अष्टपञ्चाशदब्दं, आयुः स्यादित्यनुषङ्गः। कर्क इति। अब्जे=चन्द्रे, कर्के, वा अङ्गे=लग्ने, शुभः=सौम्यग्रहः, कान्तगः= सप्तमगतः, यदि तदा, समानां=वर्षाणां, षष्ठिः, आयुः=जीवितकालः, स्यादिति शेषः।

वेति। वा विकल्पार्थे। सन्तः=शुभग्रहाः, स्वर्क्षे=निजराशौ, सत्वभाजि= बलवति, अङ्गपे=लग्नेशे, अङ्गे=लग्ने, सोमे=चन्द्रे, स्वोच्चे सति तदा समानां षष्ठिः आयुः स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

वेति। वा विकल्पार्थे। सन्नभोगाः=सौम्यग्रहाः, स्वभे=स्वराशौ, अब्जः= चन्द्रः, लग्नोच्चस्थः=लग्ने स्वोच्चराशिगतः, यदि तदा, समानां षष्ठिः आयु स्यात्।

अथवेति। अथवा विकल्पार्थे। सत्खगेहाः=शुभग्रहाः, दिष्टान्तोनाः=अष्टम-व्यतिरिक्तभावस्थाः,पाप्मयुक्=पापयुक्तः, होरालेखेड्=लग्नाधिपः, दुष्टयातः= त्रिकगतः, चेत्तदा, समानां षष्ठिः आयुः स्यात्।

वेति। वा विकल्पार्थे। केन्द्रे, अमराच्यः=गुरुः, न स्यात्, सारुणौ=सूर्यसहितौ राश्यङ्गेशौ=चन्द्राक्रान्तराशीश-लग्नराशीशौ, नाशगौ=अष्टमगतौ, यदि तदा, समानां षष्ठिः आयुः स्यात्।

वेति। वा विकल्पार्थे। सर्वैः=शुभाशुभग्रहैः, धीस्थैः=पञ्चमस्थितैः सद्भिः, चेत्तदा, समानां षष्ठिः आयुः स्यात्।

मूर्त्तेरिति। मूर्त्तेः=लग्नात्, इन्दोः=चन्द्राद्वा, याम्यभं=अष्टमं, खगाद्यदृष्टं= ग्रहयुक्तावलोकितं नो भवति, सन्तः=शोभनाः, केन्द्रे, इज्ये=गुरौ, विलग्ने सति तदा वत्सराणां=वर्षाणां, सप्ततिः, आयुः स्यादित्यनुषङ्गः।

आहो इति। आहो विकल्पार्थे। व्यघौ=पापरहितौ, देहेन्दू=लग्नचन्द्रौ, सौम्ये= शुभग्रहे, केन्द्रयाते=चतुष्टयगते, अङ्गे=लग्ने, जीवे=बृहस्पतौ 'जीवः प्राणे-ऽस्त्रियां ना तु जन्तावात्मनि गीष्पतौ' इति वैजयन्ती। लयः=अष्टमं, खगोनः= ग्रहरहितः, यदि तदा, वत्सराणां सप्ततिरिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

वेति। वा विकल्पार्थे। अब्जे=चन्द्रे, पुत्रे=पञ्चमे, अन्त्ये=द्वादशे वा, अस्रारि-युग्=भौम-शत्रुयुक्तः, भानुः=सूर्यः, अङ्गे=लग्ने, इज्यः=गुरुः, विप्राणी= बलरहितः, चेत्तदा, वत्सराणां सप्ततिः आयुः स्यात्।

यदि लग्नेश एवं चन्द्रमा ६,८,१२ भावों में गया हो और चन्द्रमा शनि के नवांश में हो। इस योग में अट्ठावन वर्ष की आयु होती है

लग्न में या कर्क राशि में चन्द्रमा हो और सप्तम में शुभग्रह हों।

शुभग्रह स्वराशियों में हों, लग्न में बलवान् लग्नेश एवं चन्द्रमा उच्च राशि में हो।

शुभग्रह स्वराशि में हों और लग्न में उच्च राशि स्थित चन्द्रमा हो।

अष्टम के अतिरिक्त स्थानों में शुभग्रह हों और त्रिक भावों में पापयुक्त लग्नेश हो।

अष्टम में सूर्य से युक्त होकर जन्मराशीश व लग्नेश हों और केन्द्र में बृहस्पति न हो।

पंचम में सब ग्रह हों तो इन छः योगों में व्यक्ति की आयु साठ वर्ष की होती है।

लग्न या चन्द्रमा से अष्टम स्थान पर ग्रह की दृष्टि या योग न हो, केन्द्र में शुभग्रह हों और लग्न में बृहस्पति हो।

लग्न व चन्द्रमा पापयुक्त न हो, केन्द्र में शुभग्रह हो और लग्न में बृहस्पति हो और अष्टम में ग्रह न हो।

पंचम या व्यय में चन्द्रमा हो, लग्न में सूर्य हो और वह सूर्य, मंगल या शत्रु ग्रह से युक्त हो एवं बृहस्पति निर्बल हो तो इन योगों में मनुष्य की आयु सत्तर वर्ष की होती है।

तिहत्तर व अस्सी वर्ष की आयु :

दृष्टे पङ्कैः पौरपे प्राणवन्तः
पुण्याः सोमे सद्गणे त्र्यद्रितुल्यम्।
स्वोच्चे सूरौ मूर्त्तिपोऽतीववीर्य्यः
पुण्याः प्राप्ताः स्वीयमूलत्रिकोणम् ॥२२॥
किं वा कोणे रम्यखेटैरुपेते
वाचां नाथः षोडशांशेऽप्यङ्गगो वा।
क्रूरांशस्थैः केन्द्रगैः सर्वखेटैः
पुंसामायुर्हायनानामशीतिः ॥२३॥

दृष्ट इति। किं वेति च। पौरपेः=लग्नेशे, पङ्कैः=पापैः, दृष्टे=विलोकिते, पुण्याः=शुभग्रहाः, प्राणवन्तः=बलवन्तः, सोमे=चन्द्रे, सद्गणे=शुभवर्गे सति तदा, त्र्यद्रितुल्यं=त्रिसप्ततिवर्षतुल्यं, आयुः स्यादित्यनुषङ्गः।

स्वोच्च इति। सूरौ=जीवे, स्वोच्चे=निजतुङ्गे कर्क इत्यर्थः। अतीववीर्य्यः= अतिबली, मूर्त्तिपः=लग्नेशः, पुण्याः=शुभग्रहाः स्वीयमूलत्रिकोणं प्राप्ताः= गता मूल त्रिकोणानि गृहाणि केसरीति सञ्ज्ञाध्यायोक्तेः। यदि तदा पुंसां= हायनानां=वर्षाणां, अशीतिः, आयुः स्यादिति शेषः।

किं वेति। किं वा वार्थे। कोणे=पञ्चमनवमे, रम्यखेटैः=शुभग्रहैः, उपेते= युक्ते, वाचांनाथः=गुरुः, षोडशांघ्र्यङ्गः=कर्कोदयगतः, यदि तदा, हायनानामशीतिरायुः स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

क्रूरांशेति। सर्वखेटैः=सूर्यादिभिः सप्तभिर्ग्रहैः, क्रूरांशस्थैः=पापग्रहनवांशस्थितैः, केन्द्रगैः=चतुष्टयस्थितैः सद्भिः, चेत्तदा, हायनानामशीतिरायुः स्यात्।

लग्नेश यदि पापग्रह से दृष्ट हो, शुभग्रह बलवान् हों और चन्द्रमा शुभग्रहों के षड्वर्गों में हो तो तिहत्तर (७३) वर्ष की आयु होती है।

कर्क राशि में बृहस्पति हो, लग्नेश अत्यन्त बलवान् हो और शुभग्रह अपनी मूलत्रिकोण राशि में हों।

नवम व पंचम भाव में शुभग्रह हों और लग्न में कर्क राशि में बृहस्पति हो।

केन्द्र में सब ग्रह हों और वे पापग्रहों के नवांश में स्थित हों तो इन तीनों योगों में अस्सी वर्ष की आयु होती है।

पचासी वर्ष की आयु :

आचार्य्यनन्दांशगताः शनीना
स्राः कण्टके मूर्त्तिगतोऽमरेड्यः।
शेषाः खगा विप्रलयेषु संस्था
आयुर्नृणां स्याद्विषयेभतुल्यम्॥२४॥

आचार्य्येति। शनीनास्राः=शनि-सूर्य-भौमाः, आचार्य्यनन्दांशगताः=गुरुनवांशगताः, धनुरंशे मीनांशे वेत्यभिप्रायः। कण्टके=चतुष्टये, स्युः, अमरेज्यः=जीवः, मूर्त्तिगतः=लग्नगतः, शेषाः=अन्ये, खगाः=ग्रहाः, विप्रलयेषु=अष्टमवर्जितेषु स्थानेषु, संस्थाः=स्थिताः, चेत्तदा, नृणां=मनुष्याणां, विषयेभतुल्यं=पञ्चाशीत्युन्मितं, आयुः स्यात्, वर्षमिति शेषः।

केन्द्र में बृहस्पति के नवांश में सूर्य, शनि एवं मंगल हों, लग्न में बृहस्पति हो और शेष ग्रह अष्टम के अतिरिक्त स्थानों में हों तो पचासी वर्ष की आयु होती है।

सौ वर्ष की आयु :

दनुजविबुधवन्द्यौ केन्द्रसंस्थौ शताब्दं
दनुजपतिपुरोधाः केन्द्रवर्त्ती सकर्के।
उदयति सुरपूज्ये स्याच्छतं तद्वदिन्दौ
चरमनवमधाम्नीनात्मजेऽङ्गेशुभेऽथो ।।२५।।

मृतिमतिगुरुकेन्द्रे नाशुभा जीवभेऽङ्गे
सुरगुरुरुत काव्यः कण्टके चारुदृष्टम्।
रणमपि तप आहो मूर्त्तिपो मृत्युगोऽब्जो
नभसि तपसि शेषा वाक्पतिर्वीर्य्ययुग्वा ।।२६।।

उशनसि झषलग्ने पर्वरो पुण्यदृष्टे
युधि सुरपतिपूज्ये केन्द्रवर्तिन्यथाधाः।
निजनिलयगता नाङ्गाष्टवैरीन्दुयुक्ता
बलकलितखगौ द्वौ राज्यगतौ शतायुः ।।२७।।

दनुजेति। मृतीति। उशनसीति च। दनुजविबुधवन्द्यौ = शुक्र-गुरु, केन्द्रसंस्थौ = चतुष्टयस्थितौ, शताब्दं = अब्दानां शतं, आयुः स्यादित्यनुषङ्गः।

दनुजेति। दनुजपतिपुरोधाः = शुक्रः, केन्द्रवर्त्ती = चतुष्टयस्थितः, सकर्के = कर्कसहिते, सुरपूज्ये = गुरौ, उदयति = उदयाचलगते लग्नगतः इत्यर्थः। यदि तदा, शतमायुः स्यात्।

तद्वदिति। इन्दौ = चन्द्रे, चरमनवमधाम्नि = व्यय-नवमस्थाने, इनात्मजे = शनौ, अङ्गे = लग्ने, शुभे = नवमे वा सति तदा तद्वत् = तेनैव प्रकारेण शतमायुः स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

अथो इति। अथो आनन्तर्य्यार्थे। अशुभाः = पापग्रहाः, मृतिमतिगुरुकेन्द्रे = अष्टम-पञ्चम-नवम-केन्द्रे न स्युः। अङ्गे = लग्ने, जीवभे = गुरुराशौ, धनुषि मीने वेत्यर्थः। सुरगुरुः = जीवः, उत वार्थे, काव्यः = शुक्रः, कण्टके = केन्द्रे भवति, रणम् = अष्टम, तपः = नवममपि, चारुदृष्टं = शुभग्रहावलोकितं, यदि तदा शतमायुः स्यात्।

आहो इति। आहो वार्थे। मूर्त्तिपः = लग्नेशः, मृत्युगः = अष्टमगतः, अब्जः = चन्द्रः, नभसि = दशमे, शेषाः = अन्ये ग्रहाः, तपसि = नवमे, वाक्पतिः = गुरुः, वीर्ययुक् = बलयुक्तः, यदि तदा, शतायुः स्यात्।

वेति। वा विकल्पार्थे, उशनसि = शुक्रे, झषलग्ने = मीनोदये, पुण्यदृष्टे = शुभदृष्टे,

पर्वरौ=चन्द्रे, युधि=अष्टमे, सुरपतिपूज्ये=गुरौ, केन्द्रवर्तिनि=चतुष्टयस्थिते सति तदा शतायुः स्यात्।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। अघाः=पापग्रहाः, निजनिलयगताः=स्वराशिगताः, अङ्गाष्टवैरीन्दुयुक्ताः=लग्नाष्टम-शत्रु-चन्द्रसहिताः, न स्युः। तथा द्वौ बलकलितखगौ=बलयुक्तग्रहौ, राज्ययातौ=दशमगतौ यदि तदा शतायुः स्यात्।

शुक्र व बृहस्पति केन्द्र में हों। लग्न में कर्क राशि में बृहस्पति और केन्द्र में शुक्र हो।

चन्द्रमा नवम या द्वादश भाव में हो और लग्न या नवम भाव में शनि हो।

केन्द्र, त्रिकोण एवं अष्टम में पापग्रह न हों, लग्न में धनु या मीन राशि हो, केन्द्र में बृहस्पति व शुक्र हों एवं अष्टम व नवम स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टि हो।

लग्नेश अष्टम में हो, दशम में चन्द्रमा, नवम में शेष ग्रह हों और बृहस्पति बलवान् हो।

लग्न में मीन राशि में शुक्र हो, अष्टम में शुभग्रह दृष्ट चन्द्रमा हो और बृहस्पति केन्द्र में गया हो।

स्वराशिगत पापग्रह यदि लग्न या अष्टम में न हों और चन्द्रमा एवं शत्रु ग्रह से युक्त न हों और दशम में दो बलवान् ग्रह हों।

इन सब योगों में सौ वर्ष की आयु होती है।

पुण्याम्बुगाः पङ्कखगाः सुखेचराः
सूर्य्यांशसंस्थाः समभांशगाः किमु।
प्रान्त्यार्थगाः पूर्णनिशाकरे पुरे
आयुः शतं स्याच्छरदां समस्य नुः॥२८॥

पुण्येति। पङ्कखगाः=पापग्रहाः, पुण्याम्बुगाः=नवमचतुर्थगताः, सुखेचराः=शुभग्रहाः, सूर्य्यांशसंस्थाः=गुरुनवांशगताः, किमु=अथवा, समभांशगाः=समराशिगताः समनवांशगताश्च, प्रान्त्यार्थगाः=द्वादश-द्वितीयगताः, सुखेचराः, 'सुखेचरा इति देहलीदीपकन्यायेनोभयत्रान्वेति।' पूर्णनिशाकरे=निखिलचन्द्रमसि, पुरे=लग्ने सति तदा, समस्य=लक्ष्मीयुक्तस्य, नुः=पुरुषस्य, शरदां=वर्षाणां, शतं, आयुः स्यात्।

नवम एवं चतुर्थ में पापग्रह हों और शुभग्रह बृहस्पति के नवांश में हों।

द्वितीय एवं द्वादश में समराशि एवं समराशि नवांश में शुभग्रह हों एवं लग्न में पूर्ण चन्द्रमा हो।

इन योगों में वैभव से युक्त होकर व्यक्ति सौ वर्ष की आयु पाता है।

प्राग्लग्नयाते धनुरन्त्यभागे
केन्द्रस्थभाद्याङ्कलवे शुभैर्वा।
कर्काङ्ग आयत्र्यरिगौ भपाच्यौ
सद्वित्सितौ केन्द्रगतौ शतायुः ॥२६॥

प्रागिति। धनुरन्त्यभागे = धनूराशेरन्तिमनवांशे, प्राग्लग्नयाते = लग्नगते, केन्द्रस्थभाद्याङ्कलवे = केन्द्रस्थितराशिप्रथमनवांशे, शुभैः सद्भिः, तदा शतायुः स्यादिति शेषः।

वेति। वा विकल्पार्थे। कर्काङ्ग = कर्कलग्ने, भपाच्यौ = चन्द्रगुरू, आयत्र्यरिगौ = लाभ-तृतीय-षष्ठगतौ, सद्वित्सितौ = शुभबलिनौ बुधशुक्रौ केन्द्रे भवतः, चेत्तदा, शतायुः स्यात्, पुरुषस्येति शेषः।

लग्न में धनु राशि का अन्तिम नवांश या अन्तिम अंश हो और केन्द्र में शुभग्रह राशि के प्रथम नवांश या प्रथम अंश में हों।

कर्क लग्न में जन्म हो, तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भावों में चन्द्रमा व बृहस्पति हो एवं केन्द्र में बुध एवं शुक्र बलवान् हों तो इन योगों में सौ वर्ष की आयु होती है।

यहां धनु राशि के अन्तिम नवांश या अन्तिम अंश होने पर शतायु कही गई है। विचारणीय विषय यह है कि अन्तिम नवांश या अन्तिम अंश सर्वत्र निन्दित ही कहा गया है।

'अन्तिमांश गताः खेटा अत्यल्पायुः प्रदा मताः।'

लेकिन धनु राशि में अन्तिम नवांश वर्गोत्तम संज्ञक होगा। एवं वर्गोत्तम नवांश शुभप्रद होता है। **'शुभं वर्गोत्तमे जन्म'** ऐसा वराहमिहिर ने कहा है। अतः शंका नहीं करनी चाहिए।

पूर्णायु योग :

लग्नाद् ग्लावः कालगा नो खगेन्द्राः .
काणाचार्य्यौ वीर्य्यभाजौ स्त आहो।
चापान्त्यार्द्धं मूर्त्तिगं सर्वखेटाः
स्वोच्चं प्राप्ता ज्ञे वृषे सिद्धभागैः ॥३०॥

वाप्ताविन्दौ केन्द्र इज्ये सितेऽथ
सद्भे सन्तोऽसद्गृहेऽसद्विहङ्गाः।
वीर्य्योपेते विग्रहेशेऽथ दैवे
सर्वैराहो कण्टके कल्पपार्य्यौ ॥३१॥

आग्नेया नो केन्द्रधीरन्ध्रधर्म्मे
किं वा सौम्याः कण्टकस्था असौम्यैः।
सद्भागस्थैः कातरैर्वृद्धिगैश्च
पूर्णायुर्नो कालगौ कालभौमौ ॥३२॥

लग्नादिति। वेति। आग्नेया इति च। लग्नात्=तनुतः, ग्लावः=चन्द्रात् 'ग्लौर्मृगाङ्कः कलानिधिः' इत्यभिधानात्। खगेन्द्राः=ग्रहाः, अष्टमस्था, अष्टमभावगताः, नो स्युः। काणाचार्य्यौ=शुक्र-गुरू, वीर्यभाजौ=बलवन्तौ, स्तः=भवतः। चेत्तदा, पूर्णायुः=विंशत्यधिकं शतमायुः स्यादिति शेषः।

आहो इति। आहो वार्थे। चापान्त्यार्द्धं=धनूराशेरुत्तरार्द्धं, मूर्त्तिगं=लग्नगतं, सर्वखेटाः=रव्यादयः सप्तग्रहाः स्वोच्चं प्राप्ताः 'अजनोऽवौ वृषभे विधु' रिति सञ्ज्ञाध्यायोक्तेः। ज्ञे=बुधे, वृषे=गवि, सिद्धभागैः=चतुर्विंशतिभागैः सद्भिः, तदा पूर्णायुः स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

वेति। वा विकल्पार्थे। इन्दौ=चन्द्रे, आप्तौ=एकादशे, इज्ये=गुरौ, सिते=शुक्रे च केन्द्रे भवति तदा पूर्णायुः स्यात्।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। सन्तः=शुभग्रहाः, सद्भे=शुभग्रहराशौ, असद्विहङ्गाः=पापग्रहाः, असद्गृहे=पापराशौ भवेयुः। विग्रहेशे=लग्नाधीशे 'विग्रहः कायविस्तार विभागे ना रणे स्त्रियाम्'। 'विग्रहः समरे काये' इति मेदिनीदिश्वौ। वीर्य्योपेते=बलयुक्ते, सति तदा पूर्णायुः स्यात्।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। सर्वैः=रव्यादिभिः, सप्तभिः, दैवे=नवमे सद्भिः, चेत्तदा पूर्णायुः स्यात्।

आहो इति। आहो वार्थे। कल्पपाय्यौं = लग्नेश-जीवौ, कण्टके = चतुष्टये भवतः। आग्नेयाः = पापग्रहाः, केन्द्रधीरन्ध्रधर्म्मे = केन्द्र-पञ्चमाष्टम-नवमे नो स्युः। तदा पूर्णायुः स्यात्।

किं वेति। किं वा वार्थे। सौम्याः = शुभाः, कण्टकस्थाः = केन्द्रस्थिताः, कातरैः = भीरुभिः 'अधीरे कातरः' इत्यभिधानात्। युद्धे पराजितैरिति यावत्। असौम्यैः = पापग्रहैः, सद्भागस्थैः = शुभग्रहनवांशस्थितैः, च = पुनः, वृद्धिगैः = उपचयगतैः, कालभौमौ = शनि-मङ्गलौ, कालगौ = अष्टमगतौ नो स्याताम्। तदा पूर्णायुः स्यात्।

लग्न एवं चन्द्रमा से अष्टम स्थान में कोई ग्रह न हो और शुक्र व गुरु बलवान् हों।

लग्न में धनु राशि का उत्तरार्ध हो, सब ग्रह अपनी उच्च राशि में हों और वृष के २४° अंश में बुध हो।

लाभ स्थान में चन्द्रमा एवं केन्द्र में गुरु व शुक्र हों।

शुभग्रह शुभग्रहों की राशियों में हों, पापग्रह पाप राशियों में स्थित हों और लग्नेश बलवान् हो।

सभी ग्रह नवम स्थान में स्थित हों।

केन्द्र में लग्नेश एवं बृहस्पति हों; केन्द्र, त्रिकोण एवं अष्टम में पापग्रह न हों।

केन्द्र में शुभग्रह हों, शुभ नवांश में उपचय स्थानों में पराजित ग्रह हों और अष्टम में शनि एवं मंगल न हों।

इन सभी योगों में मनुष्य की आयु १२० वर्ष होती है।

योगों से विचारित आयु योगायु कहलाती है। योगायु बहुत से स्थलों पर खरी उतरती है। **होरासार** में पृथुयशा ने बहुत सुन्दर विवेचन किया है। साथ ही **प्रश्नमार्ग** का अध्ययन इस विषय में बहुत लाभदायक होगा।

दशायु एवं मृत्यु का कारण :

दिष्टान्तगानां शनिखाङ्गपानां
यो हीनवीर्य्योऽस्य दशायुरुक्तम्।
षष्ठेऽम्बुपे सार्कितमोध्वजेस्यान्-
मृत्युः क्रमाद्वाहनतस्करास्त्रैः॥३३॥

दिष्टान्तेति। दिष्टान्तगानां=अष्टम-भावगतानां 'स्यात्पञ्चता कालधर्म्मो दिष्टान्तः प्रलयोऽत्ययः' इत्यभिधानात्। शनिखाङ्कपानां=शनि-दशमेश-लग्नेशानां च मध्ये, यो ग्रहः, हीनवीर्यः=अल्प बली स्यात्। अस्य दशा=विंशोत्तरीदशा पद्धत्युक्तप्रकारानीता दशा वा आयुः=जीवितकालः, उक्तं=कथितम्। अर्थात्तस्याल्पबलिनो दशापर्यन्तमायुः स्यादित्यर्थः।

षष्ठ इति। सार्कितमोध्वजे=शनि-राहु-केतुसहिते, अम्बुपे=चतुर्थेशे, षष्ठे सति तदा, क्रमात्=परिपाट्याः, वाहनतस्करास्त्रैर्मृत्युः स्यात्। अर्थात् शनियोगे वाहनहेतोर्मृत्युः, राहुयोगे चौरान्मृत्युः, केतुयोगे शस्त्रेण मृत्युः स्यादित्यर्थः।

अष्टम भाव में स्थित ग्रह, शनि, दशमेश, लग्नेश इन चारों में से जो ग्रह कम बलवान् हो, उसी ग्रह की दशापर्यन्त आयु होती है।

षष्ठ स्थान में चतुर्थेश एवं शनि हों तो वाहन दुर्घटना में मृत्यु होती है।

षष्ठ में चतुर्थेश युक्त राहु हो तो चोर डाकू द्वारा मृत्यु होती है।

षष्ठ में चतुर्थेश युक्त केतु हो तो शस्त्र से मरण होता है।

मृत्यु के कारण का विचार बड़े सुन्दर ढंग से **प्रश्नमार्ग** में किया गया है। इस विषय में विस्तृत एवं सर्वांगीण विवेचन हमारे **आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य** में हो चुका है। पाठकों के लिए आयु व मृत्यु कारण के विषय में ये दो ग्रन्थ बड़े उपादेय हैं। कुछ संक्षिप्त संकेत यहां भी दिए जा रहे हैं।

(i) अष्टम स्थान में स्थित सूर्यादि ग्रह हों तो क्रमशः आग, पानी, शस्त्र, ज्वर, अज्ञात रोग, प्यास, भूख से मृत्यु होती है।

(ii) अष्टम पर दृष्टि रखने वाले सूर्यादि ग्रहों के मृत्यु कारण क्रमशः इस प्रकार हैं—अस्थि, रक्त, मज्जा, खाल, चर्बी, शुक्र, स्नायु।

(iii) अष्टम स्थान में ग्रह दृष्टि योग न हो तो अष्टमेश या बाईसवें द्रेष्काण का पति अपने गुण से मृत्यु देता है।

(iv) शनि जिस ग्रह से युक्त हो, उसी ग्रह के प्रोक्त विकार से मृत्यु होती है।

इस प्रकार प्रश्नमार्ग में विस्तृत विवेचन उपलब्ध है। एतदर्थ प्रश्नमार्ग अध्याय ११ का अध्ययन करना चाहिए।

युद्धविजयी योग :

होरायुरीशौ मृतिमातुलाश्रितौ
स्याच्छक्तिमन्तौ समरे जयी जनः।
तौ वीतवीर्य्यौ मृतिरङ्गगेऽम्बुपे
साङ्गाधिपेन्दौ सगुरौ सभार्गवे ।।३४।।
जातः क्रमेण द्विरदैर्हयादिभि-
रान्दोलिकाभिर्विजयी भवेद्रणे।
आयुष्युतागे गुरुपण्डितासुर
पूज्या जनः कृच्छ्रकर्म्मकारकः ।।३५।।

होरेति। जात इति च। शक्तिमन्तौ=बलवन्तौ, होरायुरीशौ=लग्नेशाष्टमेशौ, मृतिमातुलाश्रितौ=अष्टम-षष्ठगतौ भवतः। चेत्तदा जातः, जनः 'जनो लोके महर्लोकात्परलोके च पामरे' इति विश्वः। समरे=संग्रामे 'समरः सम्परायः स्यात्' इति विश्वः। जयी=विजयवान् भवेदिति शेषः। यदि तौ लग्नेशाष्टमेशौ, वीतवीर्य्यौ=बलरहितौ, भवतः। चेत्तदा, मृतिः स्यात् 'समरे' इत्यनुषङ्गः। साङ्गाधिपेन्दौ=लग्नेशचन्द्र सहिते, अम्बुपे=चतुर्थेशे, अङ्गगे=लग्नगते सति तदा, द्विरदैः=हस्तिभिः, जयः स्यात्। सगुरौ=गुरुसहिते, चतुर्थेशे लग्नगते सति तदा, हयादिभिः=घोटकादिभिः, जयः स्यात्। सभार्गवे=शुक्रसहिते, चतुर्थेशे लग्नगते सति तदा, आन्दोलिकाभिः=शिविकाभिः 'डोली' इति भाषायाम्। रणे=संग्रामे 'रणः कोणे क्वणे पुंसि समरे पुंनपुंसकम्' इति मेदिनी। विजयी भवेत्। आयुषीति। आयुषि=अष्टमस्थाने, उत वार्थे, अगे=स्थिरराशौ, गुरुपण्डितासुर-पूज्याः=तृतीय-बुध-शुक्राः, स्युः। चेत्तदा जातो जनः, कृच्छ्रकर्म्मकारकः=कष्ट-कर्मणां कर्त्ता, तब्धस्वभावः=कठिनचित्तश्च स्यात्। इत्युत्तरेण सम्बन्धः।

अष्टम एवं षष्ठ स्थान में बलवान् लग्नेश और अष्टमेश हों तो व्यक्ति युद्ध में विजयी होता है।

षष्ठ या अष्टम में निर्बल लग्नेश एवं अष्टमेश हों तो युद्ध में मृत्यु होती है।

लग्न में चतुर्थेश गया हो और वह लग्नेश व चन्द्रमा से युक्त हो तो युद्ध में हाथियों से विजय होती है।

यदि लग्न में स्थित चतुर्थेश बृहस्पति से युक्त हो तो घोड़ों से विजय होती है। यदि शुक्र से युक्त हो तो पालकी से विजय होती है।

अष्टम भाव या स्थिर राशि में गुरु, बुध, शुक्र हों तो व्यक्ति कठोर कामों को करने वाला तथा कठोर हृदय होता है।

आयुखण्डानुसार सुख व दुःख :

तब्धस्वभावो वधपे भवस्थे
पश्चात्सुखी शैशवकेऽतिदुःखी।
चौरोऽरियुक्तः कलिपे कुटुम्बे
चौरो बुधारौ रुजि वीर्य्यवन्तौ ॥३६॥

तब्धेति। वधपे=अष्टमेशे, भवस्थे=लाभस्थिते सति तदा शैशवके=बाल्यकाले, अतिदुःखी, पश्चात् (यौवने वार्द्धक्ये च) सुखी स्यादिति शेषः।

चौर इति। कलिपे=अष्टमाधिपे, कुटुम्बे=द्वितीये सति तदा जातः, अरियुक्तः=शत्रुयुक्तः, चौरश्च स्यादिति शेषः।

चौर इति। वीर्य्यवन्तौ=बलिनौ, बुधारौ=बुध-भौमौ, रुजि=षष्ठे भवतः। चेत्तदा जातः, चौरः स्यादिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"....वारिगौ शारीवीर्य्याढ्यौ वाङ्गगौ शारखेटौ।" इति।

यदि अष्टमेश लाभस्थान में गया हो तो व्यक्ति बाल्यकाल में दुःखी एवं बाद में सुखी होता है।

यदि अष्टमेश द्वितीय स्थान में हो तो मनुष्य शत्रुओं से युक्त एवं चौर्यरत होता है।

षष्ठ स्थान में बलवान् बुध व मंगल हो तो मनुष्य चोर होता है।

अण्डकोश वृद्धि योग :

सारे काव्ये कालगे वातकोपात्-
कौजे सारे भार्गवे मुष्कवृद्धिः।
काश्यप्युत्या कौज आर्कोज्यदृष्टौ
शुक्रग्लावौ शुक्ररक्तोद्भवा सा ॥३७॥

सार इति। सारे=भौमसहिते, काव्ये=शुक्रे, कालगे=अष्टमगते सति तदा वातकोपाद्, मुष्कवृद्धिः। सारे=भौमसहिते, भार्गवे=शुक्रे, कौजे=भौमराशौ

मेषे वृश्चिके वेत्यर्थः । सति तदा काश्यप्युत्था=भूमिसंसर्गजाता मुष्कवृद्धिः । शुक्रग्लावौ=शुक्र-चन्द्रौ, कौजे=भौमराशौ, आर्कीज्यदृष्टौ=शनि-गुरुदृष्टौ भवतः । चेत्तदा सा (मुष्कवृद्धिः) शुक्ररक्तोद्भवा=कललदोषजा वाच्येति शेषः । कललं शुक्रशोणित मिश्रीभावः ।

अष्टम स्थान में मंगल से युक्त शुक्र हो तो वायु विकार से मनुष्य के अण्डकोश वढ़ जाते हैं।

मेष या वृश्चिक राशि में मंगल व शुक्र हो तो पार्थिव विकार अर्थात् किसी संक्रमण के कारण अण्ड वृद्धि होती है।

यदि मेष व वृश्चिकगत मंगल व शुक्र को शनि व वृहस्पति देखते हों तो वीर्य विकार से अण्ड वृद्धि होती है।

लिंगविच्छेदादि योग :

राकेशकव्योरसितस्तदग्रगः
सौरिं सितेन्दू परिपश्यतोऽङ्गगौ ।
वार्कोपरागः सितसिन्धुजेक्षिते
सादित्यसौरौ यदि भूमिकण्टके ॥३८॥
शिश्नस्य विच्छेद उदीरितोऽयशाः
सोऽथाश्मघातो हृदि मङ्गले भगे ।
मध्येऽथवाऽम्भोभवनेऽर्कभौमयोः
किं कीर्तिपे वारिपवीक्षितान्विते ॥३९॥

राकेशेति । शिश्नस्येति च । राकेशकव्योः=चन्द्रशुक्रयोरन्यतरात्, चन्द्रात् शुक्राद्वेत्यर्थः । असितः=शनिः, तदग्रगः=तत्पुरोभागवर्त्ती, तदग्रिमभावे स्थित इत्यर्थः । अङ्गगौ=लग्नस्थितौ, सितेन्दू=शुक्रचन्द्रौ, सौरिं=शनिं, परिपश्यतः= विलोकयंतः । वा विकल्पार्थे अर्कोपरागः=सूर्योपरागः, जन्मनि सूर्यग्रहणमित्यर्थः । सादित्यसौरौ=सूर्ययुक्तशनौ भूमिकण्टके=लग्ने, सितसिन्धुजेक्षिते=शुक्र-चन्द्रदृष्टे यदि तदा, शिश्नस्य=लिङ्गस्य, विच्छेदः=शरीरसम्बन्धरहितः, सः (जातः) अयशाः=अपकीर्त्तिमान् च, उदीरितः=कथितः । बुधैरिति शेषः ।

अथेति । अथानन्तर्य्यार्थे । मङ्गले=कुजे, हृदि=चतुर्थे, भगे=सूर्ये 'भगं श्रीकाम माहात्म्यवीर्य्ययत्नार्ककीर्त्तिषु' इति कोशात् । मध्ये=दशमे, इत्येको योगः । अथवा अम्भोभवने=चतुर्थे, अर्कभौमयोः=सूर्यमङ्गलयोः सतोः' इति द्वितीयो योगः ।

किमथवा कीर्तिपे = दशमेशे, वारिपवीक्षितान्विते = चतुर्थेशसहितावलोकिते, इति तृतीयो योग: । एषु त्रिषु योगेषु अश्मघात: = प्रस्तरप्रहार: स्यादिति शेष: ।

सुधासागरेऽपि

"पाषाणघातोऽम्बुगतौ कुजार्को वाम्बेशयुक्दर्शितकर्मपे स्यात् ।
वाम्बाधिपे सूर्यजराहुयुक्ते कुजेक्षिते प्रस्तरघात: एव ।।" इति ।

चन्द्रमा या शुक्र से द्वितीय भाव में शनि हो और लग्न स्थित शुक्र व चन्द्रमा शनि को देखते हों ।

जन्म समय में यदि सूर्य ग्रहण हो और लग्न में सूर्य हो, साथ में शनि हो और उनको शुक्र व चन्द्रमा देखते हों ।

इन योगों में मनुष्य का लिंग कट जाता है और व्यक्ति अपयश का भागी होता है ।

चतुर्थ में मंगल एवं दशम में सूर्य हो ।

चतुर्थ स्थान में सूर्य, मंगल हों । दशमेश यदि चतुर्थेश से युक्त या दृष्ट हो तो ऐसे योगों में मनुष्य पर पत्थरों का प्रहार होता है ।

।। इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां आयुर्भावाध्याय: दशम: ।।

[११]

भाग्यभावाध्यायः

भाग्योदय योग :

लग्ने चरे तद्रमणे चरग्रहे
दृष्टे चराकाशचरैर्जनुष्मताम् ।
दैवोदयः स्याद्विषयान्तरे स्थिरे
मूर्त्तौ तदीशे स्थिरखेचरे स्थिरैः ॥१॥

खेटैः प्रदृष्टे नियतेस्तदोदयः
पुंसां स्वदेशे परथोदयो विधेः ।
सर्वत्र तद्वन्नवमे सदीक्षणा
धिक्ये ततो द्यूनचयोपगेऽस्तपे ॥२॥

किं भे विवाहोत्तरमुद्गमोविधे-
र्व्यङ्केशयोगे कलितेक्षितेऽमलैः ।
किं वा त्रिकोणेऽब्धवेक्षितान्विते
दैवोद्गमो नन्दनतो नृणां भवेत् ॥३॥

लग्न इति । खेटैरिति । किमिति च । चरे = मेषकर्कतुलामकराणामन्यतमे, लग्ने = तनौ, तद्रमणे = लग्नस्य स्वामिन्यपि, चरग्रहे = चन्द्रबुधशुक्राणामन्यतमे, चराकाशचरैः = चन्द्र-बुध-शुक्रैः, दृष्टे = विलोकिते सति तदा, जनुष्मतां = प्राणिनां, विषयान्तरे = परदेशे । दैवोदयः = भाग्योदयः स्यात् 'दैवं दिष्ट भागधेय-मित्यभिधानात्' । स्थिरे = वृष-सिंह-वृश्चिक-कुम्भानामन्यतमे राशौ, मूर्त्तौ = लग्ने, तदीशे = लग्नेशे, स्थिरखेचरे = मन्दगतिग्रहे, स्थिरैः खेटैः = स्थिरग्रहैर्मन्द-गतिग्रहैरित्यर्थः । प्रदृष्टे = विलोकिते सति तदा, पुंसां = नराणां, स्वदेशे = जन्मभूमौ, नियतेः = भाग्यस्य, उदयः = उद्गमः स्यात् । चेत्परथा = अन्यथा उक्तप्रकाराद्विपरीते भवति । अर्थाद् द्विस्वभावलग्ने मिश्रग्रहैर्युक्तेक्षित इत्यर्थः । तदा पुरुषाणां सर्वत्र = स्वदेशे परदेशे च विधेः = भाग्यस्य, उदयः स्यात् ।

तथा च जातकपरिजाते

"विदेशभाग्यं चरभे विलग्ने चरे तदीशे चरखेटदृष्टे।
स्थिरे स्वदेशे बहुभाग्ययुक्तः स्थिरैर्ग्रहैर्भूरिधनान्वितः स्यात् ।।" इति।

एवं ग्रन्थान्तरेऽपि

"भाग्यं यदा स्वामियुतेक्षितं च भाग्योदयः स्यान्निजदेशमध्ये।
अन्यग्रहैः पापशुभैर्युतं चेद् भाग्योदयस्तत्परदेशभूमौ ।।" इति।

तद्वदिति। नवमे सदीक्षणाधिक्ये=शुभग्रहदृष्टिबाहुल्ये तद्वत्तेनैव प्रकारेण सर्वत्र भाग्योदयः स्यात्।

तत इति। ततो योगविचारानन्तरम्। अस्तपे=सप्तमेशे, किं वार्थे, भे= शुक्रे, द्यूनोपचयगे=सप्तम-तृतीय-षष्ठ-दशमैकादशानामन्यतमगते सति, तदा विवाहोत्तरं=परिणयविधेरनन्तरं, विधेः=भाग्यस्य, उद्गमः=उदयः स्यात्।

तथोक्तं सुधासागरे

"सप्तमोपचये स्त्रीशे वा भृगौ भाग्यवान् भवेत्। विवाहात्परतः।" इति।

ध्यङ्क इति। ध्यङ्केशयोगे=पञ्चमेश-नवमेशयोगे, अमलैः=शुभग्रहैः, कलितेक्षिते= सहितावलोकिते भवति, इत्येको योगः। किं वा वार्थे। त्रिकोणे=पञ्चमनवमे, अङ्कपवेक्षितान्विते=नवमेशावलोकितसहिते भवति, इति द्वितीयो योगः। अनयोः, नृणां=पुरुषाणां, नन्दनतः=पुत्रात्, दैवोद्गमः=भाग्योदयः, भवेत्।

लग्न में चरराशि हो और उसका स्वामी भी चरग्रह (बुध, शुक्र, चन्द्रमा) से दृष्ट हो अथवा लग्नेश भी चरग्रह हो तो मनुष्य का भाग्य परदेश में उदित होता है।

लग्न में स्थिर राशि हो और लग्नेश स्थिर ग्रह (मन्दगति ग्रह) हो और स्थिर ग्रहों से दृष्ट हो तो स्वदेश में भाग्योदय होता है।

लग्न में द्विस्वभाव राशि हो और शुभाशुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो सर्वत्र भाग्योदय होता है।

नवम स्थान में शुभग्रहों की दृष्टि हो तो सब जगह भाग्योदय होता है।

तृतीय, षष्ठ, सप्तम, दशम या एकादश में शुक्र हो तो विवाह के पश्चात् भाग्योदय होता है।

पंचमेश व नवमेश का योग हो और वह शुभग्रहों से दृष्ट या युक्त हो।

यदि पंचम व नवम स्थान को नवमेश देखता हो या नवमेश से युक्त हो तो इन योगों में पुत्र से भाग्योदय होता है।

भाग्य स्थान का विचार लग्न व चन्द्रमा से करना चाहिए। इनमें से जो बलवान् हो, उसी को भाग्य भवन मानना चाहिए। ऐसा बादरायण का मत है जो सारावली में उल्लिखित है—

लग्नान्निशाकराद्वा यन्नवमं तद्गृहं भवेद् भाग्यम्।
अनयोर्यो बलयुक्तो भाग्यगृहं चिन्तयेदस्मात्॥

(सारावली)

सामान्यत: ऐसा माना जाता है कि नवम भाव स्वस्वामियुक्त दृष्ट हो तो स्वदेश में तथा अन्य ग्रहों से दृष्ट हो तो परदेश में भाग्योदय होता है—

वैद्यनाथ ने भाग्य भाव के विचार में कुछ विशेष बातें कही हैं—

(i) भाग्य भाव स्वस्वामियुक्त दृष्ट हो तो भाग्यप्रद होता है।

(ii) भाग्येश की अधिष्ठित राशि का स्वामी भी भाग्यकारक होता है। वह बलवान् हो तो भाग्य भी बलवान् और निर्बल हो तो भाग्य भी निर्बल होता है।

(iii) नवमेश ग्रह भाग्य का परिपाचक एवं लग्नेश भाग्य का बोधक होता है। अत: भाग्य विचार में लग्नेश का भी विचार करना चाहिए।

(iv) लग्नेश, नवमेश, भाग्यभवन को देखने वाले ग्रह, जिस राशि में हों, उस राशि के स्वामी यदि स्वराशि या उच्चराशि में हों तो सदैव भाग्योदय करते हैं। (जातकपारिजात, १४.६७)

भाई के धन से भाग्योदय योग :

तपोऽनुजेश्वरौ युतौ निरीक्षितौ शुभैः किमु।
शुभांशगौ तदोदयो विधेः सहोदरार्थतः॥४॥

तप इति। तपोऽनुजेश्वरौ=नवमेश-तृतीयेशौ, शुभैः=शोभनैः, युतौ=सहितौ, निरीक्षितौ=विलोकितौ भवतः। किमु वार्थे। शुभांशगौ=शुभग्रहनवांशगतौ यदि तदा, सहोदरार्थतः=भ्रातुर्धनेन, विधेः=भाग्यस्य, उदयः=उद्गमः, स्यादिति शेषः।

नवमेश एवं तृतीयेश दोनों ही शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हों। ये दोनों शुभग्रहों के नवांश में हों तो इन योगों में भाई के धन से भाग्योदय होता है।

इस विषय में भावकुतूहल में बताया गया है कि उक्त प्रकार से द्वितीयेश व भाग्येश स्थान सम्बन्ध करते हों या द्वितीय कारक से युक्त हो तो कुटुम्ब से भाग्योदय होता है।

इसी प्रकार सप्तमेश हो तो स्त्री से और षष्ठेश हो तो शत्रुओं से भाग्योदय होता है—

कुटुम्बाधिपतौ भाग्ये, भाग्येशे च कुटुम्बभे।
कुटुम्बकारकाक्रान्ते कुटुम्बाद् भाग्यवर्धनम्॥
कलत्रकारकाद्वापि कलत्रेशात्तथा वदेत्।
अरीशे नवमे वापि कारके शत्रुतः सुखम्॥
(जीवनाथ)

भाग्यवान् योग :

धनपे खपयुक्तलोकिते भवगे वाभ्रपवीक्षितान्विते।
भवपेऽङ्क उताङ्कपे धने पदपालान्वितलोकितेऽथवा॥५॥

नवमे गुरुभेक्षितान्वितेऽथ मतौ कायकुटुम्बपौ ततः।
गुरुपे भवगे किमङ्कपे धनयाते विधिमान्तरो भवेत्॥६॥

धनप इति। नवम इति च। धनपे=द्वितीयेशे, भवगे=लाभगते, खपयुक्तलोकिते=दशमेशसहितवीक्षिते सति, इत्येको योगः। वा विकल्पार्थे। भवपे=लाभेशे, अङ्के=नवमे, अभ्रपवीक्षिते=दशमेशदृष्टे सति, इति द्वितीयो योगः। उत वार्थे। अङ्कपे=नवमेशे, धने=द्वितीये, पदपालान्वितलोकिते=दशमेशसहितेक्षिते सति, इति तृतीयो योगः। नवमे=भाग्यस्थाने, गुरुभेक्षितान्विते=गुरु-शुक्रदृष्टयुक्ते सति, इति चतुर्थो योगः। अथ=आनन्तर्य्यार्थे। कायकुटुम्बपौ=लग्नेश-द्वितीयेशौ, मतौ=पञ्चमे भवतः, इति पञ्चमो योगः। ततः=योगविचारानन्तरम्। गुरुपे=नवमेशे, भवगे=लाभगते सति, इति षष्ठो योगः। कि वार्थे। अङ्कपे=नवमेशे, धनयाते=द्वितीयगते सति, इति सप्तमो योगः। एषु सप्तसु योगेषु जातो नरः, विधिमान्=भाग्यवान्, भवेत्=स्यात्।

तथोक्तं सुधासागरे

"धनाधीशे च लाभस्थे कर्मेशयुतदर्शिते।
वा भाग्याधिपतौ कोशे भाग्यवान् प्रभवेन्नरः॥
लाभाधीशे च धर्मस्थे कर्माधीशयुतेक्षिते।
भाग्योदयो नरो वाङ्केशेऽर्थे खेशयुतेक्षिते॥

लाभाधिपेऽङ्के धनपे च लाभेधर्माधिपेऽर्थे खपयुक्त दर्शिते।
स्याद्वा नराणां यदि निश्चितं महाभाग्योदयो भाग्यपतौ च लाभे ।।
बलिग्रहे सुहृत्पुत्राङ्गे स्याद् भाग्योदयोऽथवा।
भाग्यायेशसमायोगे वाङ्केशेऽङ्गेऽङ्गपेऽङ्कगे ।।" भाग्योदयः इति।

द्वितीयेश एकादश स्थान में हो और उसे दशमेश देखता हो या उससे योग करे।

एकादशेश नवम स्थान में हो और वह दशमेश से युक्त दृष्ट हो।

धन में नवमेश हो और वह दशमेश से युक्त दृष्ट हो।

नवम स्थान गुरु तथा शुक्र से युक्त दृष्ट हो।

पंचम स्थान में लग्नेश एवं द्वितीयेश हों। नवमेश लाभ स्थान में गया हो।

नवमेश धन भाव में गया हो।

इन योगों में मनुष्य भाग्यवान् होता है।

यहां ये सात भाग्यवान् योग बताए गए हैं। इनमें से एक भी योग हो तो भाग्य साथ देता है। अधिक योग पड़ें तो अधिक फल मिलता है।

सामान्यतः नवम भाव में नवमेश, गुरु, बुध को छोड़कर शेष ग्रह अच्छा फल नहीं देते हैं। पापग्रह नवमस्थ होकर प्रायः व्याधि, बन्धन एवं शोक देते हैं।

भाग्यहीन योग :

वधे बन्धोः कान्ते किमु गतबले लग्नदयिते
किमङ्के पङ्कैश्चेद्विधिभवनपे वीर्य्यरहिते।
उतारिस्थाङ्केशं रिपुदिविषदो नीचगखगा
निरीक्षन्ते जन्तोर्जनुषि स भवी स्याद्विधिवियुक् ।।७।।

वध इति। यस्य जन्तोः=जन्मितः, जनुषि=जन्मकाले, बन्धोः कान्ते=चतुर्थेशे वधे=अष्टमे सति, तदा, स भवी=प्राणी, विधिवियुक्=भाग्यरहितः स्यात्। किमु इति। किमु वार्थे। लग्नदयिते=लग्नस्वामिनि, गतबले=बलरहिते सति तदा विधिवियुक् स्यादिति सर्वत्र संबध्यते।

किमिति। किं वार्थे। अङ्के=नवमे, पङ्कैः=पापग्रहैः, विधिभवनपे=नवमेशे, वीर्य्यरहिते=बलवर्जिते सति तदा जातो भाग्यहीनो भवेत्।

उतेति। उत वार्थे। अरिस्थाङ्केशं=षष्ठगतनवमेशं, रिपुदिविषद:=शत्रव:, नीचगखगा:, नीचराशिगतग्रहा वा यदि निरीक्षन्ते=विलोकयन्ति, यदि तदा जातो भाग्यहीन: स्यात्।

चतुर्थेश अष्टम स्थान में हो। लग्नेश निर्बल हो।

नवम में पापग्रह हो और नवमेश निर्बल हो। नवमेश षष्ठ स्थान में गया हो और उसे शत्रुनीचराशिगत ग्रह देखते हों।

इन चार योगों में मनुष्य भाग्यहीन होता है।

सामान्यत: निम्नलिखित स्थितियां भाग्य को कमजोर बनाती हैं—

(i) भाग्येश नीचशत्रुगत या अस्त या त्रिक में हो या पापयुक्त दृष्ट हो।

(ii) भाग्य भवन में पापग्रह हो या भाग्यगत ग्रह नीच शत्रु नवांश में हो तो भाग्यहीन होता है। लेकिन नवमस्थ पापी ग्रहों को शुभयोग या दृष्टि मिले तो मनुष्य भाग्यवान् होता है।

(iii) नवमेश या नवम भाव यदि शत्रुग्रहों या पापग्रहों के मध्य में हो तो परसेवारत होता है।

पुण्यवान् योग :

शुभान्त:स्थे सौख्ये किमु बुधभयोर्बान्धवगयो:
किमिज्ये मृद्वंशे किमुत तपने भोजनमिते।
तप:स्थाने यद्वोशनसि लवके गोपुरमुखे-
ऽथसद्दृष्ट्याधिक्ये सति सुकृतगेहे सुकृतवान्॥८॥

शुभेति। सौख्ये=चतुर्थे, शुभान्त:स्थे:=शुभमध्यगते सति, इत्येको योग:। किमु वार्थे। बुधभयो:=बुध-शुक्रयो:, बान्धवगयो:=चतुर्थगतयो: सतो:' इति द्वितीयो योग:। किं वार्थे। इज्ये=गुरौ, मृद्वंशे=षष्ठ्यांशानां मध्ये कोमलांशकगते सति, इति तृतीयो योग:, किमुत वार्थे। तपने=रवौ, भोजनमिते=भोजनावस्थां गते तप:स्थाने=नवमस्थाने सति, इति चतुर्थो योग:। यद्वा=विकल्पार्थे। उशनसि=शुक्रे, गोपुरमुखे लवके, पारिजातादि दशांशानां मध्ये, गोपुरप्रभृतौ अंशे, इति पञ्चमो योग:। अथानन्तर्य्यार्थे। सुकृतगेहे=नवमे, सद्दृष्ट्याधिक्ये=शुभदृष्टि-प्राचुर्य्ये सति, इति षष्ठो योग:। एषु षट्सु योगेषु जातो नर: सुकृतवान्=पुण्यवान् भवेदिति शेष:।

चतुर्थ भाव शुभग्रहों के मध्य में गया हो।

चतुर्थ स्थान में बुध व शुक्र स्थित हों।

गुरु व शुक्र मृदु षष्ठ्यंश में गए हों।

नवम में भोजनावस्था में स्थित सूर्य हो।

शुक्र गोपुरादि अंशों में गया हो। नवम स्थान में शुभग्रहों की अधिक दृष्टि हो।

इन सभी योगों में उत्पन्न मनुष्य पुण्यवान् होता है।

नवम स्थान ही पुण्य व तप स्थान है। यही धर्म स्थान है। इस पर शुभ प्रभाव व्यक्ति को धार्मिक व पुण्यात्मा बनाएगा। कुछ विशेष योग यहां बताए जा रहे हैं—

(i) नवमेश सिंहासनांश में हो और लग्नेश या दशमेश से दृष्ट हो तो व्यक्ति महादानी होता है।

(ii) गुरु नवम भाव में और नवम भाव का नवांशेश भी नवम में हो, शुभग्रह उसे देखते हों तो जातक गुरुभक्त होता है।

(iii) नवम में पापग्रह हो तो मनुष्य पापी होता है।

(iv) नवमेश पापग्रह के साथ हो या क्रूर षष्ठ्यंश में हो तो व्यक्ति धर्महीन होता है।

(देखें, जातक पारिजात १४.९१—१०३)

॥ इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां भाग्यभावाध्यायः एकादशः ॥

•

[१२]

कर्मभावाध्याय:

राजाधिराज योग :

षड्भिर्नाकचरैर्निजोच्चगृहगैः किं कोणकान्तेक्षिते
मित्रे मानविभौ वियत्युदकपे वा व्यस्तकेन्द्रस्थयोः ।
लग्नेशान्वितयोर्नवात्मजपयोर्वेन्दोर्ज्ञकाव्यौ सुखे
ब्रध्नार्को सहजे भवेऽमरगुरौ राजाधिराजो जनः ॥१॥

षड्भिरिति । षड्भिः = षट्संख्याकैः, नाकचरैः = ग्रहैः, निजोच्चगैः = आत्मीय-तुङ्गगतैः, सद्भिः, तदा जातो जनः राजाधिराजः = सार्वभौमः चक्रवर्ती सम्राड् वा । भवेदिति शेषः ।

जातकपारिजातेऽपि

"षड्भिर्ग्रहैरुच्चसमन्वितः स्याद्राजाधिराजो बहुदेशभर्ता ।" इति ।

किमिति । किं वार्थे । मानविभौ = दशमेशे, मित्रे = चतुर्थे, उदकपे = चतुर्थेशे, वियति = दशमे, कोणकान्तेक्षिते = पञ्चमनवमेशविलोकिते सति तदा, राजाधिराजः स्यादिति सर्वत्र सम्बध्यते ।

वेति । वा विकल्पार्थे । लग्नेशान्वितयोः = लग्नेशसहितयोः, नवात्मजपयोः = नवमेशपञ्चमेशयोः, व्यस्तकेन्द्रस्थतयोः = सप्तमरहितकेन्द्रस्थितयोः, लग्न-चतुर्थ-दशमगयोरित्यर्थः । यदि तदा राजाधिराजः स्यात् ।

तथोक्तं सुधासागरे

"द्यूनोनकेन्द्रे तनुजाङ्कनाथौ लग्नेशयुक्तौ ।" इति ।

वेति । वा विकल्पार्थे । इन्दोः = चन्द्राक्रान्तराशेः सकाशात्, सुखे = चतुर्थे, ज्ञकाव्यौ बुधशुक्रौ, सहजे = तृतीये, ब्रध्नार्की = सूर्यशनी, भवे = लाभे, अमरगुरौ = बृहस्पतौ सति, तदा राजाधिराजः स्यात् ।

तथोक्तं सुधासागरे

"चन्द्रात्सोत्थे च शन्यर्को तुर्ये ज्ञाच्छौ भवे गुरौ ।" इति ।

निम्नलिखित योगों में जातक राजाधिराज, सार्वभौम, सर्वातिशायी राजा या चक्रवर्ती होता है—

(i) कोई छः ग्रह अपनी उच्चराशि में हों ।

(ii) चतुर्थेश दशम में व दशमेश चतुर्थ में हो और त्रिकोणेश से दृष्ट हों।

(iii) लग्न, चतुर्थ या दशम में लग्नेश सहित त्रिकोणेश हों।

(iv) चन्द्रमा से चतुर्थ भवन में बुध तथा शुक्र अवस्थित हों, तृतीय में सूर्य व शनि हों और एकादश स्थान में बृहस्पति हो। ये चार राजाधिराज योग कहे गए हैं।

जातकपारिजात एवं सर्वार्थचिन्तामणि में भी ६ ग्रहों की उच्च स्थिति में राजाधिराज योग माना है।

केन्द्र व त्रिकोण अथवा इनके स्वामियों का परस्पर सम्बन्ध सदैव श्रेष्ठताधायक होता है, ऐसा पाराशर मत सर्वत्र प्रसिद्ध है। अत: श्रेष्ठ केन्द्र स्थान, दशम एवं दशमेश का सुख एवं सुखेश से स्थान परिवर्तनपरक क्षेत्र सम्बन्ध बनेगा एवं दोनों का दृष्टि सम्बन्ध भी होगा। साथ में त्रिकोणेश इन्हें देखें तो अवश्य ही सम्पत्ति एवं वैभव की झड़ी लगेगी। केन्द्र स्थान स्वयं विष्णु स्वरूप हैं एवं त्रिकोण स्थान लक्ष्मी रूप हैं। अत: दोनों का कथमपि सम्बन्ध श्रीविधायक होगा। इस योग के विषय में अन्यत्र कहा गया है कि दशमेश पंचम में हो और चतुर्थेश दशम में हो, साथ ही त्रिकोणेश इन्हें देखते हों तो भी उक्त राजयोग होता है—

'वास्पदपे सुतेऽम्बुपे खे कोणनाथेन विलोकिते वा।'

(गिरिधर भट्ट)

कल्याण वर्मा इस स्थान के विषय में भी यही कहते हैं कि लग्न एवं चन्द्रमा से दशम स्थान का बलाबलानुसार निर्णय कर कर्मभाव का निर्णय करना चाहिए।

उत्तरकालामृत में राजयोग के कुछ विशेष तत्त्व बताए गए हैं—

(i) स्वोच्च, स्व, मित्र, मूलत्रिकोण राशि में स्थित ग्रह।

(ii) केन्द्र में या वर्गोत्तम नवांश में स्थित ग्रह।

(iii) शुभ दृष्ट युक्त ग्रह एवं शुभ मध्यगत ग्रह।

(iv) केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश और त्रिकोणगत ग्रह।

(v) भाव मध्य के समीप आरोही ग्रह।

ये ग्रह यदि परस्पर सम्बन्ध रखते हों तो सदैव राजयोग कारक होते हैं—

स्वोच्चस्वर्क्षसुहृत् त्रिकोणगृहगाः केन्द्रोत्तमांशान्विताः।
सौम्यैरीक्षितयुक्तमध्यमगता मूलत्रिकोणाश्रिताः॥
भावारोहणखेचराः शुभकराः केन्द्रत्रिकोणाधिपाः।
सम्बन्धेन परस्परं सुयशसं कुर्वन्ति राजोत्तमम्॥
(उत्तरकालामृत, ग्रहयोग)

सम्बन्ध एवं परस्पर कारकत्व का विचार अवश्य करना चाहिए। कारकत्व का विचार सारावली में किया गया है। तदनुसार राजयोग कारक इन ग्रह स्थितियों में नीच कुलोत्पन्न व्यक्ति प्रधानता को एवं उच्च कुलोत्पन्न व्यक्ति नृपत्व को प्राप्त करता है—

(i) स्वोच्च त्रिकोण राशिगत केन्द्र स्थित ग्रह।
(ii) कहीं भी स्वमित्रोच्च राशि में स्थित या इन नवांशों में स्थित ग्रह।
(iii) लग्न एवं चतुर्थ में स्थित ग्रह।

राजयोग कथन :

सल्लग्नेशैरुपचयगृहगैः किं विधीशांशकेशे
मित्रे मन्त्रे किमहिकुजभपैः पञ्चमे वा विधीशे।
केन्द्रे सिंहासन उदयगृहे चेच्चरे वा स्थिराङ्के-
शे खे केन्द्रेऽदितिसुतसचिवे सम्भवे यस्य राजा॥२॥

सदिति। यस्य पुंसः, सम्भवे=जन्मनि, सल्लग्नेशैः=शुभग्रहलग्नाधिपैः, उपचयगृहगैः=तृतीयषष्ठदशमैकादशगतैः सद्भिः, तदा सः, राजा=नृपः 'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः' इति विश्वः भवेदिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"राजा चोपचयस्थाः स्याल्लग्नाधीशशुभग्रहाः।" इति।

किमिति। किं वार्थे। विधीशांशकेशे=नवमेशो यस्मिन्नवांशे भवति तस्य यः स्वामी तस्मिन्, मित्रे=चतुर्थे, मंत्रे=पञ्चमे वा भवति यदि तदा राजा भवेदिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

किमिति। किं वार्थे। अहिकुजभपैः=राहु-भौम-चन्द्रैः, पञ्चमे सद्भिः तदा राजा स्यात्।

वेति। वा विकल्पार्थे। उदयगृहे=लग्ने, चरे=मेषकर्कतुलामकराणामन्यतमे, विधीशे=नवमेशे केन्द्रे सिंहासनांशे चेद्यदि तदा राजा भवेत्।

तथोक्तं सुधासागरे

"चरोदये भाग्यपतौ च सिंहासने च केन्द्रे प्रभवेत्सराजा।" इति।

वेति। वा विकल्पार्थे। स्थिराङ्गेशे = वृषसिंहवृश्चिककुम्भान्यतमलग्नस्वामिनि, खे = दशमे, अदितिसुतसचिवे = जीवे, केन्द्रे सति तदा जातः, राजा भवेत्।

निम्नलिखित योगों में व्यक्ति राजा होता है—

(i) यदि लग्नेश एवं शुभग्रह ३, ६, १०, ११ भावों में स्थित हों।

(ii) नवमेश की नवांश राशि का स्वामी चतुर्थ या पंचम में गया हो।

(iii) पंचम स्थान में राहु, मंगल एवं चन्द्रमा स्थित हों।

(iv) लग्न में चरराशि हो और भाग्येश केन्द्र में सिंहासनांश में गया हो।

(v) लग्न में स्थिर राशि हो, दशम में लग्नेश स्थित हो और केन्द्र में बृहस्पति गया हो।

सर्वार्थचिन्तामणि में कहा गया है कि मंगल, राहु एवं चन्द्रमा द्वितीय, तृतीय या पंचम स्थान में हों तो राजा होता है—

निशाकरः सभौमस्तु वित्ते वा विक्रमेऽपि वा।
पंचमे राहुसंयुक्ते राजराजो भवेन्नरः॥
(सर्वार्थचिन्तामणि)

सिंहासनांश से तात्पर्य है कि ग्रह अपने द्रेष्काण, नवांश, स्वराशि, मूलत्रिकोण आदि में स्थित होकर दशवर्गों में से ५ में श्रेष्ठ राशियों (स्वोच्च मूल त्रिकोण मित्रादि) में हो तो सिंहासनांश कहा गया है। ये पारिजातादि दश संज्ञाएं होती हैं जो दशवर्ग कुण्डली में देखी जाती हैं।

अन्य राजयोग :

केन्द्रायकोणोपगतौ सिताच्यौं यानेशयुक्तावुत तीर्थनाथः।
स्वर्क्षेऽथवा भेज्ययुतो हितस्थो राजा भवेद्वाहनवृन्दनाथः॥३॥

केन्द्रेति। यानेशयुक्तौ = चतुर्थेशसहितौ, सिताच्यौं = शुक्र-गुरू, केन्द्रायकोणोपगतौ = केन्द्र-लाभ-त्रिकोणगतौ, यदि तदा, वाहनवृन्दनाथः = वाहनसमूहस्वामी, राजा = नृपः, भवेत्।

उतेति। उत वार्थे। तीर्थनाथः = नवमेशः, स्वर्क्षे = स्वराशौ नवम इत्यर्थः। भवति यदि तदा, वाहनवृन्दनाथः, राजा, भवेदिति सर्वत्र सम्बध्यते।

अथवेति। अथवा वार्थे। भेज्ययुत:=शुक्र-गुरुसहित:, हितस्थ:=चतुर्थस्थित:, तीर्थनाथ:, इत्यनुषङ्ग:। तदा, वाहनव्यूहनाथ, राजा भवेत्।

चतुर्थेश, गुरु एवं शुक्र ये तीनों किसी भी प्रकार से केन्द्र, त्रिकोण या एकादश स्थान में गए हों।

नवम स्थान का स्वामी नवम भाव में ही स्थित हो।

गुरु एवं शुक्र से युक्त नवमेश चतुर्थ स्थान में स्थित हो।

इन योगों में मनुष्य अनेक वाहनों का अधिपति एवं राजा होता है।

अन्योन्यराशिं समुपागयोर्नव-
मानेशयोर्वोदयकर्म्मनाथयोः ।
मर्त्येन्द्रयोगौ कथयन्ति कोविदा
जातः प्रसिद्धो विजयी च सङ्गरे ॥४॥

अन्योन्येति। नवमानेशयो:=नवमेश-दशमेशयो:, अन्योन्यराशिं समुपागयो:= धर्मेश: कर्मभावे, कर्मेशो धर्मभावे इत्येवं यदि स्यात्, तदा तौ मर्त्येन्द्रयोगौ इति। राजयोगकारकौ स्त इत्यर्थ:। इति कोविदा:=पण्डिता:, कथयन्ति=ब्रुवन्ति। अत्र जात: प्रसिद्ध:=विख्यात:, सङ्गरे=युद्धे च विजयी भवेदिति शेष:।

तथा च भगवान्पराशर:

"धर्म्मकर्माधिनेतारावन्योन्याश्रयसंस्थितौ ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत् ॥" इति।

वेति। वा विकल्पार्थे। उदयकर्मनाथयो:=जन्मलग्नेशदशमेशयो:, अन्योन्यराशिं समुपागयो:, इत्यनुषङ्ग:। लग्नेश: कर्म्मणि, कर्म्मेशो लग्ने भवति। यदि तदा, मर्त्येन्द्रयोगौ=राजयोगौ, कोविदा:=पण्डिता:, कथयन्ति, ब्रुवन्ति। अनयो: जात:, प्रसिद्ध:=विख्यात:, सङ्गरे=युद्धे च विजयी भवेत्।

फलदीपिकायामपि

"कर्म्मेशो नवमगतश्च भाग्यनाथो मध्यस्थो भवति नृपो जनै: प्रशस्त:।" इति।

दशम स्थान में नवमेश एवं नवम में दशमेश हो।

दशम में लग्नेश एवं लग्न में दशमेश हो।

इन दो योगों में व्यक्ति विख्यात एवं सर्वत्र विजयी होता है।

उक्त योग पाराशरी में बताए गए हैं। वहां ये प्रसिद्ध चार राजयोग बताए हैं। इनमें श्रेष्ठ केन्द्र एवं श्रेष्ठ त्रिकोण के सम्बन्ध पर आधारित पद्धति अपनायी गयी है। राजयोगों के तार्किक विवेचन के

लिए लघुपाराशरी बहुत उत्तम ग्रन्थ है। एक प्रकार से वह समस्त पाराशर मत का सार संक्षेप है। उसका अध्ययन नूतन विद्यार्थियों से लेकर बड़े विद्वान् तक करते हैं। एतदर्थ हमारी **लघुपाराशरी विद्याधरी** देखें। वहां बताए प्रसिद्ध चार राजयोग इस प्रकार हैं—

(i) लग्नेश व दशमेश दशम भाव में हों।
(ii) लग्नेश व दशमेश लग्न में स्थित हों।
(iii) नवमेश व दशमेश दशम भाव में हों।
(iv) नवमेश व दशमेश नवम भाव में हों।

राजतुल्य योग :

काये कलेशे जनके कवौ जले
जीवे स्वभोच्चोपगते पतङ्गजे।
यद्वाऽम्बरादासहजोपगैः शुभै
र्वा षट् स्वभस्थाः सदृशो नरेशितुः॥५॥

काय इति। कलेशे = चन्द्रे, काये = लग्ने, कवौ = शुक्रे, जनके = दशमे, जीवे = गुरौ 'जीवः प्राणिनि गीष्पतौ' इति विश्वः। जले = चतुर्थे, पतङ्गजे = शनौ, स्वभोच्चोपगते = स्वराशि स्वोच्चराशिगते यदि तदा जातः, नरेशितुः = नृपस्य, सदृशः = तुल्यः भवेदिति शेषः।

तथोक्तं वेङ्कटेशेन

"लग्ने चन्द्रे गुरौ सौख्ये कर्मस्थे भृगुनन्दने।
स्वोच्चस्वर्क्षस्थिते मन्दे नृपतुल्यो भवेन्नरः॥" इति।

यद्वेति। यद्वा वार्थे। अम्बरात् = दशमात्, आसहजोपगैः = दशमैकादशद्वादश-लग्नद्वितीय तृतीयगतैः, शुभैः = शोभनग्रहैः सद्भिः, चेत्तदा, नराधिपः सदृशो भवेदिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

तथोक्तं वेङ्कटेशेन

"दशमैकादशेरिःफलग्नवित्तसहोत्थभे।
ग्रहास्तिष्ठन्ति चेत्सौम्या नृपतुल्यो भवेन्नरः॥" इति।

वेति। वा विकल्पार्थे। षड्ग्रहाः, स्वभस्थाः = स्वराशिगता यदि तदा नराधिप-सदृशो भवेत्।

तथा च ग्रन्थान्तरे

"स्वक्षेत्रगैर्भूपतितुल्यजातः" इति। षड्भिरित्यध्याहार्य्यः।

लग्न में चन्द्रमा हो, दशम स्थान में शुक्र हो, चतुर्थ में बृहस्पति हो और शनि स्वराशि या स्वोच्च में हो।

दशम भाव से तीसरे भाव तक अर्थात् १०, ११, १२, १, २, ३ भावों में सभी शुभग्रह हों।

कोई छः ग्रह स्वराशि में स्थित हों।

इन सभी योगों में व्यक्ति राजा के समान वैभवशाली एवं सुखी होता है।

भूमिपति योग :

> **सप्तग्रहैः स्वर्क्षगतैस्ततः सुहृद्-**
> **भस्थैर्यदा सप्तखगैः किमम्बुगौ।**
> **सौरासृजौ राजनि राज्यभास्कर-**
> **भार्याः कुलीराङ्ग इलापतिर्भवेत्॥६॥**

सप्तेति। सप्तग्रहैः = रव्यादिभिः सप्तभिर्ग्रहैः, स्वर्क्षगतैः = स्वराशिगतैः सद्भिः, तदा जातः, इलापतिः = भूपतिः भवेत्।

तथोक्तं सुधासागरे

"भवेत्तु भूपतिः स्वभस्थिताश्च सप्तखेचराः।" इति।

तत इति। ततस्तदनन्तरम्। सप्तखगैः = रव्यादिसप्तग्रहैः, सुहृद्भस्थैः = मित्रराशिस्थितैः, सद्भिः तदा जातः, इलापतिर्भवेदिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

किमिति। किं वार्थे। सौरासृजौ = शनि-भौमौ, अम्बुगौ = चतुर्थगतौ, राजनि = दशमे, राज्यभास्करभार्याः = बुध-सूर्य-शुक्र-गुरवः, कुलीराङ्गे = कर्कलग्ने सति तदा जातः, इलापतिः = भूपतिः, भवेत्।

कोई सात ग्रह स्वराशि में स्थित हों।

कोई सात ग्रह मित्र राशि में स्थित हों।

कर्क लग्न में जन्म हो, चतुर्थ में स्वोच्च राशि में शनि हो, मंगल चतुर्थ स्थान में हो, दशम में सूर्य, बुध, शुक्र एवं बृहस्पति हो।

इन सभी योगों में व्यक्ति बड़ी भूमि का स्वामी होता है।

ये योग राहु-केतु को छोड़कर शेष सातों ग्रहों से बनते हैं। इस विषय में मन्त्रेश्वर ने कुछ भिन्न परिपाटी अपनायी है—

(i) यदि कोई तीन ग्रह स्वोच्चगत होकर केन्द्र में स्थित हों।

(ii) कोई तीन ग्रह स्वराशिगत होकर केन्द्र में हों।

इन दोनों योगों में व्यक्ति भूमिपति एवं प्रसिद्ध होता है।

(iii) यदि पांच या उससे अधिक ग्रह स्वोच्च स्वराशिगत होकर केन्द्र में हों तो व्यक्ति छोटे परिवार में उत्पन्न होकर पृथ्वीपति एवं हाथी-घोड़ों से युक्त होता है।

त्र्याद्यैः खेटैः स्वोच्चगैः केन्द्रसंस्थैः,
स्वर्क्षस्थैर्वा भूपतिः स्यात् प्रसिद्धः।
पंचाद्यैस्तैरन्यवंशप्रसूतो-
ऽप्युर्वीनाथो वारणाश्वौघयुक्तः॥

(फलदीपिका)

सर्वार्थचिन्तामणि में कहा गया है कि—

(i) यदि वक्रीग्रह से युक्त होकर, मलत्रिकोण या मित्र या स्वराशि में तीन से अधिक ग्रह हों तथा कहीं भी हों तथा उनके साथ कोई एक ग्रह उच्चग्रह हो तथा कोई भी ग्रह नीच नवांश में न हो तो व्यक्ति राजा के समान होता है।

(वेंकटेश)

राजकुलोत्पन्न राजयोग :

कर्के कलानिधिगुरू किमु कन्यकायां
ग्लौकोविदावुत निजोच्चगतौ कवीज्यौ।
केन्द्रत्रिकोण उतभे दिवि जीव उच्चे
केन्द्रे कुपः कुपतिजः सचिवोऽन्यजातः॥७॥

कर्क इति। कर्के=कर्कटराशौ, कलानिधिगुरू=चन्द्र-जीवौ, स्याताम्, यदि तदा कुपतिजः=भूपतिपुत्रः, कुपः=भूपः, अन्यजातः=इतरवंशजः, सचिवः=मंत्री 'सचिवो भृतकेऽमात्ये' इति हैमः। भवेदिति शेषः।

किमु इति। किमु वार्थे। कन्यकायां=षष्ठराशौ, ग्लौकोविदौ=चन्द्र-बुधौ भवतः। यदि तदा, कुपतिजः कुपः, अन्यजातः सचिवः, भवतीति सर्वत्रानुवृत्तिः।

तथा च ढुण्ढिराजः

"स्वोच्चस्थितः सोमसुतः ससोमः कुर्य्यान्नरं मागधदेशराजम्।
कलाधिशाली बलवान् कलावान् करोति भूपं शुभधामसंस्थः॥" इति।

उतेति। उत वार्थे। निजोच्चगतौ=स्वकीयतुङ्गराशि प्राप्तौ, कवीज्यौ=शुक्र-जीवौ, केन्द्रत्रिकोणे भवनश्चेत्तदा कुपतिजः कुपः, अन्यजातः सचिवः, भवेत्।

तथा च ढुण्ढिराजः

"स्वतुङ्गगेहोपगतौ सितेज्यौ केन्द्रत्रिकोणेषु गतौ भवेताम्।

प्रसूतिकाले कुरुते नृपालं नृपालजातं सचिवेन्द्रमान्यम्॥" इति।

उतेति। उत वार्थे। भे = शुक्रे, दिवि = दशमे, जीवे = गुरौ 'उतथ्यावरजो जीवः' इति विश्वः। उच्चे = स्वतुङ्गे कर्कराशावित्यर्थः। केन्द्रे भवति तदा जातः कुपतिजः कुपः, अन्यजातः सचिवः, भवेत्।

तथा च सारावल्याम्

"केन्द्रस्वोच्चमुपेतः सुरमंत्री दशमगो यदा शुक्रः।

नूनं सः भवति पुरुषः समस्तपृथ्वीश्वरः ख्यातः॥" इति।

कर्क में चन्द्रमा व बृहस्पति हों। कन्या में चन्द्रमा व बुध हों।

केन्द्र या त्रिकोण में उच्चराशिगत शुक्र व बृहस्पति हों।

दशम में शुक्र व केन्द्र में स्वोच्चगत बृहस्पति हो।

इन योगों में उत्पन्न व्यक्ति यदि राजकुल में पैदा हुआ हो तो राजा और अन्य वंश में उत्पन्न पुरुष सचिव होता है।

राजपूज्य योग :

सामन्तोऽम्बेशे स्वभे सौम्यशेश-

युक्ते पूज्यो भूभुजां जीवदृष्टे।

शेशे पौरे वा निशान्तेश्वरेऽङ्गे

धीमद्दृष्टे किं भवे भाग्यपाले॥८॥

सामन्त इति। सौम्यशेशयुक्ते = शुभग्रहेण नवमेशेन च सहिते। अम्बेशे = चतुर्थेशे, स्वभे = स्वराशौ, चतुर्थभवन इत्यर्थः। यदि तदा सामन्तः = स्वदेशपार्श्ववर्ती राजा माण्डलिको वा भवेदिति शेषः।

पूज्य इति। जीवदृष्टे = गुरुविलोकिते, शेशे-नवमेशे, पौरे = लग्ने सति, तदा जातः, भूभुजां = राज्ञां, पूज्यः = मान्यः, भवेदिति शेषः।

उदयभास्करेऽपि

"नवमपे तनुगे गुरुवीक्षिते नृपपतिः।" इति।

वेति। वा विकल्पार्थे। धीमद्दृष्टे = गुरुविलोकिते, निशान्तश्चरे = चतुर्थेशे, अङ्गे = लग्ने सति, तदा जातः भूभुजां पूज्यः स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

इहोदयभास्करकारेण त्वेष योगो भिन्न उक्तः, स तु यथा—

"..........................यदि वाम्बुपतिस्तनौ।

नवपतिर्द्वितये स्वगृहेक्षकं सकलसम्पदितो धरणीपतिः॥" इति।

किमिति। किं वार्थे। भाग्यपाले=नवमेशे, भवे=एकादशे सति, तदा जातः, भूभुजां पूज्यः स्यात्।

चतुर्थ स्थान में चतुर्थेश हो और उसके साथ शुभग्रह एवं नवमेश भी हो तो व्यक्ति सामन्त, मण्डलाधीश, जिलाधीश बड़ा अधिकारी होता है।

लग्न में स्थित नवमेश को बृहस्पति देखता हो।

लग्न में स्थित चतुर्थेश को बृहस्पति देखता हो।

अथवा नवम स्थान का अधिपति एकादश भाव में गया हो।

इन योगों में मनुष्य राजपूज्य, राजा द्वारा सम्मानित होता है।

सिंहासन प्राप्ति योग :

स्वाङ्गाम्बुनाथैः स्वभगैः कलेवरे
भाग्येशि सिंहासननागनायकः।
सिंहासनाप्तिः शकपौरपैः खगैः
खेशः पुरे किं पुरमीक्षते खपः ॥६॥

स्वेति। स्वाङ्गाम्बुनाथैः=धन-लग्न-सुखस्वामिभिः, स्वभगैः=निजराशिगतैः, भाग्येशि=नवमेशे, कलेवरे सति तदा जातः, सिंहासननागनायकः=राजाधिष्ठेयसिंहासनं राज्यकार्येषु यद्भद्रासनं तस्य नागानां हस्तिनां च स्वामी स्यादिति शेषः।

उदयभास्करेऽपि

"तदनु कोशवपुःसुखपाः स्वभे नवपतिस्तनुगो गजवाहनः।" इति।

सिंहेति। शकपौरपैः=नवमेश-सुखेश-लग्नेशैः, खगैः=दशमगतैः, खेशः=दशमेशः, पुरे=लग्ने, किमथवा, खपः=दशमेशः, पुरं=लग्नं 'पुरं पुरि शरीरे च' इति कोशात्। ईक्षते=पश्यति, यदि तदा, सिंहासनाप्तिः स्यात्।

योगोऽयं सुधासागरे कश्चिद्भिन्नः प्रोक्तः, स तु तथा—

"धर्म्माङ्गसुखपा माने बलिखेशयुताः।" इति।

द्वितीयेश, लग्नेश व चतुर्थेश ये तीनों यदि अपनी राशि में स्थित हों और भाग्येश लग्न में हो।

इस योग में व्यक्ति सिंहासन, मान्य अधिकार युक्त स्थान, पद एवं हाथियों (वाहन) से युक्त होता है।

नवमेश, लग्नेश व चतुर्थेश ये तीनों यदि दशम स्थान में गए हों

और दशमेश लग्न में हो या लग्न को दशमेश देखे तो इस योग में भी व्यक्ति को सिंहासन की प्राप्ति होती है।

पितृसुख योग :

सत्यभ्रपे सौम्ययुतेक्षितेऽथवा
सौम्यान्तरे वेज्यसितान्विते खपे।
किं गोपुरादौ पितृकारके ततः
पारावतादौ पितृपे पितुः सुखम् ॥१०॥

सतीति। अभ्रपे=दशमेशे, सति=शुभग्रहे, सौम्ययुतेक्षिते=शोभनग्रहसहित-विलोकिते, अथवा सौम्यान्तरे=शुभग्रहयोरन्तराले, वा=अथवा, खपे=दशमेशे, इज्यसितान्विते=गुरु-शुक्रसहिते सति तदा पितुः=जनकस्य, सुखं=सौख्यं, स्यादिति शेषः।

किमिति। किं वार्थे। पितृकारके=जनककारकग्रहे (रवौ) गोपुरादौ=गोपुरादि-दशवर्गगते सति तदा पितुः सुखं स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः।

तथोक्तं सुधासागरे

"वा गोपुरादौ पितृकारके भवेत्।" इति।

तत इति। ततस्तदनन्तरम्। पितृपे=दशमेशे, पारावतादौ=पारावतादि दशवर्ग-गते सति तदा, पितुः सुखं स्यात्।

तथोक्तं सुधासागरे

"पारावतादौ पितृपेपितुः सुखम्।" इति।

दशमेश यदि शुभग्रह हो और वह शुभग्रह से युक्त व दृष्ट हो।
दशम स्थान का स्वामी शुभग्रहों के मध्य में गया हो।
दशमेश यदि गुरु व शुक्र से युक्त हो।
यदि पितृकारक ग्रह सूर्य गोपुराद्यंशों में गया हो।
दशमेश यदि पारावतादि अंशों में स्थित हो।
इन सभी योगों में जातक को अपने पिता का सुख खूब मिलता है।

पिता के व्यभिचार योग :

पदारिपालौ पदगौ परावला
रतः पिताऽस्याप्य सपावकेऽङ्गपे।
स्वगेऽथवाऽर्थे सखलैः स्वसप्तमा-
रिपैः पिता सज्जनकामिनीरतः ॥११॥

पदेति । पदारिपालौ = दशमेशषष्ठेशौ, पदगौ = दशमगतौ, यदि तदा, अस्य जातस्य, पिता = जनकः, पराबलारतः = परस्त्रीगामी, स्यादिति शेषः ।

अथेति । अथानन्तर्य्यार्थे । सपावके = पापग्रहसहिते, अङ्गपे = लग्नेशे, स्वगे = धनस्थानगते सति, तदा जातस्य, पिता = जनकः, सज्जनकामिनीरतः = साधुजन-स्त्रीगामी स्यादिति शेषः ।

अथवेति । अथवा वार्थे । सखलैः = पापसहितैः, स्वसप्तमारिपैः = धनेश-सप्तमेश-षष्ठेशैः, अर्थे = द्वितीये सद्भिः तदा जातस्य, पिता सज्जनकामिनीरतः स्यात् ।

यदि दशमेश एवं षष्ठेश दोनों ही दशम स्थान में स्थित हों तो जातक का पिता पराई स्त्री से सम्बन्ध रखता है ।

लग्नेश यदि पापग्रह से युक्त होकर धनभाव में गया हो ।

द्वितीयेश द्वितीय में पापग्रह से युक्त हो तथा साथ में षष्ठेश व सप्तमेश हों ।

इन दोनों योगों में उत्पन्न व्यक्ति का पिता पराई लेकिन सज्जन स्त्री से व्यभिचार करता है ।

पिता की मृत्यु का विचार :

पतङ्गभौमौ पथि वा पदेऽथो
सपापपप्यस्तगतेऽथ खेशे ।
सास्रारुणेऽरं पितुरत्ययोऽगौ
व्यये भगेऽस्तेऽसृजिखेऽम्बकाकम् ॥१२॥

पतङ्गेति । पतङ्गः = सूर्यः, 'पतङ्गः शलभे चाग्नौ मार्जारेऽर्के शरे खगे' । 'पतङ्गः पक्षि सूर्ययोः' इति वैजयन्तीशाश्वतौ । भौमः = मङ्गलः, इमौ, पथि = नवमे, अथवा पदे = दशमे भवेताम् । यदि तदा, जातस्य, जनकस्य = पितुः, अरं = शीघ्रं, मृत्युः स्यादिति शेषः ।

तथा च सुधासागरे

"सूर्यारौ खेऽङ्कभावे वा शीघ्रं मृत्युः पितुर्भवेत् ।" इति ।

अथो इति । अथो आनन्तर्य्यार्थे । सपापपपी = पापसहितरवौ, अस्तगते = सप्तम-स्थानगते सति तदा जनकस्यारं मृत्युः स्यादिति सर्वत्रानुवृत्तिः ।

अथेति । अथ = आनन्तर्य्यार्थे । खेशे = दशमेशे, सास्रारुणे = सूर्य-भौमसहिते सति तदा जनकस्यारं मृत्युः स्यात् ।

अगाविति। अगौ = राहौ, व्यये = द्वादशे, भगे = रवौ, अस्ते = सप्तमे, असृजि = भौमे, खे = दशमे सति तदा, अम्बकाकं = पितृकष्टं स्यादिति शेषः।

उक्तं च होरारत्ने
"सप्तमे भवने सूर्यः कर्म्मस्थो भूमिनन्दनः।
राहुर्व्यये च यस्यैव पिता कष्टेन जीवति॥" इति।

नवम या दशम भाव में सूर्य व मंगल स्थित हों।
सप्तम स्थान में पापयुक्त सूर्य हो।
दशम स्थान का स्वामी यदि सूर्य, मंगल से युक्त हो।
इन योगों में पिता की शीघ्र ही मृत्यु होती है।

दशम में मंगल, सप्तम स्थान में सूर्य एवं द्वादश भाव में राहु हो तो पिता को कष्ट होता है।

अन्यत्र कहा गया है कि भाग्येश यदि पापग्रहों के अन्तराल में हो या पापग्रह से युक्त हो अथवा नवम में सूर्य या मंगल हो तो पिता की शीघ्र मृत्यु होती है—

भाग्येशे पापमध्यस्थे पापग्रहयुतेऽथवा।
सूर्ये भौमेऽथवा धर्मे पितुर्मरणमाविशेत्॥
(सन्तानमंजरी)

जीविका का विचार :

द्रव्यप्राप्तिर्जनकजननीशत्रुमित्रानुजस्त्री-
भृत्येभ्यः स्यादुदयशशिनोर्मानगैर्मित्रमुख्यैः।
वृत्ति खेशस्थलवपवशाल्लग्नचन्द्रारुणेभ्यो
ब्रूयात्तुङ्गे बलिनि तरणावात्मनो विक्रमात्स्वम्॥१३॥

द्रव्येति। इह तु प्रकारद्वयेनार्थदो ग्रहो भवति। लग्नाच्चन्द्रभाच्च योऽम्बरस्थः खगः सोऽर्थदो भवति। यद्युदयशशिनोः कर्म्मस्थाने ग्रहरहिते भवतस्तदोदयेन्दुरवीणां ये ये दशमराशयस्तेषां ये स्वामिनस्ते येषु नवांशेषु नुर्जनने स्थितास्तेषां नवांशानां ये खगाः स्वामिनस्ते खगा वित्तप्रदा भवन्ति। किन्तूदयाच्छशिनश्च ये कर्म्मगाः खगास्तेऽनेन प्रकारेण वित्तदा भवन्ति। किन्तु लग्नचन्द्रारुणेभ्यः खेशांशकपति-वशादनेन प्रकारेणेति तत्रादावेवोदयाच्छशिनश्च कर्म्मस्थः खगो येन प्रकारेण वित्तं वितरति, तथा लग्नचन्द्रारुणेभ्यः खेशांशकपतयो येन प्रकारेण वित्तप्रदा-स्तत्प्रकारद्वयप्रदर्शनमाह उदयशशिनोः = लग्नचन्द्रयोः, मित्रमुख्यैः = मित्रः सूर्यः।

खदायैः ग्रहैः, मानगैः = दशमस्थानाश्रितैः, जनकादिभ्यः = पितृप्रभृतिभ्यः, द्रव्य-प्राप्तिः = धनाप्तिः स्यात् । तत्र नरस्य जन्मकाले विलग्नाद्विधोर्वा यदि सूर्यः कर्म्मगतो भवति तदा जनकात्सकाशाद् द्रव्याप्तिर्भवति। एव शशिनि विलग्नात्कर्म-गते जननीतो मातुः सकाशात् । कुजेऽङ्गाब्जयोः कर्म्मणि सति शत्रुतो वैरितः। बुधे मित्राद् वयस्यतः । गुरौ अनुजात्सोदरात् । शुक्रे स्त्रीतः कलत्रतः। शनौ भृत्य-जनात्कर्म्मकरात्सेवकादित्याशयः। अथ कश्चिदुदयात्कर्म्मणि भवत्यपरः शशिन-स्तदा स्वस्यां स्वस्यां भुक्तौ द्वावपि निजाभिहित फलप्रदौ स्तः। न केवलम् । यावदिन्दोरुदयाच्च प्रभूताः खचरा अपि कर्मगा भवन्ति। तदा निखिला एव स्वस्यां स्वस्यां भुक्तौ निजनिजप्रकारेण वित्तप्रदा भवन्ति। अत उक्तन् । लग्न-चन्द्रारुणेभ्यः खेशस्थलवपवशाद् वृत्ति ब्रूयात् । लग्नं जनुर्लग्नं। चन्द्रः शशी। अरुणः सूर्यः । लग्नं च चन्द्रश्चारुणश्च लग्नचन्द्रारुणाः, तेभ्यः प्रत्येकस्य खाख्यको यो राशिर्दशम इत्यर्थ.। तस्य यः स्वामीग्रहः स यस्मिन्नवांशत स्थितस्तस्य यः पतिः स्वामी तद्वशात्तत्कारणाद् वृत्ति जीविकां ब्रूयात्कथयेत्। अर्थात्तस्य या वक्ष्यमाणजीविका तया जीविकया तस्य वित्तप्रदो भवति।

तुङ्ग इति। बलिति = बलवति, तरणौ = रवौ तुङ्गे निजोच्चराशौ मेष इत्यर्थः। यदि तदा आत्मनः = स्वस्य, विक्रमादतिशक्तितया 'विक्रमस्त्वतिशक्तिता' इति कोशात्। स्वं = धनं 'स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये स्वोऽस्त्रियां धने' इत्यमरः। ब्रूयादित्यनुषङ्गः।

अत्र विशेषमाहुः आचार्य्यचरणाः—

"मित्रारिस्वगृहगतैर्ग्रहैस्ततोऽर्थं तुङ्गस्थे बलिनि च भास्करे स्ववीर्य्यात्।
आयस्थैरुदयधनाश्रितैश्च सौम्यैः सञ्चिन्त्यं बलसहितैरनेकधा स्वम्"॥ इति।

लग्न या चन्द्रमा से दशम स्थान में सूर्य हो तो पिता से, चन्द्रमा हो तो माता से, मंगल हो तो शत्रु से, बुध हो तो मित्र से, गुरु हो तो भ्राता से, शुक्र हो तो स्त्री से और शनि हो तो दास से धन प्राप्ति होती है।

यदि लग्न या चन्द्रमा से दशम स्थान में कोई ग्रह न हो तो लग्न, सूर्य एवं चन्द्रमा इन तीनों से दशम स्थानों के स्वामियों की वृत्ति व कार्य क्षेत्र के आधार पर जीविका वतानी चाहिए।

यदि बलवान् सूर्य स्वोच्च में स्थित हो तो व्यक्ति अपने पराक्रम व श्रम से ही अपनी जीविका चलाता है।

इस विषय में भगवान् गार्गि ने विशेष बातें कही हैं—

(i) लग्न या चन्द्रमा से दशमस्थ सभी ग्रह धनप्रद होते हैं। उनकी दशान्तर्दशा में अवश्य धन लाभ होता है।

(ii) लग्न, सूर्य एवं चन्द्रमा इन तीनों से दशम स्थान के स्वामी ग्रह जिस नवांश में हों, उन नवांशों के अधिपति ग्रहों की वृत्ति के आधार पर धनागम के साधनों का निर्णय करना चाहिए—

उदयाच्छशिनो वापि ये ग्रहा दशमस्थिताः।
ते सर्वेऽर्थप्रदाज्ञेयाः स्वदशासु यथोदिताः॥

लग्नार्करात्रिनाथेभ्यो दशमाधिपतिर्ग्रहः।
यस्मिन्नवांशे तत्कालं वर्तते तस्य यः पति॥

तद्वृत्त्या प्रवदेद् वित्तं जातस्य बहवो यदा।
भवन्ति वित्तदास्तेऽपि स्वदशासु विनिश्चितम्॥

(गार्गि)

इस विषय का विवेचन फलित ग्रन्थों के कर्माजीवाध्यायों में किया गया है।

ग्रहों की वृत्ति :

भैषज्योर्णसुगन्धिभी रविलवेऽब्जांशेऽब्जमुक्तादिभिः
खड्गैरञ्जनसाहसैः कुजलवे लिप्यादिभिर्विल्लवे।
देवब्राह्मणपण्डितैर्गुरुलवे भांशे गजाश्वादिभि-
र्मन्दांशेऽध्वगमादिकेन भविनां वृत्ति विपश्चिद्वदेत्॥१४॥

भैषज्येति। लग्नचन्द्रारुणेभ्यः खेशस्थलवपो रविर्यदा भवति तदा भैषज्येन=औषधेन, ऊर्णया=आविकलोम्ना, सुगन्धैस्तृणैर्वित्तं लभते।

अब्जांश इति। अब्जांशे=चन्द्रांशे सति तदा, अब्जमुक्तादिभिः=अब्जानां जलजानां क्रयविक्रयैः, मुक्ताभिः=मुक्ताफलैः 'गजेन्द्रजीभूतवराहशङ्खमत्स्याहि शुक्त्युद्भववेणुजानि। मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषां तु शुक्त्युद्भवमेव भूरि' इति। आदिशब्दात्कृष्याकर्षणेन शङ्खप्रवालादिभिः, स्त्रीभिश्च वित्तं लभते।

खड्गैरिति। कुजलवे=भौमांशे सति तदा खड्गैः=खड्गचक्रकुन्तचापतोमराद्यैः, रञ्जनसाहसैः=रञ्जनैः रञ्जनक्रियाभिः साहसैरसमीक्षितकार्यकरणैरथवा स्वबलक्रियारम्भैः, वित्तं लभते।

लिपीति। विल्लवे = बुधांशे, लिप्यादिभिः = लिप्यक्षरविन्यासेन, आदिग्रहणाद् गणितेन, व्याख्यानेन, यंत्रादिप्रयोगैः, काव्यक्रियया, शिल्पैश्च वित्तं लभते।

देवेति। गुरुलवे = जीवांशे सति तदा, देवब्राह्मणपण्डितैः = देवेभ्यः सुरेभ्यः 'देवः सुरे घने राज्ञि देवमाख्यातिमिन्द्रियम्' इति विश्वः। ब्राह्मणेभ्यो द्विजेभ्यः 'द्विजात्यग्र, जन्मभूदेववाडवाः। विप्रश्च ब्राह्मणः' इत्यमरः। पण्डितैः, वित्तं लभते।

भांश इति। भांशे = शुक्रांशे सति तदा, गजाश्वादिभिः = गजक्रयविक्रयैः 'सामजौ गजसामौत्थौ' इति शाश्वतः। अश्वक्रयविक्रयैः, आदिशब्दग्रहणाद् मणिभिः वज्रमरकतपद्मरागेन्द्रनीलप्रभृतिभिः, रौप्येण, रत्नैः, 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते। लोहैः, गोभिः 'गौर्नादित्ये बलीवर्दे ऋतुभेदर्पिभेदयोः। स्त्री तु स्याद्दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि। पुंस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मि दृग्बाणलोमसु' इति केशवः। महिषैश्च वित्तं लभते।

मन्दांश इति। मन्दांशे = शन्यंशे सति तदा, अध्वगमादिकेन = मार्गगमनादिना, आदिशब्दात्, वधेन, स्वशरीरताडनाद्येन, भारवहनेन, नीचशिल्पैः, स्वकलानुचितकर्म्मभिः, भविनां = जन्मिनां, वृत्तिं = जीविकां, विपश्चित् = विद्वान्, वदेत् = कथयेत्।

अथ विशेषमाह भगवान् गार्गिः—

"लग्नकर्माधिपो यस्मिन् नवांशे वर्त्तते ग्रहः।
चारक्रमेण तत्तुल्यां कर्म्मणां सिद्धिमादिशेत्॥" इति

लग्न, चन्द्र व सूर्य से दशमेश की नवांश राशि का अधिपति यदि सूर्य हो तो औषधि, ऊन, सुगन्धित द्रव्य, तृण, सुवर्ण आदि से धन लाभ होता है।

चन्द्र हो तो मोती, मूंगा, शंख आदि जलोत्पन्न वस्तुओं से धन लाभ होता है।

मंगल हो तो हथियार, रंगाई, साहसपूर्ण कार्य से धनागम होगा।

बुध हो तो लेखन क्रिया, गणित, चित्रकला, शिल्प से, बृहस्पति हो तो देव, ब्राह्मण, पण्डितों से, शुक्र हो तो हाथी एवं घोड़ों आदि वाहन से, शनि हो तो मार्ग गमन, भार वहन, शरीर कष्ट से धनागम होता है।

लग्न से दशमेश जिस नवांश में गोचर करता हो उसी नवांशेश से वृत्ति का उक्त ढंग से विचार करना चाहिए।

ग्रन्थकार ने अत्यन्त संक्षेप में यहां वृत्ति (जीविका) विभाग

बताया है। पाठकों के लाभार्थ कुछ उपादेय एवं आधुनिक सूची यहां प्रस्तुत की जा रही है—

(i) **सूर्य**—दवा, डॉक्टर, कैमिस्ट, रसायन निर्माण, ऊन का व्यवसाय, वस्त्र शिल्प, राजकीय सेवा, पैतृक व्यवसाय, सोने का व्यवसाय, आभूषण, माणिक आदि बेशकीमती पत्थरों का व्यवसाय, आकाशगमन वृत्ति, पॉयलट, वर्षा, मौसम आदि के वैज्ञानिक, दैवज्ञ (सिद्धान्त ज्योतिषी), खगोल शास्त्री, इत्र, सुगन्धित द्रव्य निर्माण या व्यवसाय, शृंगार सामग्री, फल व्यवसाय, सूखे मेवे, जड़ी-बूटी, छल-कपट वंचना का व्यवसाय, प्रापर्टी डीलिंग, धातु कर्म, जनप्रतिनिधि, घी, गुड़, चीनी, अनाज का व्यापार, मुकदमे से सम्बन्धित व्यवसाय, वन, पत्थर, कृषि कार्य, पशु पालन आदि।

(ii) **चन्द्रमा**—जल से उत्पन्न होने वाले पदार्थ, चांदी, मोती, शंख, पंसारी (अत्तार), शिकार, वेश्यावृत्ति, सजावट का सामान, सीमेंट, चूना, ईंट, खेती, शराब, तेल, कपड़े का व्यवसाय, समुद्र पार व्यवसाय, रेडीमेड वस्त्र व्यवसाय, डेयरी उद्योग, तीर्थाटन, स्त्री की नौकरी, विद्या, बुद्धिबल, विद्वत्ता, अध्यापन, शिल्पकला, होम्योपैथी चिकित्सा, अभिनय, नाट्य लेखन, दूतकर्म, कविता, फूल, खाने का व्यवसाय, होटल, अचार, चटनी, विश्रामालय आदि।

(iii) **मंगल**—तांबा, सोना आदि का व्यवसाय, ब्लड बैंक, पारा आदि का व्यवसाय, सर्जरी के उपकरण, शस्त्र निर्माण या व्यवसाय, भूमि व्यवसाय, कृषि, सेनापतित्व, अधिकारी, पुलिस या तत्सदृश सेवा, चौर्य वृत्ति, रसायन निर्माण, सोनार, लोहार, भट्टी में कार्य करने वाले, भट्टा व्यवसाय, भवन निर्माण सामग्री, परमाणु संयंत्र, बेकरी, थर्मल पॉवर, बिजली के उपकरण, युद्ध, गुंडागर्दी, सेना में सेवा, डाकाजनी, गिरोहबन्दी, पाककला, रसोई या ब्लैकमेलिंग, अपहरण कर फिरौती वसूलना, साहस का कार्य, गुप्तचरी, मुखबिरी, काजल व्यवसाय, लकड़ी की चिराई, ठेकेदारी, नौकरी, जुआ, लॉटरी, रस का व्यापार, पाप कर्म, अप्रशिक्षित डॉक्टर या कम्पाउण्डर।

(iv) **बुध**—चतुराई, बुद्धिबल, विद्या, प्रत्युत्पन्नमतित्व, जौहरी, वाहन, गाना, चित्रकारी, शिल्पकला, नक्सानवीस, लेखन, संवाददाता, सम्पादन, ब्याजवृत्ति, फायनांसिंग, चिटफंड, बर्तनों का व्यवसाय,

गणित कार्य, अभिनय, अध्यापन, व्यापार, पुस्तक व्यवसाय, प्रकाशन, छापाखाना, जिल्दसाजी, टाईपिस्ट, शिक्षक, ज्योतिषी, अनुवाद, वकालत, साबुन, अगरबत्ती निर्माण, पान मसाला, नसवार आदि; खिलौने बनाना, पौरोहित्य, बहानेबाजी वाला व्यवसाय, संचार माध्यम, कुरियर सेवा, ट्रांसपोर्ट, दूतावासों में सेवा, आढ़ती, कम्प्यूटर व्यवसाय, कपड़ा मिल, कपड़े की रंगाई, छपाई, कढ़ाई, सजावट, कलाकारी, पच्चीकारी, साड़ी उद्योग, श्रृंगार सामग्री, शेम्पू आदि प्रसाधन सामग्री (टूथपेस्ट, साबुन, शेम्पू, क्रीम, लोशन आदि), आयुर्वेदिक चिकित्सा, मन्त्रित्व, दूत कार्य, कविता, हास्य व्यंग्य, विदूषक, पक्षी पालन, मुर्गी अंडा व्यवसाय, वनस्पति व्यवसाय।

(v) **गुरु**—वाहन, पौरोहित्य, ऊंची शिक्षा, शुभ कार्य, धार्मिक वृत्ति, पुजारी, महत्त्व के पद, सचिव, नगर राष्टाध्यक्ष, फर्नीचर, भवन निर्माण, पुत्र का व्यवसाय, खान खदान कर्म, खनिज, कर्मकाण्ड, यज्ञ सामग्री व्यवसाय, सत्कार्य, परोपकार, समाज सेवा, मन्दिर या आश्रमों का अधिष्ठाता, राज्यकृपा, पठन-पाठन, धर्मोपदेशक, बैंकिग व्यवसाय, न्यायाधीश, बैरिस्टर, टेंट हाउस, बग्घी, बैंडबाजा, किले की रक्षा, सुरक्षाकर्मी, वाहन व्यवसाय, ऊंची व नीतिपूर्ण जीविका आदि।

(vi) **शुक्र**—उपदेश, साझा व्यापार, ब्यूटी पार्लर, सेक्स चिकित्सा, दुकानदारी, खेतीवाड़ी, गाय, भैंस का व्यवसाय, प्रसाधन सामग्री, सिनेमा, नाटक, शराब का व्यवसाय, राजकीय अधिकार, स्त्रियों से सम्बन्धित व्यवसाय, विवाह, दलाली, सलाहकारी, चांदी का व्यवसाय, संगीत, वाद्य यन्त्र, काव्य रचना, रेशमी वस्त्र, गोटा किनारी, नाटक की वेशभूषा, भोग-विलास के साधन, व्यक्तिगत सहायक, ट्यूशन, पौरोहित्य, ज्योतिष व्यवसाय, स्त्री चिकित्सा, फोटोग्रॉफी, खिलौने, वेश्यावृत्ति, कमीशन एजेन्ट, स्त्री का आश्रय, संगीतोपकरण, गानविद्या, नटकर्म, राजसेवा, तान्त्रिक क्रियाएं आदि।

(vii) **शनि**—कुली, भारवाहक, मजदूर, चपरासी, माली, ड्राइवर, सहायक, वाहन मरम्मत, अन्य वस्तुओं की मरम्मत, शारीरिक परिश्रम, नौकरी, दुष्ट संगति, मोटे अनाजों का व्यापार, अनीतिपूर्ण जीविका, दादागिरी, रिश्वतखोरी, दलाली, क्लर्की, लकड़ी का काम, कांच, रांगा, सीसा, लोहा आदि; पैट्रोल डीजल का व्यवसाय, रबर

प्लास्टिक का कार्य, भिक्षा, दीनवृत्ति, उत्तम कारीगर (मिस्त्री आदि), पोस्टमैन, डिस्पैच, राइडर, चोरी, हिंसा, बागवानी, मन्दिर आदि में नौकरी, कुरसायन व्यवसाय, श्रमिक यूनियन, चन्दा खाना, जलीय कुत्सित पदार्थ, मछली आदि का व्यवसाय, शस्त्र चालन, खान मजदूरी, शारीरिक परिश्रम करने वाला, खेत मजदूरी आदि।

चिन्तादि परिज्ञान :

व्यापारेऽस्रे क्षेत्रचिन्ता त्रिकस्थे
चिन्ता सौख्यस्याथतत्रेन्द्रपूज्ये।
वासोभूषावाहनाश्वोद्भवा सा
धिष्ण्ये चेन्दौ चामरच्छत्रचिन्ता ॥१५॥

हेम्ने मतिस्थे मतिजाऽस्तकोणे
सरस्वतीशे स्मृतिरात्मजोत्था।
कन्दर्पकोणे कविजे गमोत्था
त्रिकोणगे भास्वति तातबन्धोः ॥१६॥

भाग्यालयाद्भाग्यभवाऽम्बरान्नृप
भूषामहत्कर्म्महयांशुकोद्भवा ।
प्राप्तेः स्मृतिर्लब्धिभतोऽन्त्यनैधना-
च्चिन्ता विधेयाऽखिलपापकर्म्मणाम् ॥१७॥

व्यापार इति। हेम्न इति। भाग्येति च। व्यापारे = दशमे, अस्रे = भौमे सति तदा 'क्षेत्रचिन्ता' = कर्षणबीजवापक्षेत्रसंस्कारादिप्रकारकक्षेत्रचिन्तेत्यर्थः। त्रिकस्थे = षष्ठाष्टमव्ययान्यतम गते, 'अस्रे' इत्यनुषङ्गः। सौख्यस्य चिन्ता, सकलविषय-प्रयुक्तसौख्यचिन्ता स्यादित्यर्थः। तत्र = त्रिकस्थे, इन्द्रपूज्ये = गुरौ सति तदा, वासोभूषावाहनाश्वोद्भवा = वस्त्रभूषणवाहनघोटकसम्भवा सा चिन्ता स्यात्। धिष्ण्ये = शुक्रे, इन्दौ = चन्द्रे च सति तदा चामरच्छत्रचिन्ता तत्प्राप्तौ रक्षणे च चिन्ता स्यात्। हेम्ने = बुधे, मतिस्थे = पञ्चम स्थिते, मतिजा = बुद्धिसम्भवा चिन्ता स्यात्। सरस्वतीशे = गुरौ, अस्तकोणे = सप्तम-पञ्चम-नवमे सति तदा, आत्मजोत्था = पुत्रभवा, स्मृति = चिन्ता स्यात्। कविजे = शुक्रे, सप्तम-पञ्चम-नवमे सति तदा, गमोत्था = यात्राभवा, चिन्ता स्यात्। भास्वति = रवौ, त्रिकोणगे = पञ्चमनवमगते, तातबन्धोः = पितुर्बान्धवस्य चिन्ता स्यादिति शेषः।

भाग्येति। भाग्यालयाद् = नवमाद्, भाग्यभवा भाग्यसम्भवा चिन्ता स्यात्। अम्बराद् = दशमात्, नृपभूषामहत्कर्म्महयांशुकोद्भवा = भूपति-भूषण-महत्कर्म-घोटक-वस्त्र-सम्भवा चिन्ता स्यात्। अन्त्यनैधनात् = द्वादशादष्टमाच्च, अखिल-पापकर्म्मणां = समस्तदुरितकृत्यानां, चिन्ता = स्मृतिः, विधेया = कर्त्तव्या, बुधैरिति शेषः।

दशम स्थान में मंगल हो तो क्षेत्र की चिन्ता हो। ६,८,१२ भावों में मंगल हो तो सुख की चिन्ता होती है।

६,८,१२ में बृहस्पति हो तो वस्त्र, भूषण, वाहन एवं अश्व की चिन्ता होती है।

त्रिक स्थानों में शुक्र व चन्द्रमा हो तो छत्र व चामर की चिन्ता हो।

पंचम में बुध हो तो बुद्धिजन्य चिन्ता हो। ५,७,९ भावों में बृहस्पति हो तो पुत्र की चिन्ता हो। ५,७,९ भावों में शुक्र हो तो यात्रा की चिन्ता।

पंचम, नवम में सूर्य हो तो चाचा, ताऊ की चिन्ता होती है।

नवम भाव से भाग्य का विचार, दशम से नृपति, भूषण, महान् कार्य, वाहन, अश्व प्रतिष्ठा, वस्त्र का विचार, एकादश भाव से लाभ व प्राप्ति का विचार, व्यय व अष्टम भाव से सभी पापकर्मों का विचार करना चाहिए।

उक्त चिन्तादि विचार ग्रन्थकार ने जातकालंकार, शुकसूत्र के अधार पर लिखा है। चिन्ता से तात्पर्य है कि उक्त स्थितियों में व्यक्ति बताए गए क्षेत्रों के विषय में सदैव विचार व चिन्ता करता रहता है। इस विषय में उसे पूर्ण सन्तोष नहीं मिल पाता है।

कर्महीन एवं मानी योग :

ओजसा रहित आस्पदाधिपो
नास्पदं निखिलकर्म्मणां नरः।
आस्पदस्य रमणः सशोभनः
स्वीयमन्दिरगतः स मानभाक्॥१८॥

ओजसेति । आस्पदाधिप:=दशमेश:, ओजसा=बलेन, रहित:=वर्जित:, यदि तदा जातो नर:, निखिलकर्म्मणां=समस्तक्रियाणां आस्पदं=स्थानं न, अर्थात् सर्वकर्मसाधको न स्यादित्यर्थ: ।

आस्पदस्येति । आस्पदस्य=दशमस्य, रमण:=स्वामी, सशोभन:=शुभग्रह-सहित:, स्वीयमन्दिरगत:=स्वराशिगत:, दशमगत इत्यर्थ: । यदि तदा स मान-भाक्=मानी भवेदिति शेष: ।

यदि दशमेश बलहीन हो तो मनुष्य सभी कार्यों के साधन में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं करता है ।

दशमेम स्थान में शुभयुक्त दशमेश हो तो मनुष्य मान-प्रतिष्ठा वाला होता है ।

दशम स्थान पर शुभदृष्टि योग न हो और दशमेश भी निर्बल हो तो जातक दरिद्री ही घूमता रहता है । दशम स्थान रोजी, रोजगार वृत्ति का है । अत: यहां ग्रह योग दृष्टि न हो तो मनुष्य का परिश्रम पूर्ण सफल नहीं होता है । इसका विचार परमावश्यक है । सारावली, बृहज्जातक, फलदीपिका में इस भाव का विचार पाराशर मतानुसार किया गया है । जैमिनीय मत भी इस विषय में महत्त्वपूर्ण है, अत: जैमिनीय मत हेतु हमारे **जैमिनिसूत्र (सम्पूर्ण), शान्तिप्रियभाष्य** का पाठक अध्ययन करें ।

।। इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां कर्मभावाध्यायो द्वादश: ।।

[१३]

लाभभावाध्याय:

बहुलाभ योग :

प्राप्तिः पुण्यखगैः फलस्थलगतैर्न्याय्यान्निरुक्ता बुधै-
रन्याय्यात्परथा भवेदथ सतां व्योमाटनानां दृशाम्।
आधिक्ये भवभेऽथवा भवगृहाधीशे शुभाभ्रौकसां
सम्बन्धे किमु लाभपे पथि मतौ केन्द्रेऽतिलाभः स्मृतः ।।१।।

प्राप्तिरिति। पुण्यखगैः = शुभग्रहैः फलस्थलगतैः = एकादशस्थानगतैः सद्भिः तदा बुधैः = पण्डितैः 'ज्ञातृचान्द्रिसुरा बुधाः' इति क्षीरस्वामी। न्याय्यात् = नीति-मार्गेण, प्राप्तिः = द्रव्यस्य लाभः, निरुक्ता = कथिता। यदि परथा = उक्त प्रकाराद्विपरीते सति तदा, अन्याय्यात्—नीतिविरुद्धमार्गेण, प्राप्तिः = धनस्य लाभः, भवेत्।

तथा च सुधासागरे—
"लाभे शुभग्रहा लाभो न्यायतः प्रभवेन्नृणाम्।
अन्यायात्पापखेटाश्चेन्मिश्रा उभयथा यदा" इति।।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। भवभे = एकादशस्थाने, सतां व्योमाटनानां = शुभ-ग्रहाणां, दृशां = वीक्षणानाम्, आधिक्ये = बाहुल्ये सति तदा, अतिलाभः = बहु-लाभः, स्मृतः = कथितः।

अथवेति। अथवा वार्थे। भवगृहाधीशे = लाभेशे:, शुभाभ्रौकसां = शुभग्रहाणां, सम्बन्धे = सम्पर्के, सति तदा अतिलाभः, स्मृत इति सर्वत्रानुवृत्तिः।

किमु इति। किमु वार्थे। लाभपे = लाभभावस्वामिनि, पथि = नवमे, मतौ = पञ्चमे, केन्द्रे = चतुष्टये सति तदा, अतिलाभः = स्मृतः। बुधैरित्यनुषङ्गः।

लाभ स्थान में शुभग्रह स्थित हों तो मनुष्य को सन्मार्ग से धन का लाभ होता है।

यदि एकादश स्थान में पापग्रह हों तो मनुष्य को अन्याय मार्ग से धन लाभ होता है।

लाभ स्थान पर शुभग्रहों की अधिक दृष्टि हो अर्थात् शुभग्रहों की संख्या दृष्ट ग्रहों में अधिक हो अथवा दृष्टिबल अधिक हो।

लाभेश का शुभग्रहों के साथ सम्बन्ध हो।

नवम, पंचम या केन्द्र में लाभेश स्थित हो तो इन योगों में मनुष्य को खूब धन लाभ होता है।

सामान्यत: एकादश भाव में सभी ग्रह फलदायी होते हैं। लाभ भाव पर शुभाशुभ प्रभाव होने से धनागम व लाभ का स्रोत वैध-अवैध या शुभ पाप होता है। यदि लाभ भाव पर मिश्रित ग्रहों की युति हो तो मिश्रित मार्ग से ही धन लाभ होगा, ऐसा फलादेश करना चाहिए।

लाभ स्थान पर किसी एक बलवान् ग्रह की दृष्टि या योग होने मात्र से ही प्रभूत लाभ होता है।

लाभेश यदि सबल हो, शुभग्रह हो या पापग्रह हो, स्वराशि उच्चगत हो तो सदैव लाभ होता है।

इसके विपरीत नीचास्तंगत या त्रिकस्थ हो तो लाभ नहीं होता। यदि नीचास्तंगत होकर केन्द्र त्रिकोण में हो तो प्रयास से लाभ होता है।

भावप्रकाश में ऐसा ही मत प्रस्तुत किया गया है—

लाभेशे सबले सौम्ये पापे वा तुंगभे निजे।
तदा समस्तवित्तानां लाभो भवति देहिनाम्॥

तदीशे दुर्बले नीचे दिवाकरकरस्थिते।
त्रिकस्थे नहि लाभ: स्यात् केन्द्रे कोणे प्रयत्नत:॥

(भावप्रकाश)

लाभेश का शुभग्रहों से योग या दृष्टि या सम्बन्ध सदैव लाभकारी होता है, यह निश्चित है।

इस विषय में एक अन्य योग भी बताया जा रहा है। लाभेश यदि परमोच्च में हो या शुभग्रहों के मध्य में हो और लाभ भवन को शुभग्रह देखते हों तो बहुत लाभ होता है—

लाभेशे परमोच्चस्थे शुभमध्यगतेऽपि वा।
लाभे शुभग्रहैर्दृष्टे बहुलाभं वदेद बुध:॥

(सन्तानमंजरी)

सामान्यत: जितने अधिक ग्रहों की दृष्टि या योग लाभ स्थान पर होगा, उतना ही अधिक लाभ भी होगा।

दृष्टिकारक ग्रह, लाभेश, लाभ स्थानगत वर्ग आदि के द्वारा पहले बताए गए ग्रहों की वृत्ति विचारानुसार लाभ के कारणों का फलादेश करना चाहिए। होराप्रदीप में ऐसा ही बताया गया है। लाभ भवन में राहु-केतु भी अच्छा फल देते हैं, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। गर्गाचार्य के मत से राहु एकादशस्थ होकर अवश्य ही म्लेच्छों से धन लाभ कराता है। यदि लाभेश शुभग्रह हो और अष्टम में भी हो तो भी सामान्यत: हानिप्रद नहीं है, ऐसा मत वृद्धयवन का है—

एकादशपेऽष्टमगे क्रूरेऽल्पायु: सुदीर्घरोगी च।
जीवन्मृतश्चरोगी दु:खी न च सौम्य गगनचरै:॥

(वृद्धयवन)

धन लाभ योग :

सौम्यकाव्यकलिते यदि कोशे
किं भवेऽघयुजि धीनवकेन्द्रे।
लाभपेन कलितेऽथ कुटुम्बे
प्राप्तिपे भवगते वसुपे वा॥२॥
केन्द्रगौ स्वभवपावुत याम्ये
सौम्यखेटयुजि वा भवपेंऽशे।
शोभनान्तरगते जनितस्य
सम्भवे यदि तदा धनलाभ:॥३॥

सौम्येति। केन्द्रगाविति च। यदि कोशे=धनस्थाने 'कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गे पिधानेऽर्थौघदिव्ययोरित्यमर:।' सौम्यकाव्यकलिते=बुधशुक्र-युक्ते सति तदा धनलाभ: स्यादिति शेष:।

किमिति। किं वार्थे। भवे=एकादशे, अघयुजि=पापग्रहयोगे, धीनवकेन्द्रे=पञ्चम-नवम-केन्द्रे, लाभपेन=एकादशस्वामिना, कलिते=व्याप्ते सति तदा धनलाभ: स्यादिति सर्वत्रानुवृत्ति:।

अथेति। अथानन्तर्यार्थे। प्राप्तिपे=लाभेशे, कुटुम्बे=द्वितीये, वसुपे=द्वितीयेशे, भवगते=लाभगते सति। वा विकल्पार्थे। स्वभवपौ=धनेश-लाभेशौ, केन्द्रगौ=चतुष्टयगतौ भवत:। चेत्तदा धनलाभ: स्यात्।

उतेति। उत वार्थे। याम्ये = अष्टमे, सौम्यखटयुजि = शुभग्रहयोगे सति तदा धन-लाभः स्यात्।

तथोक्तं सुधासागरे—

"धनलाभोऽष्टमस्थाने सौम्याः खेटा भवन्ति चेत्" इति।

वेति। वा विकल्पार्थे। यदि जनितस्य = जन्मिनः सम्भवे = जन्मनि, अंशे = कारकांशकुण्डल्यां, भवपे = लाभेशे, शोभनान्तरगते = शुभग्रहमध्यवर्त्तिनि सति तदा धनलाभः स्यात्।

यदि द्वितीय स्थान में बुध, शुक्र हों।

लाभ स्थान में पापग्रह हो, लाभेश केन्द्र या त्रिकोण में गया हो।

यदि लाभ स्थान का स्वामी द्वितीय स्थान में हो और द्वितीयेश लाभ भवन में गया हो।

लाभेश एवं धनेश दोनों ही केन्द्र में अवस्थित हों।

अष्टम भाव में कोई भी शुभग्रह हो।

कारकांश कुण्डली में लाभेश शुभग्रहों के मध्य में गया हो।

इन सभी योगों में धन लाभ होता है।

उक्त योगों में व्यक्ति को निरन्तर धन लाभ या धनागम होता रहता है। सामान्यत: शुभग्रहों की बलवत्ता सदैव धन सुख देती है। कुछ योग इस प्रकार हैं—

(i) गुरु व शुक्र कहीं भी बैठकर परस्पर सम्बन्ध करते हों तो धनागम होता है।
(ii) धनेश व लाभेश बली हों या केन्द्र त्रिकोण में हों।
(iii) धन स्थान को शुभग्रह देखते हों।
(iv) लग्नेश लाभ में गया हो एवं शुभग्रह बलवान् हों।
(v) धनेश बलशाली हो तो धन लाभ होता है।
(vi) धनेश व एकादशेश यदि स्वोच्च, स्वराशि, मित्र क्षेत्र, लग्न में हों तो धन लाभ होता है। कहा गया है—

'धनलाभाधिपौ केन्द्रे त्रिकोणे वा बलान्विते।
वित्ते शुभग्रहैर्दृष्टे वित्तलाभमुदीरयेत्।।
लग्नेशेऽपि गते लाभे बलयुक्ते शुभग्रहे।
वित्तेशे बलसंयुक्ते वित्तलाभमुदीरयेत्।।
वित्तलाभाधिपौ स्वोच्चे स्वक्षेत्रे मित्रगेऽपि वा।
लग्ने केन्द्रे त्रिकोणे तु वित्तलाभं वदेद् बुधः।।' (सन्तानमंजरी)

अन्य लाभप्रद योग :

पिङ्गले धनुरुपेयुषि कोणे कुम्भभे मृगमुपेयुषि काणे।
मेषराशिसहिते रजनीशे पैतृकं न लभते धनमङ्गी ॥४॥

पिङ्गल इति। पिङ्गले = रवौ, धनुरुपेयुषि = धन्विनं प्राप्ते, कोणे = शनौ 'कोणो वाद्यप्रभेदे स्यात्कोणोऽस्रौ लगुडेऽर्कजे' इति विश्वः। कुम्भभे = कुम्भराशौ 'कुम्भः स्यात्कुम्भकर्णस्य सुते वेश्यापतौ घटे। राशिभेदे द्विपाङ्गे च' इति विश्वः। काणे = शुक्रे, मृगमुपेयुषि = मकरराशिं प्राप्ते 'मृगः पशौ कुरङ्गे च करिनक्षत्र-भेदयोः' इति मेदिनी। रजनीशे = चन्द्रे, मेषराशिसहिते तदा जातोऽङ्गी = शरीरी, पैतृकं = पित्रर्जितं, धनं = वित्तं, न लभते = न प्राप्नोति। अर्थात्स्वोपार्जितं धन-मेव लभत इत्याशयः।

तथा च ढुण्ढिराजः—

"मेषे शशाङ्कः कलशे शनिश्चेद् भानुर्धनुस्थश्च भृगुर्मृगस्थः।
तातस्य वित्तं न कदापि भुंक्ते स्वबाहुवीर्य्येण नरो वरेण्यः" इति।

यदि धनु राशि में सूर्य, कुम्भ राशि में शनि, एवं मकर राशि में शुक्र हो और मेष राशि में चन्द्र स्थित हो तो इस योग में उत्पन्न पुरुष को अपने पिता का धन नहीं मिलता अपितु वह स्वयं अपने बाहुबल से धनोपार्जन करता है।

सुन्दर जंघा एवं विकलता का विकार :

सद्दृष्टयुक्ते भवभे सुजंघोऽथायुःशुभेशावसतो हितस्थौ।
सोग्रावुतारीशयमौ व्ययस्थौ क्रूरेक्षितौ वाऽऽरयमन्विते ऽहौ ॥५॥
किं वा रवौ वैरिणि नेह जंघावैकल्यवान् जातकविद्भिरुक्तः।
जंघाक्षतिः पूर्णनिशाकरारौ शन्नौ किमिन्द्वार्क्यसृजोऽवसाने ॥६॥

सदिति। किं वेति च। भवभे = लाभभावे, सद्दृष्टयुक्ते = शुभग्रहावलोकित-सहिते सति तदा सुगंधः स्यादिति शेषः। अथानन्तर्य्यार्थे। आयुःशुभेशौ = अष्टमेश-नवमेशौ सोग्रौ = पापसहितौ, असतः = पापग्रहात्, हितस्थौ = चतुर्थस्थितौ भवतः। यदि तदा जातः, जंघावैकल्यवान् = पङ्गुरुः स्यादिति शेषः।

उतेति। उत वार्थे। क्रूरेक्षितौ पापग्रहदृष्टौ, अरीशयमौ = षष्ठेश-शनी, अयस्थौ = द्वादशस्थानस्थितौ भवतः। यदि तदा जातः, जंघावैकल्पवान् स्यात्।

वेति। वा विकल्पार्थे। वैरिणि = षष्ठभावे, आरयमान्विते = भौम-शनिसहिते, अहौ = राहौ 'सर्पे वृत्तासुरेऽप्यहिः, इति वैजयन्ती। किंवा रवौ = सूर्ये सति तदा

जातः, मा = पुरुषः, जंघावैकल्यवान् = पंगुरुः, जातकविद्भिः = ज्यौतिषिकैः, उक्तः = कथितः ।

जंघेति । पूर्णनिशाकरारौ = पूर्णचन्द्र-भौमौ, शत्रौ = षष्ठभावे भवतः । यदि तदा जंघाक्षतिः स्यादिति शेषः ।

तथा च मनुष्यजातके—

"पुण्येशजीवितपयोर्मृगकुम्भमीने जंघाक्षतिः शशिनि पूर्णतिथेश्च षष्ठे। भौमान्विते" इति ।

किमिति । किं वार्थे। इन्द्वार्क्यसृजः = चन्द्र-शनि-भौमाः, अवसाने = द्वादशे भवन्ति । चेत्तदा जंघाक्षतिः स्यात् ।

तथा च मनुष्यजातके—

"····शनि कुजेन्दुगते व्यये च यष्ट्या चलत्यशुभदृक् तनुपाश्रिते च" इति ।

यदि लाभ भवन पर शुभग्रहों की दृष्टि या योग हो तो मनुष्य की जंघाएं सुन्दर होती हैं।

यदि अष्टमेश व नवमेश से दशम स्थान में पापग्रह हों और वे दोनों स्वयं भी पापयुक्त हों।

षष्ठेश एवं शनि बारहवें स्थान में हों और उन पर पापग्रह की दृष्टि हो।

षष्ठ स्थान में राहु या सूर्य हो और मंगल या शनि से युक्त हों।

इन सब योगों में उत्पन्न व्यक्ति की जंघाओं में विकार होता है।

षष्ठ स्थान में पूर्ण चन्द्रमा एवं मंगल हो।

व्यय भाव में शनि, चन्द्रमा एवं मंगल हों।

इन दो योगों में व्यक्ति की जंघाओं में विकार होता है।

इसके अतिरिक्त संस्कृत टीका में मनुष्य जातक का जो उद्धरण दिया गया है, तदनुसार नवमेश एवं अष्टमेश (अथवा गुरु की अधिष्ठित राशि का स्वामी) मकर, कुम्भ, मीन में हों। षष्ठश भी पूर्णा तिथि का (५,१०,१५) या पूर्ण हो तथा मंगल से युक्त हो तो जातक लाठी के सहारे चलता है। इतना अर्थ अतिरिक्त आता है।

यदि अपने त्रिशांश में मंगल मीन या वृष राशि में षष्ठस्थ हो तो जांघ में विकार एवं रात्रि में जन्म हो और शनि अपने त्रिशांश में षष्ठ में हो तो लंगड़ापन होता है।

॥ इति श्री मुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां लाभभावाध्यायस्त्रयोदशः ॥

[१४]

व्ययभावाध्यायः

शुभाशुभ व्यय के योग :

सद्व्ययः शुभकरे व्ययसंस्थे-
ऽसद्व्ययो भवति तत्र सपापे।
मिश्रखेचरयुते स विमिश्रः
प्रान्त्यवेश्मनि गिरीशि करस्य ॥१॥
व्याजतो व्यय इनात्मजभौमौ
तत्र सोदरवशात्स तु वेद्यः।
प्रान्त्य आस्फुजिदिनोरगयोगे
संस्मृतो व्यय इलापतिमूलः ॥२॥

सदिति। व्याजत इति च। शुभकरे=शुभग्रहे:, व्ययसंस्थे=द्वादशस्थिते सति तदा सद्व्ययः, धर्म्ममूलतो व्ययः स्यादित्यर्थः। तत्र=व्यये, सपापे=पापग्रह-सहिते सति तदा असद्व्ययः पापमूलतो व्ययः स्यादित्यर्थः। तत्र=व्यये, मिश्र-खेचरयुते=शुभाशुभ ग्रहसहिते सति तदा सः (व्ययः) विमिश्रः शुभाशुभ रूपः स्यादित्यभिप्रायः।

प्रान्त्येति। गिरीशि=जीवे, प्रान्त्यवेश्मनि=व्ययभावे सति तदा करस्य=भागधेयस्य, शलकस्येति यावत्। व्याजतः=लक्ष्यतः, अपदेश इति यावत्। व्ययः स्यादिति शेषः।

इनेति। तत्र (व्यये) इनात्मजभौमौ=शनि-मङ्गलौ भवतः। यदि तदा सोदर-वशाद्=भ्रातृहेतोः, सः (व्ययः) वेद्यः=ज्ञेयः, बुधैरिति शेषः।

प्रान्त्य इति। प्रान्त्ये=व्ययभावे, आस्फुजिदितोरगयोगे=शुक्र-रवि-राहुयुजि, यदि तदा इलापतिमूलः=राजहेतुः, व्ययः संस्मृतः=ज्ञेयः।

यदि व्यय स्थान में शुभग्रह हो तो अच्छे कार्यों में और पापग्रह हो तो बुरे कार्यों में धन का व्यय होता है। यदि वहां शुभाशुभ मिश्रित ग्रह हों तो मिश्रित बातों पर ही व्यय होता है।

यदि व्यय भाव में बृहस्पति हो तो 'कर' के रूप में, शनि व मंगल हों तो भाई के कारण, यदि व्यय में शुक्र, सूर्य व राहु का योग हो तो राजा के कारण व्यय होता है।

यदि व्यय भाव अपने स्वामी से युक्तदृष्ट हो तो भी शुभ व्यय ही समझना चाहिए। इस विषय में जातकपारिजात में बताया गया है कि सूर्य द्वादश में हो या क्षीण चन्द्रमा हो तो राजा के कारण (टैक्स), धन व्यय होगा।

यदि मंगल वहां बुध से युक्त या दृष्ट हो तो अनेक प्रकार से धन नाश होगा।

चन्द्रमा, गुरु व शुक्र ये तीनों या कोई भी एक व्यय भाव में हो तो धन को सुरक्षा प्रदान करते हैं। (देखें जातकपारिजात १५.७८)।

इसी बात का समर्थन सारावली में भी किया गया है। लेकिन एक अतिरिक्त बात यह बताई गई है कि द्वादशस्थ चन्द्र, गुरु, शुक्र को मंगल देखता हो तो भावाध्यायोक्त फल भी होता है। गर्गाचार्य ने द्वादशस्थ ग्रहों का फल बहुत सुन्दर बताया है। पाठकों के लाभार्थ यहां प्रस्तुत है—

(i) व्यय में सूर्य व्ययशील स्त्री व्यसन में व्ययकर्त्ता एवं अद्‌भुत कामों में व्ययकर्त्ता बनाता है।

(ii) चन्द्रमा मनुष्य को कृपण एवं धन के विषय में अविश्वासी बनाता है। विशेषतया कृष्णपक्ष में उक्त फल अधिक होता है।

(iii) बुध हो तो राजपीड़ित, गुरु हो तो दिखावे हेतु खर्च करने वाला, शुक्र हो तो दया, कृपा से रहित व मोटा एवं शनि हो तो दुष्टों के ऊपर व्यय करने वाला एवं राहु हो तो दुष्ट कार्यों में धन व्यय करता है।

धनहानि योग :

नुः सर्वहानिर्हिमगौ हरेर्म्मयोः
प्रद्युम्नधाम्न्यम्बररत्नजे ततः।
आधिक्य उग्राम्बरचारिणां दृशां
प्रान्त्येऽर्थहानिर्गदिता पदे पदे ॥३॥

नुरिति । हिमगौ = चन्द्रे, हरेर्म्मयोः = अष्टम-षष्ठयोः, प्रद्युम्नधाम्नि = सप्तम-स्थान, अम्बररत्नजे = शनौ सति तदा नुः = पुरुषस्य, सर्वहानिः = सकलवस्तु-क्षतिः स्यादिति शेषः ।

तथोक्तं सुधासागरे—

"षष्ठाष्टमे निशानाथे सर्वहानिर्मदेशनौ" इति ।

तत इति । ततस्तदनन्तरम् । प्रान्त्ये = व्यये, उग्राम्बरचारिणां = पापग्रहाणां, दृशां = दृष्टीनाम्, आधिक्ये = आचुर्य्ये सति तदा, पदे पदे = स्थाने स्थाने, अर्थ-हानिः = द्रव्यक्षतिः, गदिना = कथिना, बुधैरिति शेषः ।

तथोक्तं सुधासागरे—

"व्यये पापदृगाधिक्ये धनहानिः पदे पदे" इति ।।

पष्ठ या अष्टम भाव में चन्द्रमा हो और सप्तम स्थान में शनि हो तो सर्वस्व हानि होती है ।

यदि व्यय भाव पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो पग-पग पर धन की हानि होती है ।

ऋणी योग :

वित्तेऽघेऽङ्गविभौ व्ययेऽम्बरधवे लब्धीशयुक्तेक्षिते
किं मूढे धनपे खलेन कलिते रन्ध्रे धने वार्थपे ।
नीचेऽसत्खरसांशके यदि तथा लाभेश्वरेऽथोदये
विद्येशे विमलानवेक्षित ऋणग्रस्तो जनो जायते ।।४।।

वित्त इति । अघे = पापग्रहे, वित्ते = धनस्थाने, अङ्गविभौ = लग्नेशे, व्यये = द्वादशे, अम्बरधवे = दशमेशे, लब्धीशयुक्तेक्षिते = लाभेशसहितावलोकिते तदा जातो जन ऋणग्रस्तो जायते ।

किमिति । किं वार्थे । धनपे = द्वितीयेशे, मूढे = अस्तंगते, खलेन = पापेन, कलिते = व्याप्ते सहित इत्यर्थः । रन्ध्रे = अष्टमे, धने = द्वितीये सति तदा जातो जन ऋणग्रस्तो भवेदिति सर्वत्रानुवृत्तिः ।

वेति । वा विकल्पार्थे । अर्थपे = द्वितीयेशे, नीचे = नीचराशौ, असत्खरसांशके = क्रूरषष्ठ्यंशे तथा तेन प्रकारेण 'प्रकारवचने थाल्' (नीचे क्रूरषष्ठ्यंशे) लाभेश्वरे = एकादश-स्वामिनि सति तदा जातो जन ऋणग्रस्तो भवेत् ।

अथेति । अथानन्तर्य्यार्थे । विमलानवेक्षिते = शुभग्रहादृष्टे, विद्येशे = पञ्चमाधिपे, उदये = लग्ने सति तदा जातो जन ऋणग्रस्तो भवेत् ।

यदि धन स्थान में पापग्रह हो, व्यय में लग्नेश स्थित हो, दशमेश यदि लाभेश से युक्त या दृष्ट हो। यह एक योग है।

अष्टम या धन स्थान में पापयुक्त अस्तंगत धनेश स्थित हो।

धनेश एवं लाभेश ये दोनों नीच राशि में स्थित होकर क्रूर षष्ट्यंश में गए हों।

लग्न में स्थित पंचमेश को कोई भी शुभग्रह न देखता हो।

इन सब योगों में मनुष्य ऋणी रहता है।

विशेष व्युत्पत्ति के लिए एक कुण्डली यहां प्रस्तुत की जा रही है। इनका जीवन सदा ऋणी ही व्यतीत होगा, ऐसा प्रतीत होता है। पिछले ३२ वर्षों से ये लगातार ऋणी हैं—

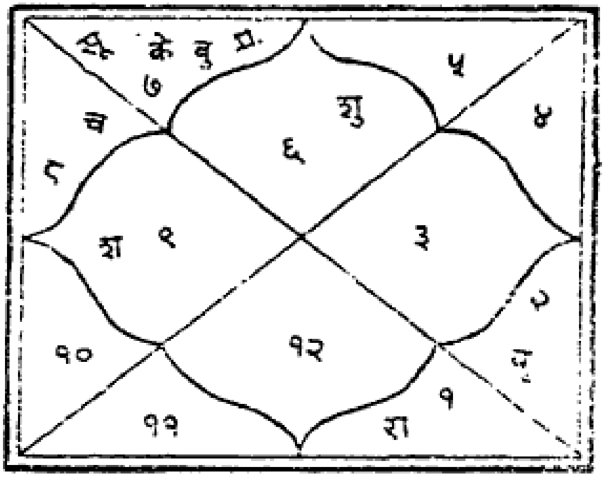

ऋणदाता योग :

दाता तदर्णस्य वचोभवेशयोर्द्रेष्काणपांशाधिपती चतुष्टये।
वैशेषिकांशे धियि शेऽथ कोमलांशादौ तनूपांशप आर्य्यलोकिते ।।५।।

दातेति। वचोभवेशयोः=धनेश-लाभेशयोः, द्रेष्काणपांशाधिपती=द्रेष्काण-स्वामिनोर्यौ नवांशेशौ तौ, यदि चतुष्टये=केन्द्रे, वैशेषिकांशे, धियि=पञ्चमे, शे=नवमे भवतस्तदा जातः, ऋणस्य=उद्धारस्य, दाता=दानी, भवेदिति शेषः।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। तनूपांशपः=लग्नेशस्य यो नवांशपतिस्तस्मिन्, कोमलांशादौ=मृद्वंशप्रभृतिषष्ठ्यंशे, आर्य्यलोकिते=जीवदृष्टे सति तदा जातः, ऋणस्य=उद्धारस्य, दाता=दानी, भवेत्।

द्वितीयेश एवं लाभेश इन दोनों ग्रहों के द्रेष्काण स्वामी, जिस नवांश में हों, उस नवांश का स्वामी यदि वैशेषिकांश में हो। मृदु षष्ट्यंश में लग्नेश का नवांशाधिपति स्थित हो और उसे बृहस्पति देखता हो तो मनुष्य इन योगों में दूसरों को ऋण देने की स्थिति में होता है।

दानशील योग :

काव्येक्षितेऽङ्गेशि गिरीशदृष्टे पारावतादौ पथिपेऽथ पुण्ये।
सद्दृष्टयुक्तेऽथ शुभेशमुच्चं प्राप्तं शुभः पश्यति दानशीलः ॥६॥

काव्येति। अङ्गेशि = लग्नेशे, काव्येक्षिते = शुक्रविलोकिते, पथिपे = नवमेशे, गिरीशदृष्टे = जीवविलोकिते, पारावतादौ = पारावतादिदशवर्गगते सति तदा जातः, दानशीलः = दानी स्यादिति शेषः।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। पुण्ये = नवमस्थाने, सद्दृष्टयुक्ते = शुभग्रहावलोकित-सहिते सति। अथानन्तर्य्यार्थे। उच्चं प्राप्तं = उच्चमितं, शुभेशं = नवमेशं, शुभः = सौम्यग्रहः, पश्यति = विलोकयति यदि तदा जातः, दानशीलः = दानी स्यात्।

यदि लग्नेश को शुक्र देखता हो और नवमेश को पारावतांश में गया हुआ बृहस्पति देखता हो।

यदि नवम स्थान शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हो।

यदि नवमेश स्वोच्च राशि में स्थित हो और उसे शुभग्रह देखता हो।

इन सब योगों में उत्पन्न मनुष्य दानी होता है।

इस प्रसंग में वेंकटेश कवि ने कुछ अतिरिक्त योग बताए हैं—

(i) नवमेश स्वोच्च में शुभदृष्ट हो एवं नवम भाव शुभयुक्त हो तो मनुष्य महादानी होता है।

(ii) यदि नवमेश लग्न को या लग्नेश को देखता हो और वह केन्द्र त्रिकोण में स्थित हो।

(iii) नवमेश सिंहासनांश में गया हो और लग्नेश उसे देखता हो। साथ ही कर्मेश की भी दृष्टि हो तो व्यक्ति महादानी होता है।

लंगड़ेपन के योग :

खञ्जोऽब्जार्को सैणकर्काल्यजान्त्यौ
कल्याणस्थौ पङ्कखेटान्वितौ चेत्।
पङ्गु:साघेऽस्तेशि सौरेऽथ कर्के
सौम्यादृष्टौ शर्वरीशार्कसूनू ।।७।।

खञ्ज इति। सैणकर्काल्यजान्त्यौ = मकर-कर्क-वृश्चिक-मेष-मीनसहितौ, पङ्क-खेटान्वितौ = पापग्रहयुक्तौ, अब्जार्को = चन्द्र-शनी, कल्याणस्थौ = नवमस्थितौ स्यातां चेद्यदि तदा जात: खञ्ज: = खञ्जाख्यपादरोगी स्यादिति शेष: ।

हीरारत्ने—

"मेषालिकर्क मृगमीनगतौ शनीन्दू क्रूरान्वितौ भवति तत्र नरस्तु खञ्ज: ।
कर्कालिमीनमृगमेषविलग्नसंस्थे गुर्वारिव्ययसद्मनि भवो भवतीह खञ्ज:" इति।

पङ्गुरिति। साघे = पापसहिते, अस्तेशि = सप्मेशे, सौरे = शनौ सति तदा जात:, पङ्गु: = श्रोण: गतिहीन इति यावत्। भवेदिति शेष: ।

तथा च सुधासागरे—

"भवेन्नरो वा दारेशे शौरे पापग्रहान्विते" इति। पङ्गुल इत्यनुषङ्ग: ।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। कर्के = कर्कराशौ, सौम्यादृष्टौ = शुभग्रहानवलोकितौ, शर्वरीशार्कसूनू = चन्द्र-शनी भवतश्चेत्तदा पङ्गु: स्यात्।

नवम भाव में पापयुक्त शनि एवं चन्द्रमा स्थित हों और नवम भाव में मकर, कर्क, वृश्चिक, मेष, मीन राशि हो तो व्यक्ति के पैर ठीक से काम नहीं करते हैं। वह विकलगति होता है।

सप्तमेश शनि यदि पापयुक्त हो।

कर्क में चन्द्रमा और शनि हों और वे शुभदृष्ट न हों तो इन योगों में मनुष्य लंगड़ा होता है।

इस संदर्भ में कतिपय योग पीछे बताए गए हैं। खंज शब्द का अर्थ बिल्कुल लंगड़ा नहीं है, अपितु जिसके पैरों में कमजोरी, टेढ़ापन, बीच में से चौड़ा होना, पिण्डलियों की समतलता आदि दोष से गति में विकलता आ जाती है, उसे खंज समझना चाहिए।

सभी इस प्रकार के दोषों में अधिक योगों से अधिक फल होगा एवं शुभदृष्टि योग होने से कालान्तर में उपायसाध्य या कम दोष होगा—

याप्या भवन्ति योगाः सौम्यग्रहवीक्षिताः सर्वे।
(कल्याणवर्मा)

बन्धन योग :

बन्धभाग् दुरितपुष्करालयैः प्रान्त्यकोणवचनोपगैर्यदि।
एवमश्ववृषभक्रियोदये बन्धनं भवति रश्मिसम्भवम्॥८॥

बन्धभागिति। दुरितपुष्करालयैः=पापग्रहैः, प्रान्त्यकोणवचनोपगैः=द्वादश-त्रिकोण-द्वितीयगतैः सद्भिः, यदि तदा जातः, बन्धभाग् भवति। एवम्=इति, पापैः, द्वादश-त्रिकोणद्वितीयगतैः, अश्ववृषभक्रियोदये=धनुर्वृषमेषान्यतमलग्ने सति तदा रश्मिसम्भवं=रज्जुजन्यं बन्धनं भवति। नुरिति शेषः।

द्वितीय, द्वादश एवं त्रिकोण में पापग्रह हो तो व्यक्ति को बन्धन, दवाव, गिरफ्तारी आदि होती है।

यदि लग्न में धनु, वृष या मेष राशि हो और द्वादश, द्वितीय, त्रिकोणों में पापग्रह हों तो मनुष्य को रस्सी से बांधा जाता है।

बन्धन योगों का विशेष विचार हम अपने **जातकतत्त्व अखिलाक्षरा** में कर चुके हैं। वहां पर कई योग बताए गए हैं। २-१२, ५-६, ३-११, ४-८, ६-१२ भावों के जोड़ों (युगल) में यदि एक साथ पाप ग्रह हों तो बन्धन होता है, यदि शुभ ग्रह हों तो बन्धन नहीं होता। ऐसा समझना चाहिए। ग्रन्थकार ने यह योग जातकालंकार के आधार पर बताया है।

॥ इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां व्ययभावाध्यायश्चतुर्दशः ॥

[१५]

भावसारांशाध्यायः

भाव विचार की सर्वमान्य पद्धति :

यो यो भावः पङ्क्दृग्योगमुक्तो
युक्तो दृष्टः स्वामिना सत्सुभेशैः ।
व्यस्तद्विड्नीचर्क्षगैस्तस्य वृद्धि-
र्हानिः पापैः स्वर्क्षकोणोच्चगोनैः ।।१।।

य इति । यो यो भावः, पङ्क्दृग्योगमुक्तः=पापदृष्टियोगरहितः, स्वामिना=निजाधिपेन व्यस्तद्विड्नीचगैः=अस्त-शत्रु-नीचराशिगतरहितैः सत्सुभेशैः=सौम्यसुस्थानेशैः, युक्तः=सहितः, दृष्टः=विलोकितः यदि तदा तस्य भावस्य, वृद्धिरुपचयः स्यादिति शेषः । एवं यो यो भावः, स्वर्क्षकोणोच्चगोनैः=स्वराशि-मूलत्रिकोण राशि-उच्च-राशिगतरहितैः, पापैः, युक्तः=सहितः, दृष्टः=विलोकितः, यदि तदा, तस्य भावस्य हानिः=अपचयः स्यादिति शेषः ।

जिस भाव को पापी ग्रहों की दृष्टि या योग प्राप्त न हो, जो भाव अपने स्वामी ग्रह से दृष्ट या युक्त हो, जो भाव नीचास्तंगत शत्रु राशिस्थ शुभ भावों के अधिपति ग्रहों से दृष्ट या युक्त हो उसी भाव की वृद्धि होती है।

इसके विपरीत स्वराशि, त्रिकोणोच्च राशिगत पापग्रह के अलावा शेष पापग्रहों में से किसी एक या अधिक पापग्रह से अथवा दुष्ट स्थानों (६, ८, १२) के स्वामियों से दृष्ट या युक्त होगा, उसी भाव की हानि होगी।

किसी भी भाव का विचार करते समय जब उस भाव की वृद्धि दृष्ट हो तो समझना चाहिए कि इस भाव से सम्बन्धित विषयों (कारकत्व) की वृद्धि होगी। वे चीजें जातक को प्राप्त होंगी। हानि दृष्ट होने पर उन वस्तुओं की हानि होगी, ऐसा समझना चाहिए।

यह एक सामान्य लेकिन सर्वमान्य फलित का नियम है कि जिस

भाव को उसका स्वामी या शुभग्रह देखें या योग करें और पापी न देखें तो उस भाव की वृद्धि होती है।

यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा,
सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्याभिवृद्धिः।
(पृथुयशा)

लेकिन फलदीपिका प्रभृति ग्रन्थों में शुभ भावेशों को भी भाव वृद्धिकारक माना है। यह बात उपयुक्त भी है।

पाराशर सिद्धान्त में शुभ व पापग्रहों का विभाजन दो प्रकार से होता है। प्रथम तो स्वाभाविक या नैसर्गिक शुभत्व एवं पापत्व। जैसे गुरु, शुक्र, पापसंगमुक्त बुध व पूर्ण चन्द्रमा शुभग्रह हैं तथा शेष सभी पापग्रह हैं।

दूसरे विभाग का आधार भावेशत्व है। यह विभाग भी फलित में उपयुक्त है। शुभ भावों के स्वामी शुभ एवं अशुभ भावों के स्वामी अशुभ माने जाते हैं चाहे वे स्वाभाविक रूप से शुभ या पाप कैसे भी हों। इस दृष्टि से ६, ८, १२ भावों के स्वामी पाप एवं शेष स्थानों के स्वामी शुभ माने जाएंगे। वैसे शुभ व पाप भावों का विभाग इतना सरल नहीं है। इस विषय में लघुपाराशरी में विशिष्ट एवं अकाट्य सिद्धान्त बताए गए हैं। फलित के किसी भी जिज्ञासु को लघुपाराशरी पढ़े बिना आगे बढ़ना सम्भव नहीं हो सकेगा। यह ग्रन्थ मूल है तथा शेष ग्रन्थ तने, पत्ते या फल-फूल। यदि मूल ही छिन्न हो जाए तो—

छिन्ने मूले नैव पत्रं न शाखा।

अतः जिसने लघुपाराशरी नहीं पढ़ी उसने कुछ भी नहीं पढ़ा। हमने अपनी **लघुपाराशरी विद्याधरी** में मूल ग्रन्थ के समग्र आसव को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। पाठक अवलोकन करें।

इस प्रकार नैसर्गिक शुभग्रह यदि ६, ८, १२ का स्वामी होगा तो अपने शुभत्व की मात्रा को कम कर देगा। इसी कारण नैसर्गिक एवं भावेशत्व दोनों आधारों पर शुभग्रहों का निर्णय कर उनसे दृष्ट व युक्त भाव को बलवान् व फलप्रद समझना चाहिए।

अब एक बात और शेष है। कोई भी ग्रह अपने घर को नष्ट नहीं करता है। जो पापी ग्रह भी जिस भाव का स्वामी होगा वह यदि निज भाव से दृग्योग सम्बन्ध रखेगा तो उसकी वृद्धि अवश्य होगी। इसी

प्रकार पापग्रह हो या शुभ जो नीच राशि में, शत्रु राशि में या अस्तंगत हो. अथवा दुष्ट स्थानों में विशेषनया अष्टम में गया हो, अथवा शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट न हो, उस ग्रह के भाव की हानि होगी। जो ग्रह स्वोच्च, मूलत्रिकोण या निज राशि या मित्र राशि में होगा, उसकी वृद्धि होगी।

भावफल के विषय में विस्तार से हमने अपनी **भावमंजरी प्रणवाख्या** में बताया है। **सारावली** में कहा गया है—

आत्मीयनाथदृष्टः सहितस्तेनैव तत्प्रियैर्वापि।
शशिसुतजीवाभ्यामपि राशिर्बलवान्न चेच्छेषैः॥

(सारावली, ३.२५)

अफल ग्रह के लक्षण कल्याणवर्मा ने बताए हैं—

क्रूराहतः शत्रुजितो गतश्च नीचेऽरिभांशेष्वपि दुष्टचेष्टः।
षष्ठाष्टमे रिःफगतेऽणुरुक्षो विनाधिकारोऽप्यफलो ग्रहेन्द्रः॥

(सारावली)

उच्चराशिगत ग्रह पूर्ण शुभ फल, मूलत्रिकोणगत तिहाई शुभ फल, स्वराशिगत आधा शुभ फल एवं मित्रक्षेत्री या शुभ वर्गस्थ ग्रह चौथाई शुभ फल करता है। यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए। इसी विषय को ग्रन्थकार अगले श्लोक में बता रहे हैं।

विपक्षभस्थोऽधरराशिमाश्रितः
सः योऽभ्रगो भावविनाशकृद्भवेत्।
समः समर्क्षे सखिभत्रिकोणभ-
स्वभोच्चयातो भवनस्य वृद्धिकृत्॥२॥

विपक्षेति। योऽभ्रगः=ग्रहः, विपक्षभस्थः=शत्रुराशिस्थितः, अधरराशि-माश्रितः=नीचराशिगतश्च स भावविनाशकरो भवेत्। योऽभ्रगः सखिभत्रिकोण-भस्वभोच्चयातः=मित्रराशि-मूलत्रिकोणराशि-स्वराशि-स्वोच्चराशियातः स भवनस्य=भावस्य, वृद्धिकृत्=उपचयकर्ता भवेत्।

तथोक्तं गर्गजातके—

"नीचस्थो रिपुगेहस्थो ग्रहो भावविनाशकृत्।
उदासीनग्रहो मध्यो मित्रस्वर्क्षत्रिकोणगः॥
स्वोच्चगश्चग्रहोऽवश्यं भाववृद्धिकरः स्मृतः।
व्ययाष्टषष्ठभावेषु वैपरीत्यत्वमावहेत्॥

जो ग्रह अपनी नीच राशि या अपने शत्रु की राशि में हो वह अपने भाव का नाश करता है।

जो ग्रह समग्रह की राशि में हो वह मध्यम शुभ अर्थात् शुभाशुभ मिश्रित फल देता है।

जो ग्रह मित्र राशि, स्वराशि, मूलत्रिकोण राशि या स्वोच्च राशि में हो तो क्रमशः अधिकाधिक अपने भाव की वृद्धि करने वाला होता है।

भावफल का स्पष्टीकरण :

मित्रारिराशिपरकीयनिजर्क्षतुङ्ग-
स्थानां फलं दिविषदामनुचिन्तनीयम्।
लग्नात्तनूमुखगृहैः शुभगर्हितेषु
वृद्धिक्षती त्रिकगृहेषु विलोमतस्ते॥३॥

मित्रेति। यदेतत्प्रतिभवनं तनोः प्रभृतिद्वादशसु स्थानेषु फलमनुचिन्तनीयम्। भवनानि तनुकुटुम्बसहोत्थादीनि। लग्नात्तनूमुखगृहैरिति। तनूर्देहः शरीरमिति यावत्। परिकल्प्यम्। लग्नादारभ्य तनु कुटुम्ब सहोत्थादयो भावाः परिकल्प्याः। न तु चन्द्रभात्परिकल्प्याः। तेषु तनूपूर्वभावेषु यः खगः स्थितः स तस्य भावस्य पुष्टिं कृशतां वा विदधाति। कथमित्याह। मित्रारिराशिपरकीयनिजर्क्षतुङ्गस्थानां फलं दिविषदामनुचिन्तनीयम्। मित्रक्षेत्रं मित्रर्क्षम्। अरिराशिः शत्रुभम्। परकीयमुदासीनभम्। निजर्क्षमात्मीयक्षेत्रम्। तुङ्गमुच्चम्। एतेषु स्थानेषु स्थितानां दिविषदां ग्रहाणां फलमनुचिन्तनीयं परिकल्प्यम्। भावगतः खगो यादृशे भवने भवति तादृशं फलं वितरति। मित्रक्षेत्रस्थो भाववृद्धिं करोति। शुभक्षेत्रादिस्थश्च तद्धानिम्। उदासीनक्षेत्रस्थो न हानिं न च वृद्धिम्। स्वभोच्चस्थोऽपि भाववृद्धिं करोति। वृद्धिक्षती शुभगर्हितेषु वदति। यस्मिन् गृहे शोभनाः स्थितास्तस्य गृहस्य वृद्धिमुपचयं विदधते। यस्मिन् भवने पापाः स्थितास्तस्य भावस्य क्षतिं हानिं विदधते। किन्तु त्रिकगृहेषु दुष्टस्थानेषु ते वृद्धिक्षती विलोमतो विपरीतं वदन्ति। द्वादशे शुभा व्ययहानिं विदधते। अशुभा व्ययवृद्धिम्। षष्ठे शुभाः शत्रुहानिं विदधते। अशुभाः शत्रुवृद्धिम्। अष्टमे शुभा मृत्युहानिं विदधते। अशुभा वृद्धिं विदधते।

तथा च सत्यः—

"सौम्याः पुष्टिं पापास्तद्धानिं संश्रिता ग्रहाः कुर्युः।
मूर्त्यादिषु निधनेऽन्त्ये षष्ठे च विपर्ययात्फलदाः" इति॥

मित्र राशिगत ग्रह शुभ, शत्रु राशिगत हानिकारक होगा।

समराशिगत ग्रह मध्यम होगा, अर्थात् न शुभ, न अशुभ; न हानि, न लाभ।

इसी प्रकार स्वराशि, मूलत्रिकोण राशि तथा उच्च राशि में ग्रह अपने भाव की वृद्धि करता है तथा नीचास्तंगत ग्रह सदैव भाव हानि करता है।

भाव में स्थित शुभग्रह भाव वृद्धिकारक और पापग्रह भाव हानिकारक होते हैं।

लेकिन षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भावों के विषय में विपरीत क्रम अपनाना चाहिए। अर्थात् इन ६, ८, १२ भावों में शुभग्रह भाव की हानि करने वाले होते हैं।

श्लोक के पूर्वार्ध की व्याख्या पहले की जा चुकी है। अब उत्तरार्ध को लीजिए। सामान्य नियम है कि शुभग्रह भाव वृद्धिकारक एवं पापग्रह भाव हानिकारक होते हैं। यह बात सर्वत्र लागू होती है और यहां इस श्लोक में भी यह विरुद्ध कथन नहीं है। ६, ८, १२ भाव क्रमशः रोग, मृत्यु व हानि के प्रतिनिधि हैं। अतः इन स्थानों में शुभग्रह सदा की तरह अशुभ फल को दूर करेंगे या कम करेंगे। अतः शुभग्रह यहां रोग, मृत्यु आदि की हानि कर परमार्थतः शुभ ही रहेंगे और पापग्रह इन तत्त्वों की वृद्धि करेंगे जो किसी को भी अभीष्ट नहीं है। अतः सत्याचार्य ने सरलता की दृष्टि से ऐसा कह दिया है कि ६, ८, १२ भावों का विचार विपरीत क्रम से करना चाहिए।

यहां ध्यान रखिए कि शुभग्रह इन भावों में बैठकर इन भावों के तो अशुभ फल को हटा देंगे लेकिन वे जिस भाव के स्वामी होंगे तो उस भाव की हानि भी करेंगे। अतः वराहमिहिर ने लघुजातक में अष्टम व द्वादश भाव में सभी ग्रहों को अशुभ इसी दृष्टि से बताया है—**सर्वे नेष्टा व्ययाष्टमगाः।**

इन तीनों भावों में भी दुष्टता का क्रम है। इनमें सर्वाधिक दुष्ट भाव अष्टम है। अष्टम भावेश जहां हो उस भाव का एवं जिस भाव का स्वामी अष्टम में हो उस भाव का भी नाश हुआ समझिए। इससे कम दुष्ट व्यय एवं सबसे कम दुष्ट (इन तीनों में) षष्ठ भाव है। जातकादेश मार्ग में तो स्पष्ट कहा गया है—**'तत्राति कष्टोऽष्टमः।'**

इस प्रकार निश्चित होने वाले फल की सम्पूर्ण प्राप्ति तभी होगी जब ग्रह भाव स्पष्ट के तुल्य अंश में होगा। यदि आगे-पीछे हो तो अनुपात से उक्त फल में हानि या वृद्धि कहनी चाहिए।

सन्धिगत ग्रह सर्वथा फल देने में असमर्थ होता है। मन्त्रेश्वर ने कहा है—

भावेषु भावस्फुटतुल्यभागस्तद्भावजं पूर्णफलं विधत्ते।
सन्धौ फलं नास्ति तदन्तराले चिन्त्योऽनुपातात् खलु खेचराणाम्॥

(फलदीपिका)

यहां पाठकों की सूचनार्थ एक बात और बता दें कि आजकल प्रचलित दशम भाव स्पष्ट, खमध्य या याम्योत्तर वृत्तीय प्रणाली पर आधारित भाव स्पष्ट प्रणाली बिल्कुल वृथा एवं कोरी गप्पबाजी है। वास्तव में लग्न स्पष्ट की राश्यंश कला विकला में १५° अंश जोड़ते जाएं तो सभी सन्धियां होंगी और सन्धि में फिर १५° अंश जोड़ते चलें तो भाव स्पष्ट होंगे। सदैव लग्न स्पष्ट के तुल्य ही सभी भाव स्पष्ट होंगे अर्थात् भाव मध्य माने जाएंगे। जिस प्रकार भाव स्पष्ट तुल्य अंशों वाला ग्रह भाव में स्थित माना जाता है, उसी प्रकार सन्धि के तुल्य अंशों वाला ग्रह ही सन्धि में माना जाएगा। आगे या पीछे (सन्धि से) होने पर वह भाव में ही होगा और अनुपात से फल निर्णय होगा। अतः पद्धत्युक्त भाव स्पष्ट व चलित चक्र प्रणाली निरुपयोगी ही है। इस विषय में **कमलाकर भट्ट** ने **सिद्धान्ततत्त्व विवेक** में सुन्दर खण्डन लिखा है। हमने भी इस संदर्भ में विस्तार से **जैमिनीसूत्र, शान्तिप्रियभाष्य** में, **फलित विकास** की टिप्पणियों में, **षट्पंचाशिका** की हिन्दी व्याख्या में व और भी कई स्थानों पर लिखा है। पाठक अवश्य इस विषय में विचार करें। यही वास्तविक भारतीय पद्धति है।

वर्ग से शुभाशुभ निर्णय :

ये ये भावाः सौम्यवर्गाश्रिताः स्यु
स्ते निःशेषाः सौम्यतां प्राप्नुवन्ति।
नेष्टा ज्ञेयास्तेऽघवर्गाश्रिता ये
ते मिश्राः स्युर्मिश्रवर्गोपयाताः॥४॥

य इति। ये ये भावाः सौम्यवर्गाश्रिताः=सौम्यानां शुभग्रहाणां वर्गा गृहादयस्तै-

राश्रिता युक्ताः स्युः। ते निःशेषाः = समस्ता भावाः सौम्यतां शोभनत्वं प्राप्नुवन्ति = लभन्ते। ये भावाः, अघवर्गाश्रिताः = पापगणाश्रिताः, ते नेष्टाः = अशुभाः, ज्ञेयाः। ये भावाः, मिश्रवर्गोपयाताः = शुभाशुभवर्गाश्रिताः स्युः। ते मिश्राः = मध्यमाः, ज्ञेयाः।

जिन भावों में शुभग्रहों के वर्ग पड़ते हों, वे भाव सदैव शुभ फल देते हैं।

जिन भावों में अशुभ ग्रहों के वर्ग पड़ें, वे भाव अशुभ फलदायक होते हैं एवं मिश्र ग्रहों के वर्ग से मध्यम मिश्रित फल देते हैं।

यह अपना वर्ग या शुभ वर्ग क्या है? गृह, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिशांश ये ६ वर्ग हैं। इनमें से यथासम्भव तीन वर्गों में ग्रह स्ववर्गी कहला सकता है। क्योंकि सूर्य व चन्द्र का त्रिशांश नहीं होता और मंगलादि ग्रहों की होरा नहीं होती है। अतः अधिकतम ५ वर्गों में ग्रह अपनी राशि में हो सकता है।

इन ६ वर्गों में से कम-से-कम तीन स्थानों पर ग्रह स्वराशि में हो तो स्ववर्गी, मित्र राशियों में हो तो मित्रवर्गी, शत्रु राशियों में शत्रुवर्गी, शुभग्रहों की राशियों में शुभवर्गी, पापग्रहों की राशियों में पापवर्गी कहलाता है। इनमें सप्तमांश जोड़ने से सप्तवर्ग बनते हैं। षड्वर्गों या सप्तवर्गों में मित्र, स्व, त्रिकोण, उच्च वर्गोत्तमी आदि शुभ वर्ग व नीच, पाप, शत्रु आदि पाप वर्ग कहलाते हैं। गर्गाचार्य ने ३ स्थानों पर होने से उक्त संज्ञा मानी है—

त्र्यादिष्वपि पदार्थेषु स्थितः स्वेषु स्ववर्गगः।
पंचवर्गगतोऽप्येवं ग्रहो भवति नान्यथा॥
(गर्गाचार्य)

भाव व भावेश बल से शुभाशुभत्व :

होरातदीशौ सबलौ चितिः स्यात्-
तयोः फलानां बलवर्जितौ तौ।
स्याद्धानिरेवं निखिलालयेषु
ते भावनाथोर्ज्जवशेनचिन्त्ये॥५॥

होरेति। होरातदीशौ = लग्न-लग्नेशौ, सबलौ = बलसहितौ भवेताम्। यदि तदा, तयोः = लग्नलग्नेशयोः, फलानां = शुभाशुभानां, चितिः = उपचयः स्यात्। यदि

तौ (होरातदीशौ) बलवर्जितौ=वीर्यरहितौ स्याताम् । तदा तयोः फलानां हानिः=क्षतिः स्यात्। एवममुना प्रकारेण, निखिलालयेषु=समस्तभावेषु, भावनाथोर्ज्जवशेन=भावभावेशयोर्वलवशेन ते (चितिहानी) चिन्त्ये=कल्पनीये।

लग्न एवं लग्नेश दोनों वलवान् हों तो लग्न एवं लग्नेश के फल की वृद्धि होती है। यदि वे वलरहित हों तो उनके फलों की हानि होती है।

इसी प्रकार सब भावों एवं भावेशों के वलावल के आधार पर भाव के फल की हानि या वृद्धि जाननी चाहिए।

आशय यह है कि जिस भाव का स्वामी बलवान् होगा या विचारणीय भाव बली होगा, उसी भाव की वृद्धि होगी। ६, ८, १२ भावों के विषय में विपरीत क्रम से देखना होगा।

लग्न या लग्नेश कब वली होगा, इस विषय में वराहमिहिर, वादरायण, पृथुयशा आदि का मत है कि लग्न को बृहस्पति, बुध या लग्नेश या सौम्य ग्रह देखते हों तो वह वलवान् होगा। इसी प्रकार पाप योग, पाप दृष्टि या भावेश पर पाप दृग्योग एवं शुभ दृग्योग की रहितता भाव को निर्वल करेगी।

पहले ग्रहशीलाध्याय में बताए गए वलावल का विवेक भी करना चाहिए। कहा गया है—

'होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नान्यैश्च वीर्योत्कटा।'

(वराहमिहिर)

राशि की वलवत्ता के विषय में कहा गया है कि स्वामी, गुरु, बुध व पूर्ण चन्द्रमा से दृष्ट या युक्त हो एवं अन्यों से युक्त दृष्ट न हो तो राशि वलवान् होती है—

'योऽधिनाथ युतो दृष्टो बुधजीवेन्दुवीक्षितः।
शुभस्थानगतो राशिर्वीर्यवान्नन्यथा नहि॥'

(सूर्यजातक)

इसी प्रकार शुभ स्थानों में गई राशि भी वलवान् मानी जाएगी। यहां पद्धत्युक्त बलसाधन के फेर में नहीं पड़ना चाहिए। दृष्टि भी राशि से राशि तक हो लेनी चाहिए। दृग्वल या अंशात्मक दृष्टि साधन भी विडम्बना मात्र ही है।

इसी प्रकार भाव के स्थिर कारक के बलाबल से भी भाव की बलवत्ता का निर्णय करना चाहिए। कहा गया है—

'भावे शुभर्क्षे शुभनाथमित्रैर्युक्ते बलाढ्यैरवलोकिते वा।
भावाधिपे कारकखेचरे वा बलान्विते सिद्धिमुपैति भावः॥'

(जातकादेशमार्ग)

इन स्थितियों में भाव बलवान् होकर अपना फल देता है—

(i) भाव में शुभग्रह की राशि हो।

(ii) भाव में भावेश, भावेश के मित्र या शुभग्रह बैठे हों या भाव को देखते हों और स्वयं बलवान् हों।

(iii) भावेश या भावकारक बलवान् हो।

(iv) भाव या भावेश को शुभ भावों के स्वामी देखते हों या युक्त हों।

भावों का विचार लग्न कुण्डली या चन्द्र कुण्डली से बलानुसार करना चाहिए।

त्रिकस्थ ग्रह का शुभाशुभत्व :

दुःस्थं गतो यस्य निकेतनस्य
नाथस्त्रिकेशो भवनेऽस्ति यस्मिन्।
नेष्टेक्षितस्तस्य गृहस्य नाशः
स्वर्क्षोच्चगो दुष्टमितोऽपि नासन्॥६॥

दुःस्थामिति। तस्य निकेतनस्य=भावस्य, नाथः=स्वामी, दुःस्थगतः=षष्ठाष्टमव्ययगतः, त्रिकेशः=दुष्टभावेशोऽपि यस्मिन् भवने=भावेऽस्ति, इष्टेक्षितः=शुभदृष्टः, न स्यात्। तस्य गृहस्य=भावस्य, नाशः=हानिः स्यादिति शेषः।

स्वर्क्षेति। यो ग्रहो दुष्टं=त्रिकमितः प्राप्तः सन्नपि, स्वर्क्षोच्चगः=स्वराशि-स्वोच्चराशि गतश्चेत्तदा असन्=अशुभः, न भवेदिति शेषः।

तथोक्तं वैद्यनाथेन—

"दोषकृन्न तु सर्वत्र स्वोच्चस्वर्क्षगतो ग्रहः" इति।

जिस भाव का स्वामी त्रिक स्थानों (६, ८, १२) में गया हो, जिस भाव में स्वयं त्रिकेश बैठ गए हों, उस भाव के फल की हानि होती है।

यदि कोई ग्रह स्वोच्च या स्वराशिगत होकर त्रिक में भी गया हो तो उस ग्रह का अशुभ फल नहीं होता है।

यदि उक्त भाव या भावेश शुभदृष्ट-युक्त हों तो भाव का सुख होता है।

इस प्रकार भाव के फलदातृत्व या फलनाशत्व का निर्णय कर लेने के बाद हमें यह जानना शेष रह जाता है कि उक्त भाव फल कब मिलेगा? इस विषय में हमारी **भावमंजरी प्रणवाख्या** के भाव फल काल बोध प्रकरण (पृ० १२२-१५४) का अध्ययन श्रेयस्कर होगा। यहां संक्षेप में कुछ बातें बता रहे हैं—

(i) भावेश या कारक की दशान्तर्दशा या गोचर में फल मिलेगा।

(ii) भाव राशि, भावेश राशि या नवांश या त्रिकोणों में जब भावकारक या लग्नेश का गोचर हो।

(iii) लग्न, लग्नेश की अधिष्ठित राशि में या इन दोनों के नवांश में भावकारक या भावेश गोचरवशात् आए।

(iv) जब गोचर में लग्नेश एवं भावेश का सम्बन्ध हो।

(v) जब भावेश की अधिष्ठित राशि या नवांश राशि से त्रिकोण में गुरु गोचर करे।

(vi) लग्नेश, भावेश व भावकारक के स्पष्ट राश्यादि योग में या उसके नवांश में जब गोचर से बृहस्पति आए।

इस प्रकार भाव फल प्राप्ति का समय निश्चय कर फलादेश करने वाले की वाणी कभी मिथ्या नहीं होती है।

।। इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां प्रणवरचनायां भावसारांशाध्यायः पंचदशः ।।

[१६]

प्रकीर्णविषयाध्याय:

कारकांश कुण्डली विचार :

भागे भौमे कौन्तिको धातुवादी
वह्न्याजीवी गीष्पतौ कारकांशे।
कर्म्मज्ञानी वेदविद्दानकर्त्ता
ऽशेपूर्णेन्दुर्भेक्षितो भोगभाक् च ॥१॥
विद्याजीवी दैवभे कारकांशात्
सद्भिर्दृष्टे संयुते सत्यवादी।
स्याद्धर्म्मात्माऽऽचार्य्यभक्तोऽन्यथा न
भागे काव्ये राजसेवी च कामी ॥२॥

भाग इति। विद्येति च। भागे=कारकांशे, भौमे=मङ्गले सति तदा जात:, कौन्तिक: कुन्त एव कौन्त: स आयुधमस्य, कौन्त:=प्रास:, 'भाला' इति भाषायाम्। धातुवादी=अनेकविधधातुविधिवेत्ता। वह्न्याजीवी=अग्निजीवनकर्त्ता। स्यादिति शेष:।

गीष्पतावपि। कारकांशे, गीष्पतौ=जीवे भवति, तदा जात:, कर्मज्ञानी=ज्ञान-कर्म-निरत: वेदवित्=वेदज्ञ:, दानकर्त्ता च भवेदिति शेष:।

अंश इति। अंशे=कारकांशे, भेक्षित:=शुक्रदृष्ट:, पूर्णेन्दु:=परिपूर्णबिम्बचन्द्र: भोगभाक्=भोगी, विद्याजीवी, विद्यया जीवनकर्त्ता च स्यादिति शेष:।

दैवभ इति। कारकांशाद्=दैवभे=नवमे, सद्भि:=शुभग्रहै:, दृष्टे=विलोकिते, संयुते=सहिते सति, तदा जात:, सत्यवादी=सत्यनिरत:, धर्मात्मा=धार्मिक:, आचार्यभक्त:=गुरुभक्तश्च स्यादिति शेष:। चेदन्यथा=उक्तप्रकाराद्विपरीते न भवति।

भाग इति। भागे = कारकांशे, काव्ये = शुक्रे सति, तदा जातः, राजसेवी = राजकार्यकर्त्ता, कामी = कामुकश्च, स्यादिति शेषः।

तथोक्तं जैमिनिपद्यामृते—

"भार्गवेतु पुरुषायुग्रजीवी कामुकोनृपतिशिष्टनिविष्टः" इति ॥

कारकांश कुण्डली के लग्न में मंगल हो तो मनुष्य शस्त्रधारी, भाला-वर्छी धारण करने वाला, विविध धातुओं के विधान एवं प्रयोग को जानने वाला होता है। ऐसा व्यक्ति अग्नि कर्म से अपनी जीविका चलाता है।

यदि कारकांश लग्न में बृहस्पति हो तो कर्म ज्ञानी, वेदार्थ का ज्ञाता, दानी होता है।

यदि कारकांश लग्न में शुक्र से दृष्ट पूर्ण चन्द्रमा हो तो भोगवान्, विद्या से जीविका चलाने वाला होता है।

यदि कारकांश लग्न से नवम स्थान शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो मनुष्य सत्यवादी, धर्मात्मा एवं गुरुभक्त होता है।

यदि उक्त नवम भाव पाप दृष्ट युक्त हो तो असत्यवादी, अधर्मी होता है।

कारकांश लग्न में शुक्र हो तो राजकार्य करने वाला एवं कामी होता है।

उक्त विवेचन ग्रन्थकार ने जैमिनि सूत्रों के आधार पर प्रस्तुत किया है। सभी ग्रहों में सर्वाधिक अंश वाला ग्रह आत्मकारक एवं उससे कम अंश वाला अमात्यकारक होता है। यह आत्मकारक ग्रह जिस नवांश में हो वही नवांश राशि लग्न स्थान पर लिखकर बनाई गई कुण्डली **'कारकांश कुण्डली'** कही जाती है। इस कुण्डली में सभी ग्रहों की स्थापना नवांश कुण्डली की तरह होती है।

उसी कारकांश कुण्डली के आधार पर फलादेश लिखा गया है। कुछ लोगों के मतानुसार कारकांश लग्न में राशि, आत्मकारकाश्रित नवांश राशि ही होती है; लेकिन ग्रहस्थापन जन्म लग्न कुण्डलीवत् होता है। हमारे विचार से नवांशवत् ही ग्रह स्थापना करनी चाहिए। स्वांश व कारकांश परस्पर पर्यायवाची शब्द हैं। इस विषय में विस्तृत विवेचन एवं फलादेश के विविध पक्ष हमारे **जैमिनिसूत्र (सम्पूर्ण)** शान्तिप्रिय भाष्य में देखें।

अंशके फणिनि कार्मुकधारी
तस्करः किमु लवात्तिमिरारौ।
मन्मथे व्रतयुता विकलाङ्गी
भामिनी भवति तस्य नरस्य ॥३॥

अंशक इति। अंशके=कारकांशे, फणिति=राहौ सति, तदा जातः, कार्मुकधारी=धनुर्द्धारी धानुष्क इति यावत्। किमु=अथवा, तस्करः=चौरः स्यादिति शेषः।

लवादिति। लवात्=कारकांशलग्नात्, मन्मथे=सप्तमे, तिमिरारौ=रवौ भवति, तदा यो जातस्तस्य नरस्य भामिनी=स्त्री, व्रतयुता=पतिव्रता, विकलाङ्गी च स्यादिति शेषः।

कारकांश लग्न में राहु हो तो धनुर्धारी अथवा चोर होता है। कारकांश में सप्तम स्थान में सूर्य हो तो ऐसे पुरुष की स्त्री पतिव्रता लेकिन विकलांग होती है।

जप ध्यान समाधि योग :

खेशांशनाथांशकपे बलान्विते
खेशे शुभे वा नवमे खपेऽङ्कपे।
वीर्यान्विते भेज्यसमेतलोकिते
नित्यं जपध्यानसमाधिभाङ् नरः॥४॥

खेशेति। खेशांशनाथांशकपे=दशमेशस्य यो नवांशनाथस्तस्य यो नवांशपतिस्तस्मिन्, बलान्विते=बलैर्युक्ते, खेशे=दशमेशे, शुभे=नवमे सति, तदा जातो नरः, नित्यं=सदा, जपध्यानसमाधिभाक्=जप-ध्यान-समाधिशीलः, स्यादिति शेषः।

वेति। वा विकल्पार्थे। खपे=दशमेशे, नवमे=भाग्ये, अङ्कपे=नवमेशे, वीर्यान्विते=बलयुक्ते, भेज्यसमेतलोकिते=शुक्र-गुरुयुक्तदृष्टे सति तदा जातो नरः जपध्यानसमाधिभाक् स्यात्।

दशम भाव के स्वामी का नवांशेश, जिस ग्रह के नवांश में हो और नवम दशमेश गया हो।

यदि दशमेश नवम भाव में गया हो और बलवान् नवमेश शुक्र व गुरु से युक्त या दृष्ट हो तो इन योगों में पैदा हुआ व्यक्ति जप, ध्यान, समाधि में संलग्न धार्मिक एवं सात्त्विक होता है।

स्त्री नाश एवं संन्यास योग :

द्यूनेऽङ्गनाथे दयिता न जीवेद्
यद्वा विरक्तो मलिने विलग्ने ।
नो निर्मलैर्युक्तनिरीक्षितेऽस्मिन्
संन्यासभाग्वा प्रलयोऽबलायाः ॥५॥

द्यून इति । अङ्गनाथे = लग्नेशे, द्यूने = सप्तमे भवति तदा जातस्य, दयिता = स्त्री, न जीवेत्, यद्वा = अथवा, विरक्तः = विरतः, भवेदिति शेषः ।

तथोक्तं सुधानिधौ =
"दारगे तनुपतावुत दारादारिताऽसुविकला मलधाराः ।
स्यात्प्रवासनिरतो विधुरोऽतो भूपभूरपि दरिद्र इवार्त्तः" इति ॥

मलिन इति । विलग्ने = तनौ, मलिने = पापग्रहे, निर्मलैः = शुभग्रहैः, युक्त-निरीक्षिते = सहितविलोकिते, अस्मिन् योगे जातो जनः संन्यासभाक्-काम्यकर्म्म-परित्यागशीलः तस्दाबलायाः स्त्रियाः प्रलयः नाशः स्यादिति शेषः ।

यदि लग्नेश सप्तम भाव में गया हो तो स्त्री जीवित नहीं रहती अथवा व्यक्ति विरक्त या संन्यासी होता है ।

लग्न में पापग्रह हो और उसी पापी ग्रह को शुभग्रहों का योग अथवा दृष्टि प्राप्त न हो तो मनुष्य की स्त्री की मृत्यु होती है अथवा वह विरक्त संन्यासी होता है ।

संन्यासी, तपस्वी, परिव्राजकादि योगों का विशेष विवेचन बृहज्जातक एवं सारावली के प्रव्रज्याध्याय एवं संन्यासयोगाध्याय में विस्तार से किया गया है । यहां श्लोकोक्त योगों में स्त्री सुख की कमी एवं तज्जन्य विरक्तता ही समझनी चाहिए । ये स्वतन्त्र संन्यास योग नहीं हैं ।

दयालु प्रभृति योग :

वक्षोगृहे वैरिणि विग्रहेशे
जातो दयाविक्रममानयुक्तः ।
कायेश्वरे कर्म्मणि के सुखी च
कामी धनेशे चरमेऽर्थमुक्तः ॥६॥

मानो च सेज्ये सहजेशि धीरो
जातो जनः शास्त्रविशारदश्च।
सारे सहोत्थेशि जडः प्रचण्डः
कोपी च सोत्थाधिपतौ समान्दौ ॥७॥

धीरो दृढः स्याज्जनितो जडश्च
दैवात्मकेन्द्रे पथिपे सुखेटैः।
प्रोद्वीक्षिताढ्ये धनभागधेय-
विद्यायुतः सौजसि तीर्थनाथे ॥८॥

पारावतादौ सुकृती धनी च
मानी गुणी साधरभे ग्रहेशे।
उग्रेक्षितेऽरौ मरणे महीप-
कोपात्स्वनाशो जनकस्य मृत्युः ॥९॥

वक्षोगृह इति। मानीति। धार इति। पारावतादाविति च। विग्रहेशे=लग्नेशे, वक्षोगृहे=तृतीये, वैरिणि=षष्ठे वा सति तदा जातः, दयाविक्रममानुयुक्त=दयालुः, विक्रमी, मानी च स्यादिति शेषः।

कायेश्वर इति। कायेश्वरे=लग्नेशे, कर्म्मणि=दशमे, के=चतुर्थे वा सति तदा सुखी कामी च स्यादिति शेषः।

धनेश इति। धनेशे=द्वितीयेशे. चरमे=व्यये सति तदा अर्थमुक्तः=धनरहितः, मानी च स्यादिति शेषः।

सेज्य इति। सेज्ये=गुरुसहिते, सहजेशि=तृतीयेशे सति तदा जातो जनो धीरः=धैर्यशाली, शास्त्रविशारदः=शास्त्रवेत्ता च स्यादिति शेषः।

सार इति। सारे=भौमसहिते, सहोत्थेशि=तृतीयेशे सति तदा जातः, जडः=अलसो मूर्ख इति यावत्। प्रचण्डः=तीक्ष्णस्वभावः, कोपी=रोषवांश्च स्यादिति शेषः।

सोत्थेति। समान्दौ=गुलिकसहिते, सोत्थाधिपतौ=तृतीयेशे सति तदा जातो जनितः, धीरः=धैर्यवान्, दृढः=बलवान्, जडः=अलसश्च स्यात्।

दैवेति। पथिपे=नवमेशे, दैवात्मकेन्द्रे=नवम-पञ्चम-केन्द्रे, सुखेटैः=शुभग्रहैः, प्रोद्वीक्षिताढ्ये=विलोकितसहिते सति तदा जातः, धनभागधेयविद्यायुतः=धन-भाग्य-विद्यासहितः, स्यादिति शेषः।

सौजसीति। सौजसि=बलसहिते, तीर्थनाथे-नवमेशे, पारावतादौ=पारावतादि-दशवर्गे सति तदा जातः, सुकृती=पुण्यवान्, धनी, मानी, गुणी च स्यादिति शेषः।

निम्नगृह इति। साधरभे = नीचराशिसहिते, ग्रहेशे = खौ, अरौ = षष्ठे, मरणे = अष्टमे, उग्रेक्षिते = पापलोकिते सति तदा, महीपकोपात् = राजकोपात्, स्वनाशः = धननाशः, जनकस्य = पितुः, मृत्युः = मरणं स्यादिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे—

"षष्ठेऽष्टमे च नीचेऽर्के क्रूरदृष्टे धनक्षयम्।

भूपकोपात्पितमृत्युर्भवत्येव न संशयः" इति ।।

यदि लग्नेश तृतीय या षष्ठ भाव में स्थित हो तो मनुष्य दयालु, पराक्रमी, मानी होता है।

लग्नेश दशम या चतुर्थ में गया हो तो सुखी एवं कामी होता है।

यदि धनेश व्यय भाव में गया हो तो व्यक्ति निर्धन एवं स्वाभिमानी होता है।

यदि बृहस्पति से युक्त तृतीयेश कहीं भी स्थित हो तो धैर्यशाली, शास्त्रों का जानकार होता है।

तृतीयेश यदि मंगल से युक्त हो तो आलसी, तीखा स्वभाव एवं क्रोधी होता है।

तृतीयेश यदि गुलिक से युक्त हो तो धैर्यवान्, मजबूत इरादे वाला, लेकिन जड़ होता है।

यदि नवमेश केन्द्र या त्रिकोण में गया हो और उसे शुभग्रहों की दृष्टि या योग प्राप्त हो तो जातक धनी, विद्यावान् एवं भाग्यवान् होता है।

यदि नवमेश पारावतादि दशवर्गों में से किसी में गया हो तो पुण्यवान्, धनवान् मानी एवं गुणी होता है।

यदि षष्ठ या अष्टम स्थान में नीच राशिगत सूर्य हो और वह पापदृष्ट हो तो राजा के क्रोध से धन का नाश तथा पिता की मृत्यु होती है।

कुटुम्ब विषयक योग :

प्रद्योतनेऽस्ते बहुकामिनीभाग्

जातः कुटुम्बी वसुधाकुमारे।

द्यूने बहुस्त्रीनिरतोऽन्वयघ्नो-

ऽपायाधिपेऽर्थे विधिपेऽवसाने ।।१०।।

दुश्चिक्यगेऽघेऽन्यरतः कुभोजी
दुष्कर्म्मकृन्नीचभभाग इज्ये।
आर्य्यांशकेऽर्के बहुदुःखभाक् स्त्री
पुत्रैर्विहीनोऽन्त्यतनूस्मरस्थैः ॥११॥

उग्रैर्विहङ्गैः सुतदारनाशः
सौरीक्षितेऽब्जे क्रियभे धनोनः।
लोभीकुजेऽस्ते द्युमणौ व्ययेऽङ्गे-
ऽब्जेऽरौ जनन्या जनकस्य घाती ॥१२॥

प्रद्योतन इति। दुश्चिक्यग इति। उग्रैरिति च। प्रद्योतने = रवौ, अस्ते = सप्तमे सति तदा जातः, बहुकामिनीभाक् = बहुस्त्रीनिरतः, कुटुम्बी = कुटुम्बवांश्च भवेदिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"मदेऽर्के कुटुम्बी बहुस्त्रीरतश्च भवेन्मानवः सर्वसम्पन्निधानी" इति।

वसुधेति। वसुधाकुमारे = भौमे, द्यूने = सप्तमे सति तदा जातः, बहुलस्त्रीनिरतः = प्रभूतकामिनीगामी व्यभिचारीत्यर्थः। अन्वयघ्नः = कुलनाशकश्च स्यादिति शेषः।

अपायेति। अपायाधिपे = व्ययेशे, अर्थे = द्वितीये, विधिपे = भाग्याधिपे, अवसाने = द्वादशे, अघे = पापे, दुश्चिक्यगे सति तदा जातः, अन्यरतः = परस्त्रीगामी, कुभोजी = कदन्नभोजी, दुष्कर्मकृत् = पापकर्मकर्त्ता च भवेदिति शेषः।

नीचेति। इज्ये = जीवे, नीचभभागे = नीचराशौ, नीचांशके च, अर्के = रवौ, आर्य्यांशके = जीवनवांशके सति तदा बहुदुःखभाक् = प्रभूतकष्टशीलः, स्त्रीपुत्रैः = दारात्मजैः, विहीनः = वर्जितः स्यादिति शेषः।

अन्त्येति। उग्रैर्विहङ्गैः = पापग्रहैः, अन्त्यतनूस्मरस्थैः = द्वादश-लग्न-सप्तमस्थितैः सद्भिः तदा, सुतदारनाशः = भार्या-पुत्रनाशः स्यादिदि शेषः।

सौरीति। सौरीक्षिते = शनिविलोकिते, अब्जे = चन्द्रमसि, क्रियभे = मेषराशौ सति तदा, धनोनः = निर्धनः, लोभी = लुब्धश्च स्यादिति शेषः।

कुज इति। कुजे = भौमे, अस्ते = सप्तमे, द्युमणौ = रवौ, व्यये = द्वादशे, अङ्गे = लग्ने च, अब्जे = चन्द्रे, अरौ = षष्ठे सति तदा जातः, जनन्याः = मातुः, जनकस्य = पितुः, घाती = नाशकः स्यादिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे—

"लग्नेऽन्त्येऽर्के रात्रिनाथे च षष्ठे भौमे द्यूने मातृपित्रोर्विघाती" इति।

यदि सप्तम स्थान में सूर्य हो तो बहुत स्त्री कुटुम्ब वाला होता है।

यदि सप्तम में मंगल हो तो बहुत-सी स्त्रियों में रत एवं कुल का नाश करने वाला होता है।

यदि व्ययेश द्वितीय में, नवमेश व्यय में और कोई पापग्रह तृतीय भाव में हो तो मनुष्य परस्त्रीगामी, निन्दित भोजी एवं पापरत होता है।

नीच राशि एवं नीच नवांश में बृहस्पति हो और सूर्य बृहस्पति के नवांश में पड़ा हो तो व्यक्ति बड़ा दु:खी एवं स्त्री पुत्रों से रहित होता है।

यदि व्यय, लग्न एवं सप्तम में पापग्रह हों तो स्त्री व पुत्र का नाश होता है।

मेष में चन्द्रमा को शनि देखता हो तो मनुष्य निर्धन एवं लोभी होता है।

सप्तम में मंगल, व्यय या लग्न में सूर्य और षष्ठ स्थान में चन्द्रमा हो तो व्यक्ति माता-पिता का नाश करने वाला होता है।

सर्प, जल व अग्नि भय योग :

वक्रे विलग्ने यदि नेत्रपाणौ
भोगीशदन्तक्षतकाग्निभीतिः ।
साच्छेऽनुजेशे कलही च कामी
धैर्य्ये ध्वजाब्जौ सधनोऽनुजोनः ॥१३॥

वक्र इति। वक्रे=भौमे, विलग्ने=तनौ, नेत्रपाणौ=नेत्रपाण्यवस्थायां यदि तदा, भोगीशदन्तक्षतकाग्निभीतिः=सर्पदन्तक्षतजलानलभयं, स्यादिति शेषः।

साच्छ इति। साच्छे=शुक्रसहिते, अनुजेशे=तृतीयेशे सति तदा कलही=कलि-कृत्, कामी=कामुकश्च स्यादिति शेषः।

धैर्यं इति। धैर्य्ये=तृतीये, ध्वजाब्जौ=केतु-चन्द्रौ भवनश्चेत्तदा सधनः=धनवान्, अनुजोनः=भ्रातृरहितश्च स्यादिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे—

"केत्विन्द्र सहजे यस्य भ्रातृहीनो धनी भवेत्" इति।

यदि मंगल लग्न में नेत्रपाणि नामक अवस्था में हो तो सर्प के काटने का भय, जल एवं अग्नि का भय होता है।

यदि तृतीयेश शुक्र से युक्त हो तो कलह करने वाला एवं कामुक होता है।

तृतीय स्थान में केतु व चन्द्रमा हो तो धनवान् किन्तु भाइयों से रहित होता है।

जन्म में माता-पिता का मरण :

काभ्रेशयोर्दुष्टगयोर्गतौजसोर्लेखाधिनाथे सबले जनिक्षणे।
मातुः पितुर्वा मरणं वदेत्स्वपेऽङ्काये भवेदुद्यमभाग् धनी गुणी ॥१४॥

केति। काभ्रेशयोः=चतुर्थदशमेशयोः, दुष्टगयोः=षष्ठाष्टमव्ययगतयोः, गतौजसोः=बलरहितयोः सतोः, लेखाधिनाथे=लग्नेशे, सबले=बलयुक्ते तदा जातस्य जनिक्षणे=जन्मावसरे, मातुः=जनन्याः, अथवा पितुः=जनकस्य, मरणं=मृत्युं, वदेत्=कथयेत्, विद्वानिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे—

"कर्म्माम्बुपौ त्रिके यस्य निर्बलौ सबलेऽङ्गपे।
स्याज्जन्मावसरे नूनं मातुर्वा मरणं पितुः" इति।

स्वप इति। स्वपे=द्वितीयेशे, अङ्काये नवमलाभे सति तदा जातः, उद्यमभाक्=उद्यमी, धनवान्, गुणवांश्च स्यादिति शेषः।

यदि चतुर्थेश व दशमेश निर्बल होकर त्रिक स्थानों में स्थित हों और जन्म लग्नेश बलवान् हो तो बालक के जन्म समय में ही माता-पिता की मृत्यु होती है।

यदि द्वितीयेश नवम या लाभ स्थान में हो तो मनुष्य मेहनती, धनी तथा गुणवान् होता है।

ऐसे माता-पिता के मरण के योगों में यथावसर बालक का त्याग या अन्य किसी कारण से माता-पिता का सुख न होना भी सम्भव है। सारावली में इस प्रकार के कतिपय योग बताए गए हैं।

भाई की सम्पत्ति पाने के योग :

केन्द्रे जलेशलवपे सखिलोकिते वा
माहेयलोकितयुते लभतेऽनुजस्य।
क्षेत्रं धनं पदगयोर्विधिबन्धुपत्योः
सर्वार्थधोरणयुतो विधिना समेतः ॥१५॥

केन्द्र इति। जलेशलवपे=चतुर्थेशनवांशनाथे, सखिलोकिते=मित्रदृष्टे, वा अथवा, माहेयलोकितयुते=भौमदृष्टसहिते सति तदा जातः, अनुजस्य=भ्रातुः, क्षेत्रं=भूमिं, धनं=द्रव्यं च लभते=प्राप्नोति।

तथोक्तं सुधासागरे—
"सुखेशांशपतौ केन्द्रे भौमदृष्टयुतेऽथवा।
मित्रदृष्टे धनं क्षेत्रं भ्रातुः प्राप्नोति मानवः" इति॥

पदेति। विधिबन्धुपत्योः=नवमेश-चतुर्थेशयोः, पदगयोः=दशमस्थानस्थितयोः सतोः, तदा जातो नरः, सर्वार्थधोरणयुतः=समस्तार्थवाहनसहितः, विधिना=भाग्येन च समेतः=सहितः स्यादिति शेषः।

चतुर्थेश की नवांश राशि का स्वामी यदि केन्द्र में स्थित हो और वह मित्र ग्रह से दृष्ट हो अथवा मंगल से युक्त या दृष्ट हो तो जातक को अपने भाई का खेत, धनादि या अचल सम्पत्ति प्राप्त होती है।

यदि नवम स्थान का स्वामी दशम स्थान में चतुर्थेश से युक्त हो तो मनुष्य को समस्त सम्पत्ति, वाहन तथा भाग्य का सुख प्राप्त होता है।

अहंकारी-इंगित कुशल एवं धनी योग :

आज्ञाङ्गतेऽङ्गिरसि मानयुगिङ्गितज्ञो
जातोऽथ कोशगतयोस्तरणीन्दुसून्वोः।
सेवारतः स्थिरधनी दुरितेक्ष्यमाणे
कोशेश्वरे कपटतो विषभोजनं स्यात् ॥१६॥

आज्ञामिति। अङ्गिरसि=जीवे, आज्ञाङ्गते=दशमगते सति तदा जातो नरः, मानयुक्=मानी, इङ्गितज्ञः=अभिप्रायानुसारचेष्टावेत्ता च स्यादिति शेषः।
अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। तरणीन्दुसून्वोः=सूर्य-बुधयोः, कोशगतयोः=द्वितीय-स्थानस्थितयोः सतोः, तदा सेवारतः=सेवासु तत्परः, स्थिरधनी च स्यात्।

दुरितेति । कोशेश्वरे = द्वितीयेशे, दुरितेक्ष्यमाणे = पापदृष्टे सति तदा कपटतः = व्याजतः, विषभोजनं = गरलभक्षणं स्यात् ।

तथोक्तं सुधासागरे—

"धनेशे पापदृष्टे च कापट्याद् गरलाशनम्" इति ।

यदि बृहस्पति दशम स्थान में स्थित हो तो मनुष्य अहंकारी लेकिन दूसरे के मन की बात को इशारे मात्र से ही समझने वाला होता है।

यदि धन स्थान में सूर्य व बुध हों तो व्यक्ति सेवा कार्य (नौकरी) करने वाला होता है तथा उसका धन स्थिर रहता है।

यदि द्वितीयेश पापग्रहों से देखा जाता हो तो मनुष्य बहाने, कपट या धोखे से विषभक्षण करता है।

व्यक्तित्व विषयक योग :

सोदर्य्यकारकखगे शुभभे स शौर्य्य-
धैर्य्यान्वितोऽनुजपभागपभागनाथे
स्वर्क्षादि वर्गसहिते कलहप्रियश्च
मान्याहवे सुनिपुणो धिषणे धनेऽङ्के ।।१७।।
प्राणी भवो मधुरवाङ् मधुरप्रियश्च
स्यात्सत्यवादनिरतो भगभौमदृष्टे ।
प्राग्लग्नगे प्रथमपे कटुकप्रियोऽयं
क्रोधी तथा व्यसनभाङ् मलिनं तमैन्योः ।।१८।।

सोदर्य्येति। प्राणीति। सोदर्य्यकारकखगे = भ्रातृकारकग्रहे, (भौमे), शुभभे = शुभग्रहराशौ सति तदा जातः, शौर्य्येण = बलेन, धैर्य्येण = धीरतया च युक्तः, स्यादिति शेषः ।

अनुजेति। अनुजपभागपभागनाथे = तृतीयेशस्य नवांशस्वामिनो यो नवांशस्वामी तस्मिन्, स्वोच्चादिवर्गसहिते = स्वोच्च-स्वकीय-स्वमित्रवर्गगते सति, तदा जातः, कलहप्रियः = कलिकर्ता, मानी = अहङ्कारी, आहवे = युद्धे, सुनिपुणः = अतिचतुरः, स्यादिति शेषः ।

तथोक्तं सुधासागरे—

"सोत्थेशांशेश्वरांशेशे स्वर्क्षादि वर्गगे यदा ।
भवेत् क्लेशप्रियो मानी संग्रामे चतुरो नरः" इति ।

धिषण इति। धिषणे = जीवे, धने = द्वितीये, अङ्गे = लग्ने च सति तदा, भवः = जातः, प्राणी = जन्मी, मधुरवाक् = मधुर वचनः, मधुरप्रियः = मधुररसभोजी, सत्यवादनिरतः = सत्यवादी च स्यात्।
भगेति। प्रथमपे = लग्नेशे, प्राग्लग्नगे = लग्नगते, भगभौमदृष्टे = रवि-मङ्गल-विलोकिते सति, तदा अयं जातः, कटुकप्रियः = कटुकरसभोजी, क्रोधी, व्यसन-भाक् = व्यसनी च स्यादिति शेषः।
मिनमिति। तमैन्योः = राहु-सौरयोः, मिलनं यदि, ऊर्ज्जभे = सहजे भवति तदा जातः, दक्षकरे = अपसव्यहस्ते, विघाती = प्रहारवान्, वातामयी = वातरोगी, कुनखरी = कुत्सितनखवांश्च स्यादिति शेषः।

यदि भ्रातृकारक मंगल शुभग्रह की राशि में हो तो जातक शूरता एवं धैर्य से युक्त होता है।

तृतीयेश जिस राशि के नवांश में हो, उस नवांश राशि के स्वामी का नवांशेश यदि स्वगृहादि वर्ग में हो तो कलह करने वाला, मानी तथा युद्धकुशल होता है।

यदि द्वितीय या लग्न में बृहस्पति हो तो मधुरभाषी, मधुर रसप्रिय एवं सत्यभाषी सत्यप्रिय होता है।

यदि लग्न में स्थित लग्नेश को सूर्य व मंगल देखते हों तो मनुष्य को कटुरस प्रिय होता है, साथ ही वह क्रोधशील एवं व्यसनी होता है।

कुनखी-अस्थिभंग व्रण योग :

यद्यूर्ज्जभे भवति दक्षकरे विघाती
वातामयी कुनखरी कुसुते किमर्के।
शौर्य्योपगे विषभयं दहनोत्थचिह्नं
स्यादस्थिभङ्ग इननन्दन चान्द्रिचन्द्रा ॥१९॥
कुर्य्युर्विधिव्ययचतुष्टयगा विभूति—
ज्ञानोज्झितं शशिनि खे सचिवे सुताङ्गे।
जातो जितेन्द्रियजनस्तपसा समेतो
दानी खलैः कलिगतैर्व्रणचिह्नयुक्तम् ॥२०॥

कुसुत इति। कुसुते = भौमे, किमथवा, अर्के = रवौ, शौर्य्योपगे = तृतीयगते सति, तदा विषभयं = गरलभीतिः; दहनोत्थचिह्नं = अग्निजातचिह्न, अस्थिभङ्गश्च स्यात्।

इनेति। इननन्दनचान्द्रिचन्द्राः = शनि-बुध-चन्द्राः, विधिव्ययचतुष्टयगाः = नवम-द्वादश-केन्द्रगताः, भवन्ति, चेत्तदा जातं, विभूतिज्ञानोज्झितं = ऐश्वर्यज्ञानवर्जितं, कुर्य्युः = विदध्युः।

शशिनीति। शशिनि = चन्द्रे, खे = दशमे, सचिवे = जीवे, सुताङ्गे = पञ्चम-लग्ने सति, तदा जातः, जितेन्द्रियजनः = जितानि वशीकृतानि, इन्द्रियाणि = ज्ञानकर्म-साधनानि येन सः। तपसा समेतः = तपोयुक्तः, दानी = दाता च स्यादिति शेषः।

खलैरिति। खलैः = पापग्रहैः, कलिगतैः = अष्टमस्थितैः सद्भिः, तदा जातस्य, गुह्यं = गुप्तेन्द्रियं, व्रणचिह्नयुक्त = क्षतलक्ष्मसहितं, भगन्दरमुखामयभाक् = भगन्दरादिरोगी च स्यादिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे—

"पापाः खेटाश्च मृत्युस्था यदा भवति मानवः।
भगन्दरादिरोगी च गुह्यं सव्रणचिह्नितम्" इति॥

यदि तृतीय स्थान में राहु एवं शनि हों तो दाएं हाथ में घाव का निशान, वायु रोग एवं असुन्दर नाखून होते हैं।

यदि तृतीय स्थान में मंगल व सूर्य स्थित हों तो मनुष्य को विष, अग्नि से भय, हड्डी टूटना या अस्थि विकार जैसे फल मिलते हैं।

शनि, बुध व चन्द्रमा यदि नवम, व्यय या केन्द्र में हों तो मनुष्य ऐश्वर्य व ज्ञान से हीन होता है।

दशम स्थान में चन्द्रमा और लग्न या पंचम में वृहस्पति हो तो व्यक्ति जितेन्द्रिय, तपस्वी एवं दानी होता है।

यदि पापग्रह अष्टम भाव में स्थित हों तो मनुष्य के गुप्त स्थानों में घाव या फोड़े आदि से उत्पन्न निशान होते हैं।

गुप्तरोगी व भिक्षावृत्ति योग :

गुह्यं भगन्दरमुखामयभाक् खगेन्द्राः
सर्वे यदाऽधरसपत्नलवोपयाताः।
तुङ्गस्थिता अपि तदा शुभकर्म्महीनं
भिक्षाशिनं च जनयन्ति जनं तदानीम्॥२१॥

खगेन्द्रा इति। सर्वे = समस्ताः, खगेन्द्राः = ग्रहाः, तुङ्गस्थिताः = उच्चराशिषु स्थिताः, अपि यदा, अधरसपत्नलवोपयाताः = नीचशत्रुनवांशगताः, चेत्तदानीं,

शुभकर्महीनं = सत्कृत्यवर्जितं, भिक्षाशिनं = भिक्षुकं, जनं = लोकं तरमिति यावत्। जनयन्ति = उत्पादयन्ति।

यदि अष्टम में पापग्रह स्थित हों तो मनुष्य को भगन्दर, बवासीर या अन्य तत्सदृश रोग होते हैं।

यदि सभी ग्रह जन्म कुण्डली में अपनी उच्च राशि में ही स्थित हों, लेकिन नवांश में नीच या शत्रु नवांश में गए हों तो व्यक्ति को दीन-हीन, भिक्षा मांगने वाला बनाते हैं। ऐसा व्यक्ति शुभ कार्यों से हीन होता है।

मूत्र कृच्छ्रादि रोग योग :

कन्दर्पधाम्नि कुटिले कलिते प्रदृष्टे-
ऽघैर्मूत्रकृच्छ्रगदभाग् जनितो नपुंसः।
सोग्रौ व्ययेऽहिहिमगू कलिवल्लभः स्या-
दुन्मादभाग् भवतिभौ मरणेऽथवाऽरौ॥२२॥
मन्दाग्निभाग् जठररुग्युत उद्गमेश
आग्नेयलोकितयुते मृतिभे सदद्रुः।
शिवत्र्याग्निमान्द्यगदकण्डुनिपीडिताङ्गो
धीमत्स्वपौ पतितगौ यदि वीतवित्तः॥२३॥
सक्लेशभागसति खे प्रथमेश्यापाये
भौमान्वितेऽमृतकरे परदेशवासो।
भिक्षाश्यकी विधुविदौ शुभभागहीनौ
केन्द्रे भ्रमी मनुभवः किमु विस्मयालुः॥२४॥

कन्दर्पेति। मेन्देति। स इति च। कुटिले = भौमे, कन्दर्पधाम्नि = सप्तमस्थाने, अघैः = पापग्रहैः, कलिते = व्याप्ते सहित इति यावत्। प्रदृष्टे = विलोकिते सति तदा जनितः, मूत्रकृच्छ्रगदभाक् = मूत्रकृच्छ्ररोगी, नपुंसः = क्लीवश्च स्यात्।
सोग्राविति। सोग्रौ = क्रूरग्रहसहितौ, अहिहिमगू = राहु-चन्द्रौ, व्यये = द्वादशे भवतश्चेत्तदा जातः, कलिवल्लभः = कलहप्रियः, उन्मादभाक् = चित्तविभ्रमश्च स्यात्।
भवतीति। भपतिभौ = चन्द्र-शुक्रौ, मरणे = अष्टमे, अथवा, अरौ = षष्ठे भवत-

श्चेत्तदा जातः, मन्दाग्निभाग्=मन्दाग्निरोगी, जठररुग्युतः=उदररोगी च स्यात्।

उद्गमेश इति। उद्गमेशे=लग्नेशे, आग्नेयलोकितयुते=पापदृष्टसहिते, मृतिभे=अष्टमे सति तदा जातः सदद्रुः=दद्रुसहितः, श्वित्री=श्वेतकुष्ठी, अग्निमान्द्यगदकण्डुनिपीडिताङ्गः=मन्दाग्निरोगखर्ज्जुपीडितशरीरः स्यादिति शेषः।

धीमदिति। धीमत्स्वपौ=गुरु-द्वितीयेशौ, पतितगौ=षष्ठव्ययगतौ भवतश्चेत्तदा वीतवित्तः=निर्धनः क्लेशभाक्=दुःखशीलश्च स्यादिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"जीवद्रव्याधिपौ यस्य षष्ठान्तिमगतौ यदा।
क्लेशभागी स भवति धनेन परिवर्जितः" इति॥

असतीति। असति=पापग्रहे, खे=दशमे, प्रथमेशि=लग्नेशे, अपाये=द्वादशे, अमृतकरे=चन्द्रे, भौमान्विते=भौमसहिते सति तदा जातः, परदेशवासी=विदेशभ्रमणशीलः, भिक्षाशी=भिक्षुकः, अकी=दुःखी च स्यादिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे

"लग्नेशेऽन्त्ये च खे पापे भौमयुक्तनिशाधिपे।
परदेशी च दुःखी च भिक्षाशी च भवेन्नरः" इति॥

विद्विवति। विधुविदौ=चन्द्र-बुधौ, शुभभागहीनौ=शुभनवांशवर्जितौ पापनवांशगता इत्यर्थः। केन्द्रे स्यातां तदा जातः, मनुभवः=मनुष्यः, भ्रमी=भ्रमयुक्तः, किमु=अथवा, विस्मयालुः=आश्चर्यशीलः स्यादिति शेषः।

यदि सप्तम स्थान में स्थित मंगल को पापग्रह देखते हों या वह पापग्रहों से युक्त हो तो पुरुष को मूत्र-कृच्छ्र रोग होता है। अर्थात् उसे मूत्र त्याग में कष्ट होता है और वह नपुंसक भी होता है।

व्यय में राहु तथा चन्द्रमा पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हों तो व्यक्ति को उन्माद रोग अर्थात् पागलपन होता है।

अष्टम या षष्ठ स्थान में शुक्र व चन्द्रमा हों तो व्यक्ति को अपच, मन्दाग्नि तथा अन्य उदर रोग होते हैं।

यदि लग्नेश अष्टम स्थान में पापग्रह से दृष्ट हो तो दाद, खुजली, सफेद दाग या मन्दाग्नि रोग होता है।

यदि बृहस्पति व द्वितीयेश षष्ठ या द्वितीय स्थान में स्थित हो तो व्यक्ति निर्धन व दुःखी होता है।

दशम स्थान में पापग्रह, व्यय में लग्नेश और चन्द्रमा यदि मंगल से युक्त हों तो व्यक्ति परदेश में भ्रमण करने वाला, भिक्षा से जीवन यापन करने वाला तथा दु:खी होता है।

यदि चन्द्रमा व बुध केन्द्र स्थान में शुभग्रह के नवांश में न हों तो व्यक्ति भ्रमित बुद्धि वाला भ्रान्त चित्त होता है।

इस प्रकार के बहुविध योगों का संग्रह हमारे **जातकतत्त्व अखिलाक्षरा** में देखें। यदि बुध व चन्द्रमा शुभ नवांशगत होकर केन्द्र स्थानों में गए हों तो स्पष्ट है कि उक्त फल नहीं होगा। द्वितीय स्थान में बृहस्पति सामान्यत: व्यक्ति को अधिक पारिवारिक जिम्मेवारियों से युक्त कर अल्प धन बनाता है।

नीचवृत्ति (जीविका) योग :

प्रान्त्ये तमार्कान्यतरान्विते रिपो-
र्नाथे कुवृत्तिर्वसतिः परालये।
सौम्ये खले वाऽऽयुषि सोमतो गुरौ-
ध्यर्थेऽस्य वृत्तिः सुजघन्यकर्मतः ॥२५॥

प्रान्त्य इति। रिपोर्नाथे=षष्ठेशे, तमार्कान्यतरान्विते=राहुसूर्यान्यतरयुक्ते, प्रान्त्ये=द्वादशे सति तदा, कुवृत्तिः=नीचवृत्तिः, परालये=परागतरगृहे, वसतिः=वासः स्यादिति शेषः।

तथोक्तं सुधासागरे
"षष्ठाधिपे यदा रिःफे राह्वर्कान्यतरान्विते।
वसत्येवान्यगेहे च नीचवृत्तिर्नरो भवेत्" इति ॥

सौम्य इति। सौम्ये=शुभग्रहे, वा=अथवा, खले=पापग्रहे, आयुषि=अष्टमे, सोमतः चन्द्रात् 'सोम औषधचन्द्रयोः' इति शाश्वतः। ध्यर्थे=पञ्चम-द्वितीये, गुरौ=जीवे सति तदा यो जातः, अस्य वृत्तिः जीविका, सुजघन्यकर्मतः, भवेदिति शेषः।

यदि षष्ठेश द्वादश भाव में गया हो और उसके साथ सूर्य या राहु हो तो मनुष्य घटिया, निम्न श्रेणी के कार्य से जीविका चलाने वाला और पराए घर में रहने वाला अर्थात् पराश्रित होता है।

अष्टम में कोई भी ग्रह, शुभ या पाप हो और चन्द्र कुण्डली में

द्वितीय या पंचम स्थान में बृहस्पति हो तो मनुष्य अत्यन्त निन्दित कर्म से जीविका चलाने वाला होता है।

जीविका के विषय में पीछे कर्मभावाध्याय में विस्तार से कह चुके हैं, अत: उन सभी बातों के परिप्रेक्ष्य में ही तत्सम्बन्धी किसी योग का निर्णय करना चाहिए।

स्त्रीहीन व भ्रातृहीन योग :

क्रमादगदास्तमृत्युगा महीजराहुमन्दगाः।
न जीवतीह सुन्दरी सहोदरैः समुज्झितः॥२६॥

क्रमादिति। महीजराहुमन्दगाः=भौम-राहु-शनैश्चराः, क्रमात्=परिपाट्याः, गदास्तमृत्युगाः=षष्ठ-सप्तमाष्टमगताः, स्युश्चेत्तदा जातस्य, सुन्दरी=स्त्री, न जीवति, एवं सहोदरैः=भ्रातृभिः, समुज्झितः=वर्जितः स्यात्।

तथोक्तं सुधासागरे

"भौमतमोऽर्कजाः खेटाः षष्ठादित्रयगाः क्रमात्।
न जीवति प्रिया तस्य भ्रातृहीनोऽपि ना भवेत्॥

यदि षष्ठ, सप्तम व अष्टम में मंगल, राहु व शनि हो। अर्थात् षष्ठ स्थान में मंगल, सप्तम में राहु एवं अष्टम में शनि हो तो मनुष्य स्त्रीरहित होता है तथा ऐसे व्यक्ति के भाई भी नहीं होते हैं।

लग्न से ६, ७, ८ में सभी शुभ ग्रह हों तो बहुत सुन्दर फल देने वाला लग्नाधियोग बनता है। इसके विपरीत इन स्थानों में सभी पाप ग्रह हों तो व्यक्ति के परिवार में विशेष कष्ट होता है या ऐसे व्यक्ति का घर ही नहीं बसता—ऐसा देखने में आता है। यद्यपि वराहादि ने चन्द्रमा से ६, ७, ८ स्थानों में शुभग्रह होने पर अधियोग माना है, लेकिन सारावली व जातकपारिजात में लग्नाधि योग भी बताया गया है। श्रुतकीर्ति ने ६, ७, ८ भावों में शुभग्रह होने से शुभ अधियोग, पापग्रह होने से पाप अधियोग एवं मिश्रित होने से मिश्रित अधियोग कहा है—

पापः पापैरेवं मिश्रः मिश्रैस्तथैवोक्तः।
(श्रुतकीर्ति)

अतः यह पाप लग्नाधि योग है। शुभ अधियोग के विषय में कहा है—

मन्त्री दण्डपतिः क्षितेरधिपतिः स्त्रीणां बहूनां पतिः।
दीर्घायुर्गदवर्जितो गतभयो लग्नाधियोगे भवेत्।
सच्छीलो यवनाधिराजकथितो जातः पुमान्सौख्यभाक्।।
(सारावली)

अतः पाप लग्नाधि योग में विपरीत फल होगा। अर्थात् व्यक्ति दण्डित होने वाला, रंक, स्त्रीहीन, अल्पायु, रोगी, भीत, चरित्रहीन व दुःखी होगा।

अन्य शुभाशुभ योग :

एकस्मिन्नपि तुङ्गगे हितयुते सिद्धः प्रभूतार्थवान्
कोणे कण्टकगे खपे बलयुते चैत्याध्वयज्ञादिकृत्।
गीर्वाणातिथिपूजकः शुभकरा राज्यार्थदा वक्रिणः
पापाकाशचरास्तथा व्यसनदा वित्तस्य हानिप्रदाः।।२७।।

एकस्मिन्निति। एकस्मिन् ग्रहेऽपि, तुङ्गगे = स्वोच्चराशिगते, हितयुते = मित्रयुते सति, तदा जातः, सिद्धः = सिद्धिरस्ति अस्य, सिद्धिमान्वा, प्रभूतार्थवान् = प्रचुरधनः स्यादिति शेषः।

कोण इति। बलयुते = बलिनि, खपे = दशमेशे, कोणे = पञ्चमनवमे, कण्टके = केन्द्रे सति तदा जातः, चैत्याध्वयज्ञादिकृत् = यज्ञशाला कूपयज्ञादीनां कर्त्ता, गीर्वाणातिथिपूजकः गीर्वाणानां देवानां, अतिथीनां आगन्तूनां पूजकः स्यादिति शेषः।

शुभकरा इति। शुभकराः = सौम्यग्रहा यदि वक्रिणः = विलोमगतयः स्युः, तदा राज्यसम्पत्तिप्रदा भवन्ति। तथा पापाकाशचराः = पापग्रहाः, व्यसनदा = विपत्तिप्रदा, वित्तस्य = धनस्य हानिप्रदा भवन्ति।

जिसकी जन्म कुण्डली में एक भी ग्रह अपनी उच्च राशि में स्थित होकर अपने मित्र ग्रह से युक्त हो तो वह पुरुष सिद्ध अर्थात् अपने उद्देश्य में सफल होने वाला और प्रभूत धन से सम्पन्न होता है।

यदि दशम स्थान का स्वामी बलवान् होकर केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो तो वह यज्ञशाला, कूप, जलाशय आदि बनाने वाला होता है। साथ ही यज्ञादि धार्मिक क्रियाएं करने वाला और देवताओं की पूजा करने वाला, अतिथि भक्त होता है।

यदि जन्म समय शुभग्रह वक्री हों तो राज्य एवं धनप्रद होते हैं और पापग्रह वक्री हों तो विपत्ति एवं धन हानि देते हैं।

कल्याणवर्मा ने उच्चगत ग्रह को कारक की श्रेणी में रखा है। उच्चगत ग्रह की दशा भी 'युवराज' संज्ञक होकर परम राज्य सुख देने वाली होती है। स्वर शास्त्र में भी बाल, कुमार, युवा व वृद्धत्व में से युवा स्वर को श्रेष्ठ माना गया है। उच्चगत ग्रह अपने शुभ फल का सम्पूर्ण भाग देता है। कहा भी है—

'उच्चबलेन समेतः परां विभूतिं ग्रहः प्रसाधयति।'

(सारावली)

उच्चगत ग्रह दीप्तावस्था में रहता है तथा दीप्त ग्रह का फल बताया गया है कि वह व्यक्ति अपने विक्रम से शत्रुओं का नाश करता है और लक्ष्मी उसे कभी नहीं छोड़ती है।

यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि उच्चगत ग्रह नवांश कुण्डली में नीचगत या शत्रुगत या जन्म कुण्डली में अस्तंगत न हो, तभी वह उक्त फल देगा।

वक्री ग्रह के विषय में समझना चाहिए कि वक्र होकर ग्रह अति बलवान् हो जाता है तथा उसमें आक्रामकता बढ़ जाती है। अतः वक्री शुभग्रह परम शुभ एवं वक्री पापग्रह परम अशुभ होते हैं।

त्रिषडायगत ग्रह का फल :

शोभनाः सहजशत्रुभवस्थाः
शैशवे मनुभवाः सुखिनः स्युः।
गर्हिता गगनगा यदि तत्र
प्राणिनां सुखकरा वयसोऽन्त्ये ॥२८॥

शोभना इति। शोभनाः,=सौम्यग्रहाः, सहजशत्रुभवस्थाः=तृतीय-षष्ठैकादश-स्थानस्थिताः, यदि तदा, शैशवे=बाल्ये मनुभवाः=मानवाः, सुखिनः स्युः। यदि तत्र गर्हिताः=पापाः, गगनगाः=ग्रहाः, स्युः, चेत्तदा, प्राणिनां=जन्मिनां, अन्त्ये वयसि सुखकराः स्युः।

तथोक्तं सुधासागरे
"त्र्यारिगाः शुभाः सर्वे शैशवे च सुखी भवेत्।
तत्रैव पापखेटाः स्युर्वयस्यन्त्ये सुखी नरः" इति॥

यदि तृतीय, षष्ठ व एकादश में शुभग्रह हों तो वे व्यक्ति को बाल्यकाल में सुखी करते हैं।

यदि इन स्थानों में पापग्रह हों तो वे वृद्धावस्था में व्यक्ति को सुखप्रद होते हैं।

पाराशरी सिद्धान्त में त्रिषडाय अर्थात् ३, ६, ११ स्थानों को अशुभ की श्रेणी में ही रखा गया है। यदि त्रिकोणेश भी, जो सदा शुभ होते हैं, यदि साथ में त्रिषडायेश भी हों तो शुभफल को स्थगित कर देते हैं।

पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः।
(लघुपाराशरी)

लेकिन हमने अपनी **लघुपाराशरी विद्याधरी** में प्रतिपादित किया है कि शुभग्रह यदि त्रिषडायेश हों तो वे विशेष अशुभ नहीं होते हैं।

बाल्ये सत्फलदाः शुभास्त्रिभवषट्संस्थाः खलास्तत्र चेद्
वार्द्धक्येऽथखला मदार्थमतिगाः सौख्यप्रदाः शैशवे।
सौम्यास्तत्र तदान्तिमेऽथ मरणाभ्रान्त्याङ्गभाग्याम्बुगाः
सत्क्रूराः क्रमशः शुभाशुभफलं दद्युर्वयस्सु त्रिषु॥२६॥

बाल्य इति। शुभाः=सौम्यग्रहाः, त्रिभवषट्संस्थाः, तृतीयैकादशषष्ठस्थिताः स्युस्तदा वार्द्धक्ये=स्थविरे सत्फलदाः स्युरिति शेषः।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। खलाः=पापग्रहाः मदार्थमतिगाः=सप्तम-द्वितीय-पञ्चम गताश्चेत्तदा, शैशवे=बाल्ये सौख्यप्रदाः=सुखकराः, भवन्तीति शेषः। यदा तत्र सौम्याः=शोभनाः स्युस्तदा अन्तिमे वयसि सौख्यप्रदाः स्युः।

अथेति। अथानन्तर्य्यार्थे। सत्क्रूराः=शुभाशुभाः मरणाभ्रान्त्याङ्गभाग्याम्बुगाः=अष्टम-दशम-द्वादश-लग्न-नवम-चतुर्थगताः स्युश्चेत्तदा, क्रमशः, त्रिषु वयस्सु=अवस्थासु, शुभाशुभफलं, दद्युः=यच्छेयुः, शुभग्रहाः शुभफलं पापग्रहा अशुभं दिशन्तीत्यर्थः।

तथा च ग्रन्थान्तरे
"चतुर्थेकाष्टमेधर्म्मे दशमे द्वादशे तथा।
त्रिवयसा फलं दद्युः शुभाः पापाः शुभाशुभमिति।

तृतीय, षष्ठ व एकादश भावों में शुभग्रह बाल्यकाल में शुभफल करते हैं। इन्हीं स्थानों में पापग्रह वृद्धावस्था में शुभफल करते हैं।

यदि सप्तम, पंचम व द्वितीय में शुभग्रह हों तो वृद्धावस्था में शुभफल देते हैं। यदि इन्हीं स्थानों में पापग्रह स्थित हों तो वे व्यक्ति को बाल्यकाल में सुख देते हैं।

लग्न, चतुर्थ, अष्टम, नवम, दशम व द्वादश भावों में यदि जन्म समय में शुभग्रह स्थित हों तो सदा अर्थात् बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था में शुभफल देते हैं।

इन सभी भावों में कहीं पर सारे पापग्रह स्थित हों तो वे तीनों अवस्थाओं में अशुभ फल देते हैं।

अधियोग विचार:

प्रत्यर्थिपूर्वत्रयगाः कलेशात्कल्याणखेटा बलतारतम्यात्।
एषोऽधियोगो जनितो जनुष्मान् सेनाधिनाथः सचिवो महीपः ।।३०।।

प्रत्यर्थीति। कल्याणखेटाः=शुभग्रहाः, बुधगुरुशुक्रा इत्यर्थः। कलेशात्=चन्द्रात्, प्रत्यर्थिपूर्वत्रयगाः=षष्ठादित्रयभावगाः षष्ठसप्तमाष्टमेषु स्थिता इत्यर्थः। षष्ठ-सप्तमाष्टमेषु त्रिषु स्थानेषु द्वयोर्वा स्थानयोरेकस्मिन् वा स्थाने सर्व एव भवन्ति। तदैषोऽधियोगाख्यो योगो व्याख्यातो भवति। अत्र जनितो जनुष्मान् ग्रहाणां बलतारतम्यात्, बलानां न्यूनाधिकतयेत्यर्थः। सेनाधिनाथः=सेनापतिः भवति। सचिवः=मंत्री वा भवति 'सचिवो भृतकेऽमात्ये' इति हैमः। महीपो भूपालो राजा वा भवति।

तथा च भगवाञ्छ्रुतिकीर्तिः
"निधनद्यूनं षष्ठं चन्द्रस्थानाद्यदा शुभैर्युक्तम्।
अधियोगः स प्रोक्तो व्यासकृतौ सप्तधा पूर्वैः।।

व्यासकृतौ। विस्तरकृतौ पूर्वैः प्राक्तनैः सप्तधा प्रोक्तः, षट्सप्तमाष्टमसंस्थैश्चन्द्रात्-सौम्यैः शुभोऽधियोगः स्यात्। पापः पापैरेवं मिश्रैर्मिश्रस्तथैवोक्त इति।

चन्द्र कुण्डली में यदि षष्ठ, सप्तम व अष्टम भावों में सभी शुभग्रह हों तो (बुध, गुरु, शुक्र) यह 'अधियोग' होता है। ग्रहों के बलाबलानुसार इस योग में उत्पन्न व्यक्ति सचिव, राजा, सेनापति आदि होता है।

अधियोग के विषय में पीछे इसी अध्याय के श्लोक २६ की व्याख्या में संकेत कर चुके हैं। यह योग अपने विस्तार या प्रस्तार के संदर्भ में ७ प्रकार का होता है—

(i) षष्ठ, अष्टम व सप्तम में एक शुभग्रह।
(ii) षष्ठ में सभी शुभग्रह।
(iii) सप्तम में सभी शुभग्रह।
(iv) अष्टम में सभी शुभग्रह।
(v) षष्ठ व सप्तम में तीनों शुभग्रह।
(vi) सप्तम व अष्टम में तीनों शुभग्रह।
(vii) षष्ठ व अष्टम में सभी शुभग्रह।

इस योग के विषय में वराहमिहिर ने कहा है कि—

तस्मिंश्चमूपसचिवक्षितिपालजन्म।

(बृहज्जातक)

यदि ये शुभग्रह वलवान् हों तो राजा, मध्यम वली हों तो सचिव एवं कनिष्ठ बली हों तो सेनापति होता है।

आजकल राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मन्त्री या राजदूत, राज्यपाल या अत्यन्त उच्च सामाजिक स्थिति वाला पुरुष समझकर संगति बिठा लेनी चाहिए।

उत्तरकालामृत में कहा है कि इस योग में राजा, राजासदृश या महासुखी, दीर्घायु, विजयी, यशस्वी, विद्या-विनय सम्पन्न एवं स्त्री, पुत्र, मित्र आदि से युक्त आनन्दों का भोग करने वाला होता है।

इसमें योग विधायक ग्रहों पर पाप दृग्योग या इनकी नीचास्तंगतता नहीं होनी चाहिए।

व्ययेश का भावाश्रय फल :

आद्येऽवसानेशि सुवाक् सुरूपवान्
स्वर्क्षे पशुग्रामयुतः कदर्थ्यधीः।
पुण्यस्थले पुण्यमतिश्च तीर्थकृत्
साधे तु पापी वितथे धनान्तकृत्॥३१॥

आद्य इति। अवसानेशि=व्ययभावस्वामिनि, आद्ये=लग्ने 'लग्नं मूर्त्तिस्तथाङ्गं

तनुरुदयवपुः कल्पमाद्यमिति गणेशोक्तेः । सति तदा जातः, सुवाक्=सुन्दरवचनः, सुरूपवान्=सुन्दररूपवान् भवेदिति शेषः ।
स्वर्क्ष इति । स्वर्क्षे=स्वराशौ व्ययभाव इत्यर्थः । तदा जातः, पशुग्रामयुतः= चतुष्पाद् ग्रामसहितः, कदर्य्यधीः=कृपणबुद्धिश्च भवेदिति शेषः ।
पुण्येति । पुण्यस्थले=नवमे, अवसानेशि इत्यनुषङ्गः । तदा जातः, पुण्यमतिः= धर्म्मबुद्धिः, तीर्थकृत्=पुण्यतीर्थयात्रावान् च भवेदिति शेषः ।
साघ इति । साघे=पापसहिते, अवसानेशि इत्यनुषङ्गः । तदा जातः पापी= दुराचारी, वितथे=मिथ्याभूतपदार्थे, धनान्तकृत्=कोशान्तकृत्, स्यादिति शेषः ।

यदि व्यय भाव का स्वामी लग्न में गया हो तो व्यक्ति मधुरभाषी एवं सुन्दर व्यक्तित्व का स्वामी होता है ।

यदि व्ययेश व्यय भाव में ही हो तो पशु सम्पदा से युक्त, ग्राम का प्रमुख होता है ।

यदि व्ययेश नवम में हो तो धर्मबुद्धि देने वाला व तीर्थाटन प्रिय बनाता है ।

यदि व्ययेश पापग्रह से युक्त हो तो व्यर्थ के कार्य में धन का व्यय करने वाला होता है ।

यह फलादेश वृद्धयवन प्रोक्त फल से काफी मेल खाता है । यवनोक्त फल मीनराजकृत **बृहद्यवनजातक** में देखा जा सकता है ।

विविध भावेशों का सम्बन्ध :

योगेऽङ्गवित्तधवयोर्बहुलाभयोगः
कोशानुजालयपयोर्नरपालभृत्यः ।
दुश्चिक्यबान्धवपयोः पृतनाधिनाथः
पातालपञ्चमपयोर्नृपतेः प्रधानः ।।३२।।
पुत्रारिपालयुजि दारुणकर्म्मकर्त्ता
द्यूष्याङ्गनागृहपयोर्युजि राजयोगः ।
चित्तोत्थनैधनपयोः प्रमदाविपत्ति-
र्दिष्टान्तविध्यधिभुवोर्युजि भाग्यहानिः ।।३३।।
युज्यङ्कवंशभवनाधिभुवोर्नृपालो
व्यापारलाभधवयोर्वसुधावसु स्यात् ।
प्राप्तिव्ययेशयुजि चेदृणतो व्ययोऽस्य
योगो व्ययोदयपयोर्जननेऽर्थहानिः ।।३४।।

योग इति। पुत्रेति। युजीति च। अङ्गवित्तधवयोः = लग्नेश-द्वितीयेशयोः, योगे चतुर्विधसम्बन्धे सति तदा, बहुलाभयोगः = पुष्कलधनलाभयोगः स्यादिति शेषः। कोशेति। कोशानुजालयपयोः = द्वितीयेशतृतीयेशयोर्योगे सति तदा, नरपालभृत्यः = राजभृत्यः, राजकर्मचारीत्यर्थः। दुश्चिक्यबांधवपयोः = तृतीयेशचतुर्थेशयोर्योगे सति तदा पृताधिनाथः = सेनापतिः 'पृतना तु स्त्रियां सेनामात्र सेनाविशेषयोः' इति मेदिनी। पातालपञ्चमपयोः = चतुर्थेशपञ्चमेशयोर्योगे सति तदा नृपतेः = राज्ञाः, प्रधानः = राजसचिवः। पुत्रारिपालयुजि = पञ्चमेशषष्ठेशयोगे सति तदा दारुणकर्मकर्त्ता = उग्रकर्मकारकः। द्वेष्याङ्गनागृहपयोर्युजि = षष्ठेशसप्तमेशयोर्योगे सति तदा राजयोगः = राज्ञा तुल्य स्यादित्यर्थः। चित्तोत्थनैधनपयोः = सप्तमेशाष्टमेशयोर्योगे सति तदा, प्रमदाविपत्तिः = स्त्रिया हानिः। दिष्टान्तविध्यधिभुवोर्युजि = अष्टमेशनवमेशयोर्योगे सति तदा, नृपालः = राजा। व्यापारलाभधवयोर्योगे सति तदा, वसुधावसु = भूहेतुनाधनलाभः। प्राप्तिव्ययेशयुजि = लाभव्ययेशयोर्योगे सति तदा, अस्य ऋणतो व्ययः। यदि जनने = जन्मनि व्ययोदयपयोः = व्ययेशलग्नेशयोर्योगस्तर्हि, अर्थहानिः = धननाशः स्यादिति शेषः।

यदि लग्नेश व द्वितीयेश का सम्बन्ध हो तो मनुष्य को बहुत लाभ होता है।

द्वितीयेश व तृतीयेश का सम्बन्ध हो तो राजपुरुष होता है।

तृतीयेश व चतुर्थेश का सम्बन्ध हो तो सेनापति, चतुर्थेश व पंचमेश का योग हो तो राजमन्त्री होता है।

पंचमेश व षष्ठेश का सम्बन्ध हो तो भयंकर कार्य करने वाला एवं षष्ठेश सप्तमेश का सम्बन्ध हो तो राजयोगप्रद होता है।

सप्तमेश व अष्टमेश का योग हो तो स्त्री हानि एवं अष्टमेश नवमेश का योग हो तो भाग्य हानि होती है।

नवमेश व दशमेश का सम्बन्ध हो तो राजा व दशमेश एकादशेश का योग हो तो भूमि से धन लाभ कराता है।

यदि एकादशेश व द्वादशेश का सम्बन्ध हो तो व्यक्ति ऋणकर्त्ता और व्ययेश व लग्नेश का सम्बन्ध हो तो धन हानि होती हैं।

यहां मूल में प्रयुक्त योग शब्द से तात्पर्य सम्बन्ध से है। पाराशर सिद्धान्त में ४ प्रकार का सम्बन्ध माना गया है—

(i) क्षेत्र सम्बन्ध। दो ग्रह एक-दूसरे की राशि में स्थित हों। जैसे मेष में सूर्य व सिंह में मंगल।

(ii) दृष्टि सम्बन्ध। दो ग्रह एक-दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखते हों। यथा सिंह में बृहस्पति व कुम्भ में शुक्र। अथवा कोई भी परस्पर सप्तमस्थ ग्रह।

(iii) स्थान स्थित दृष्टि सम्बन्ध। अर्थात् जिसकी राशि में ग्रह स्थित हो, उस राशि का स्वामी उक्त ग्रह को देखे। जैसे धनु में स्थित किसी ग्रह को मेष या सिंह में स्थित बृहस्पति देखे।

(iv) सहावस्थान। दो ग्रह एक ही राशि में स्थित हों।

इन चारों सम्बन्धों में उत्तरोत्तर निर्बलता है। अर्थात् क्षेत्र सम्बन्ध सबसे बलवान् होता है। अगले सम्बन्ध क्रमशः पूर्वापेक्षया कम बलवान् होते हैं।

लेकिन फलदीपिका में मन्त्रेश्वर ने पांच प्रकार का सम्बन्ध माना है। वहां पाराशरोक्त स्थान स्थित दृष्टि सम्बन्ध नहीं माना गया है। शेष तीन पाराशरीय सम्बन्धों में परस्पर केन्द्र स्थिति व परस्पर त्रिकोण स्थिति ये दो सम्बन्ध मानकर पंच प्रकारक सम्बन्ध माना है।

केन्द्रेश व त्रिकोणेश का सम्बन्ध राजयोगकारक बताया गया है। इसके विस्तृत अध्ययन के लिए हमारी **लघुपाराशरी विद्याधरी** का अध्ययन अपेक्षित है।

भावेशों का क्षेत्र सम्बन्ध :

द्रव्येऽङ्गपेऽङ्गे धनपे धनाढ्यो
भोगी बली पुण्यकरः स्वमत्याः।
आचारवित्सोदरपेऽङ्गमाप्ते
शौर्य्येऽङ्गपे क्षीणबलो नृपार्च्यः ॥३५॥
पक्षेण मातुः सहितः सुबन्धुः
कल्याणकृत्स्वीयकुलोद्भावानाम्।
कल्पे जलेशे जलगेऽङ्गपाले
भूपालकार्ये सरलोपलब्धिः ॥३६॥
तातस्य शिष्ट्या सहितः क्षमावान्
स्वकीयपक्षो गुरुरुत्तमानाम्।

मतेर्विभौ मूर्त्तिगते धनेशे
मतौ मनस्वी निजवंशबुद्धः ॥३७॥
ज्ञानी च विद्याभरणश्च
मानासक्तः प्रजातः प्रथमेश्यरातौ ।
कायेऽरिपे द्रोहयुतः सवित्तः
संग्रह्यरुक् स्याद्बलवाञ्छरीरे ॥३८॥

द्रव्य इति । पक्षेणेति । तातस्येति । ज्ञानीति च । अङ्कपे=लग्नेशे, द्रव्ये=द्वितीये, धनपे=द्वितीयेशे, अङ्के=लग्ने सति तदा जातः, धनाढ्यः=धनी, भोगी=भोगवान्, बली, पुण्यकर्त्ता, स्वमत्याः=निजबुद्ध्या, आचारवित्=आचारवेत्ता च स्यात् ।

सोदरप इति । सोदरपे=तृतीयेशे, अङ्कमाप्ते=लग्नंगते, अङ्कपे=लग्नेशे, शौर्य्ये=तृतीये सति तदा जातः, क्षीणबलः=अल्पवीर्यः, नृपार्च्यः=राजमान्यः मातुः=जनन्याः पक्षेण सहितः, सुबन्धुः=प्रशस्तबन्धुमात्, स्वीयकुलोद्भवानां=निजवंशजानां, कल्याणकृत्=सुखप्रदः स्यादिति शेषः ।

कल्प इति । जलेशे=चतुर्थेशे, कल्पे=लग्ने, अङ्कपाले=लग्नेशे, जलगे=चतुर्थगते, सति तदा जातः, भूपालकार्ये=राज्ञः कार्ये, सरलः=ऋजुः, उपलब्धिः=बुद्धिः, तातस्य=पितुः, शिष्ट्या=आज्ञया युक्तः, क्षमावान्, स्वकीयपक्षः=निजपक्षे स्थितः, उत्तमानां=सज्जनानां, गुरुः=आचार्य्यश्च स्यादिति शेषः ।

मतेरिति । मतेर्विभौ=पञ्चमेशे, मूर्तिगते=लग्नगते, धनेशे=लग्नेशे, मतौ=पञ्चमे सति तदा जातः, मनस्वी=प्रशस्तमनाः, निजवंशबुद्धः=स्वीयवंशेविख्यातः, ज्ञानी सदसद्वित्वस्तुतः, विद्यैवाभरणं यस्य स तथा । मानासक्तः=माने=अभिमाने सक्तः स्यादिति शेषः ।

प्रथमेशीति । प्रथमेशि=लग्नेशे, अरातौ=षष्ठे, अरिपे=षष्ठेशे, काये=लग्ने सति तदा जातः, द्रोहयुतः=अनिष्टचिन्तकः संग्रही=संग्रहपरः, अतः सवित्तः=द्रव्यवान्, अरुग्=रोगवर्जितः, अतएव शरीरे=देहे बलवान् स्यात् ।

यदि लग्नेश द्वितीय में व द्वितीयेश लग्न में हो तो व्यक्ति धनी, भोगी, बलवान्, पुण्य विचारवान् एवं आचारवेत्ता होता है ।

यदि लग्नेश व तृतीयेश का उक्त प्रकार से क्षेत्र सम्बन्ध हो तो मनुष्य कम बली, राजा द्वारा सम्मान पाने वाला, मातृपक्ष से युक्त, उत्तम बान्धवों वाला एवं अपने कुटुम्ब या वंश्यों को सुख देने वाला होता है ।

यदि लग्नेश व चतुर्थेश का स्थान सम्बन्ध हो तो राजकार्य में सरल वुद्धि अर्थात् छल-कपट न करने वाला, पिता की आज्ञा मानने वाला, क्षमावान्, समर्थकों से युक्त एवं सज्जनों का अनुकरणीय या मान्य होता है।

यदि लग्नेश व पंचमेश का उक्त क्षेत्र सम्बन्ध हो तो प्रशस्त मन वाला, कुल में विख्यात, ज्ञानी, विद्यावान् एवं अभिमानी होता है।

यदि लग्नेश व षष्ठेश का क्षेत्र सम्बन्ध बनता हो तो अनिष्ट चाहने वाला, संग्रह वृत्ति से धनवान्, नीरोग एवं बलवान् होता है।

विशेष व्युत्पत्यर्थ यहां एक कुण्डली प्रस्तुत की जा रही है। ये महानुभाव बड़े अभिमानी, अपनी बिरादरी में प्रतिष्ठित एवं ऊंची श्रेणी के विद्वान् थे।

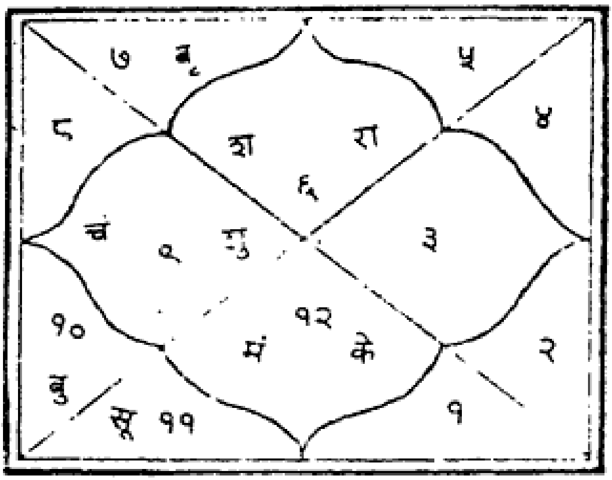

प्रस्तुत कुण्डली में पंचमेश शनि लग्न में है एवं लग्नेश बुध पंचम में है। अतः विद्या, ज्ञान एवं अभिमान जैसा फल ऊपर बताए अनुसार घटित हो रहा है। लेकिन शनि षष्ठेश भी है। अतः ये संग्रही एवं महाभिमानी होने के कारण स्वयं को श्रेष्ठतम मानने वाले भी थे।

मारेऽङ्गेशे मारपे मूर्त्तियाते
योषालोलस्तातपादानुरागी ।
जातो जन्तुः श्यालकस्यानुजीवी
कालेशेऽङ्गे कालगे कल्पपाले ॥३९॥

द्यूते बुद्धिश्चौर्य्यसक्तश्च शूरो
लोकेशाद्वा लोकतः कालमेति ।
गात्राधीशे धर्म्मगे धर्म्मपेऽङ्गे
धर्म्मासक्तो भूपमान्यो विदेशी ॥४०॥

मार इति । द्यूत इति । रव इति । स्यदिति च । अङ्गेशे=लग्नेशे, मारे=सप्तमे, मारपे=सप्तमेशे, मूर्त्तियाते=लग्नगते सति, तदा जातो, जन्तुः=प्राणी, योषालोलः=स्त्रीविषये चञ्चलमनाः, तातपादानुरागी=पितृभक्तः, श्यालकस्य=भार्याया भ्रातुः, अनुजीवी=आश्रितः स्यादिति शेषः ।

कालेश इति । कालेशे=अष्टमेशे, अङ्गे=लग्ने, लग्नेशे=तनुनाथे, कालगे=अष्टमगते सति, तदा जातः द्यूते बुद्धिरक्षवती व्यवहारे निपुणः, चौर्य्यसक्तः चौर्य्यकार्य्यासक्तमनाः, शूरः=विक्रमवान् 'शूरो वीरश्च विक्रान्तः' इति कोशात् । लोकेशात्=राज्ञः, लोकतः=जनतः 'लोकस्तु भुवने जने । इति कोशात् । कालं=यमं मृत्युमिति यावत् । एति=प्राप्नोति ।

गात्रेति । गात्राधीशे=लग्नेशे, धर्म्मगे=नवमगते, धर्म्मपे नवमेशे, अङ्गे=लग्ने सति, तदा जातः धर्म्मासक्तः=धर्म्मेनिरतः भूपमान्यः=राज्ञो मान्यः, राजसत्कार भाजन इत्यर्थः । विदेशी=परदेशवासी च स्यादिति शेषः ।

यदि सप्तमेश व लग्नेश का इसी प्रकार क्षेत्र सम्बन्ध हो तो व्यक्ति स्त्रियों के विषय में चंचल, पिता की सेवा करने वाला एवं पत्नी के भ्राता का सेवक होता है ।

यदि अष्टमेश एवं लग्नेश का इस प्रकार क्षेत्र सम्बन्ध बने तो व्यक्ति जुआ खेलने वाला, चोरी प्रिय, राजदण्ड या जनता द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है ।

यदि लग्नेश व नवमेश का क्षेत्र सम्बन्ध कुण्डली में बनता हो तो व्यक्ति धर्म कार्य में सदैव तत्पर, राजा से सम्मान पाने वाला, परदेश में निवास करने वाला होता है ।

रवे कल्पेशेऽङ्गे खपे काश्यपीशो
लाभे रूपे स्यात्प्रसिद्धोऽर्थनाथः ।
लाभेशेऽङ्गे लाभगे लग्नपाले
भूपो दीर्घायुः शुभैनान्विते सन् ॥४१॥

स्यात्सत्कर्माऽथो अपाये पुरेशे-
ऽपायेशेऽङ्गेऽनूनकारिर्धियोनः ।
क्षुद्रोऽतीव द्रव्यनाशी विलोलो-
ऽङ्गेशे साच्छे पूजितः पार्थिवेन्द्रैः ॥४२॥

रव इति। कल्पेशे = लग्नेशे, रवे = दशमे, खपे = दशमेशे, अङ्गे = लग्ने सति, तदा जातः, काश्यपीशः = पृथ्वीपालः, लाभे = आये, रूपे = सौन्दर्य्ये 'रूपं स्वभावे सौन्दर्य्ये नाणके पशुशब्दयोः। ग्रन्थावृत्तौ नाटकादावाकारश्लेपयोरपि' इति विश्वः। प्रसिद्धः = विख्यातः 'प्रसिद्धौ ख्यातभूषितौ' इत्यभिधानात्। अर्थनाथः = द्रव्यस्वामी च स्यात्।

लाभेश इति। लाभेशे = एकादशेशे, अङ्गे = लग्ने, लग्नपाले = तनुनाथे, लाभगे = एकादशगते सति, तदा जातः, भूपः = पृथ्वीस्वामी, दीर्घायुः = चिरायुः, शुभेन = शुभग्रहेण, अन्विते = सहिते लग्नेशे लाभेशे च तदा सन् = पण्डितः, सत्कर्मा च स्यात्।

अथो इति। अथो आनन्तर्य्यार्थे। पुरेशे = लग्नेशे, अपाये = द्वादशे, अपायेशे = द्वादशे, अङ्गे = लग्ने तदा जातः, अनूनकारिः = अनूनकानां सर्वेषां लोकानां, अरिः = शत्रुः, अनूनकाः सर्वे अरयः शत्रवो यस्येति वा यतो धिया बुद्ध्या ऊनो रहितः, अतीवक्षुद्रः = अतीव कृपणः, अतश्च द्रव्यनाशी, विलोलः = निर्विचारी शीघ्रकारी च स्यात्।

साच्छे = शुक्रसहिते, अङ्गेशे = लग्नेशे त्रिकव्यतिरिक्तभावग इति शेषः। तत्र जातः, पार्थिवेन्द्रैः = राजभिः पूजितः = मान्यः स्यादिति शेषः।

इत्येवं जातकस्य जनिततनोः कर्मभं पितृग्रहं तदेवोदयं प्रकल्प्य तदग्रिमान् क्रमेण वित्तप्रभृतिभावान् परिकल्प्य तत्रोदयभावेशयो र्व्यत्ययस्थितिं निरीक्ष्य 'द्रव्येऽङ्गपे अङ्गे धनपे धनाढ्य इत्यादिना कथितोदाहृत्या जनकादीनामर्थवत्त्वादिफलं जातकवेदिभि र्वाच्यमिति।

यदि लग्नेश व दशमेश का क्षेत्र सम्बन्ध हो तो मनुष्य भूमि का स्वामी, विख्यात, लाभ पाने वाला, सुन्दर रूप वाला एवं धनी होता है।

यदि लाभेश व लग्नेश का क्षेत्र सम्बन्ध बने तो मनुष्य भूमि वाला एवं धनी एवं दीर्घायु होता है।

यदि लग्नेश या लाभेश शुभग्रह से युक्त हो तो सत्कार्य करने वाला एवं विद्वान् भी होता है।

यदि व्ययेश एवं लग्नेश का क्षेत्र सम्बन्ध बनता हो तो सब लोगों से वैर रखने वाला, बुद्धिहीन, बहुत कंजूस, धननाशक एवं अविचारी होता है।

यदि शुक्र व लग्नेश ६, ८, १२ भावों को छोड़कर अन्यत्र कहीं एकत्र हों तो व्यक्ति राज सम्मानित होता है।

सप्तमेश एवं लग्नेश का सम्बन्ध स्व० श्रीमती इन्दिरा गांधी की कुण्डली में द्रष्टव्य है। इसी प्रकार लग्न से अतिरिक्त भावेशों के सम्बन्ध से भी फल विचार करना चाहिए। शुभ भावों का शुभ भावों या भावेशों से सम्बन्ध सदैव शुभ फल देगा। अशुभ भावेशत्व मिश्रित होने पर मिश्रित फल ही समझना चाहिए।

लग्नेश एवं द्वितीयेश का क्षेत्र सम्बन्ध हमारी **लघुपाराशरी विद्याधरी** के पृ० ७८ पर उद्धृत श्री करपात्री जी महाराज की कुण्डली में देखिए। लेकिन इस प्रकार सम्बन्धकर्त्ता ग्रह यदि नीचास्तंगत या शत्रु क्षेत्री हों तो किस प्रकार फल नाश कर देते हैं। इसका उदाहरण पीछे व्यय भावाध्याय श्लोक ४ की व्याख्या में उद्धृत कुण्डली में देखिए। वहां लग्नेश द्वितीय में अस्त व पाप युक्त एवं नीच ग्रह से युक्त है तथा द्वितीयेश लग्न में स्वयं नीचस्थ है। ये भोग व धन से कोसों दूर हैं।

लग्नेश व पंचमेश का योग बड़े सुन्दर ढंग से कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की कुण्डली (देखें लघुपाराशरी, पृ० ६६) में विचार कर फल की सटीकता का अनुभव करें।

फल परिपाक का विचार :

एतेषां योगकर्त्तॄणां मध्ये योऽतिबली ग्रहः।
दशायां तस्य भुक्तौ वा फलावाप्ति वदेत्कृती॥४३॥

एतेषामिति। एतेषां योगकर्त्तॄणां = योगकारकग्रहाणां मध्ये यो ग्रहोऽतिबली षड्बलैः स्थानादिभिः, अधिक बलवान्, तस्य बलिनो ग्रहस्य, दशायां दाये वा अथवा भुक्तौ = अन्तर्दशायां, अपहार इति यावत्। कृती = पण्डितः, फलावाप्ति = शुभाशुभफलानां प्राप्ति, वदेत् = कथयेत्।

पीछे जितने भी शुभ या अशुभ योग बताए गए हैं, उनमें योगकारक ग्रहों में से जो अधिक बलवान् ग्रह हो, उसी की दशा व

अन्तर्दशा में या उनके सम्बन्धी ग्रहों की दशान्तर्दशा में शुभ या अशुभ फल यथावसर मिलेगा। ऐसा विद्वन् दैवज्ञ को कहना चाहिए।

फल प्राप्ति के समय ज्ञान के विषय में हम पीछे भावसारांशाध्याय श्लोक ६ की व्याख्या में बता चुके हैं। दशा के फल निर्णय के विषय में लघुपाराशरी के दशाफल नियमों को सदैव हृदयस्थ रखना चाहिए।

सूर्य-चन्द्र का भावाश्रित फल :

मार्त्तण्डः शुभकृद्यदोपचयगः कोशत्रिकोणस्थितः
सामान्योऽशुभकृच्चतुष्टयगतौ रन्ध्रावसानाश्रितः।
दुष्टोऽतीव ततः शशी शुभकरः कोणाम्बुखार्थायगः
स्यान्मध्यो महिलालयानुजगतोऽशस्तस्तदन्योपगः ॥४४॥

मार्त्तण्ड इति। मार्त्तण्डः ऋषिः, यदा, उपचयगः=तृतीयषष्ठदशमैकादशानामन्यतमगतः, तदा शुभकृत्=शुभफलकर्त्ता, यदि स कोशत्रिकोणस्थितः=द्वितीयपञ्चमनवमस्थितः, तदा सामान्य=मध्यमफलकर्त्ता, यदि स चतुष्टयगतः=केन्द्रगतः, तदा, अशुभकृत्=अशुभफलकर्त्ता, यदि स रन्ध्रावसानाश्रितः=अष्टमद्वादश गतः, तदा अतीव दुष्टः=अत्यन्ताशुभफलकारकः स्यादिति शेषः।

तथा च पद्यपञ्चाशिकायाम्

"तुङ्गोऽजस्तौलिनीचो गहनचरपतिः पद्मिनीप्राणपालः
शत्रू दैत्येज्यमन्दौ शशधरतनयो यस्य सामान्यभावः।
शेषा मित्राणि खेटा उपचयशुभदो मध्यमः कोशकोणे
केन्द्रे दुष्टोऽतिदुष्टो व्ययगजभवने कीर्त्तितः कोविदोच्चैः" इति॥

तत इति। ततस्तदनन्तरं, शशी=चन्द्रः, कोणाम्बुखार्थगः=त्रिकोण-चतुर्थ-दशम-द्वितीय-लाभगतः, यदि तदा, शुभकरः=शुभफलप्रदः। यदि स, तदन्योपगः प्रोक्तेतरस्थानगतः, अर्थाल्लग्नषष्ठाष्टमव्ययगतः, तदा, अशस्तः=अशुभफलप्रदः स्यादिति शेषः।

तथा च पद्यपञ्चाशिकायाम्

"कर्काधीशो वृषोच्चो जलनिधितनयो वृश्चिको यस्य नीचो
मित्रे चण्डांशुसौम्यौ तदनु परखगा यस्य सामान्यभावाः।
पाताले कोशकोणे जनकभवगृहे सर्वसिद्धार्थकारी
सामान्यो भ्रातृकामे तदनु परगृहे चन्द्रमा न प्रशस्तः" इति॥

सभी उपचय भावों (३, ६, १०, ११) में सूर्य शुभ फल देता है। द्वितीय, पंचम व नवम में मध्यम फलदायक होता है।

दशमरहित केन्द्र (१, ४, ७) में सूर्य अशुभ फल देता है और अष्टम व द्वादश में अत्यन्त अनिष्ट फल देता है।

चन्द्रमा द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, नवम, दशम, एकादश में शुभ फलदायक होता है।

तृतीय व सप्तम भाव में चन्द्रमा मध्यम अर्थात् मिश्रित फल देता है। शेष स्थानों में (१, ६, ८, १२) अशुभ फल देता है।

मंगल, बुध, गुरु का भाव फल :

आरो राज्यभवारिसोदरगतः शस्तोऽन्यगेहेऽशुभ-
श्चान्द्रिः कोणचतुष्टयायधनगः स्याच्छोभनो नो शुभः।
अन्यत्रोपगतो गुरुः सहजगो मध्योऽतिसन्कण्टक-
पोष्यप्राप्तिपथात्मजालयगतः कैवल्यदः कालगः॥४५॥

आर इति। आरः=भौमः, राज्यभवारिसोदरगतः=दशमैकादशषष्ठतृतीयगतः, चेत्तदा शस्तः=शुभफलप्रदः। अन्यगेहे=उक्तेतरस्थाने, अशुभः=अनिष्टफल-प्रदः, स्यादिति शेषः।

चान्द्रिरिति। चान्द्रिः=बुधः, कोणचतुष्टायायधनगः=त्रिकोण-केन्द्र-लाभ-धनगतः, चेत्तदा, शोभनः=शुभफलप्रदः। अन्यत्रोपगतः=प्रोक्तेतरस्थानगतः, यदि तदा, नो शुभः=शुभफलकर्ता नो स्यात्।

गुरुरिति। गुरुः=जीवः 'गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठे गुरौ पितरि दुर्भरे' 'गुरुर्महत्याङ्गि-रसे पित्रादौ धर्मदेशके' इति शाश्वतहैमौ। सहजगः=तृतीयगतश्चेत्तदा, मध्यमः=सामान्यफलकर्ता। कण्टकपोष्यप्राप्तिपथात्मजालयगतः=केन्द्रे-द्वितीयै-कादश-नवम-पञ्चमगतः, चेत्तदा, अतिसन्=अत्यन्तशुभफलदायकः। यदि स कालगः=अष्टमगतः, तदा कैवल्यदः=मोक्षप्रदः स्यादिति शेषः। 'अन्यत्रोपगतो नो शुभ' इति वचनस्य देहलीदीपकन्यायेनोभयत्रान्येति।

तृतीय, षष्ठ, दशम एवं एकादश भावों में मंगल सदैव शुभ फल देता है।

शेष अनुपचय स्थानों में मंगल अशुभ फलप्रद होगा।

बुध लग्न, चतुर्थ, पंचम, सप्तम, नवम, दशम एवं एकादश में शुभ फल करता है।

शेष केन्द्र, त्रिकोण व लाभ के अतिरिक्त स्थानों में बुध अशुभ फल करता है।

बृहस्पति केन्द्र, त्रिकोण, एकादश व द्वितीय में अत्यन्त शुभ फल देता है।

तृतीय स्थान में मध्यम फल एवं अष्टम स्थान में बृहस्पति मोक्षदायक होता है।

इनके अतिरिक्त स्थानों में बृहस्पति अशुभ फलदायक होता है।

शुक्रादि ग्रहों का भाव फल :

कामत्रित्रिकगोऽशुभोऽन्यभवने शस्त सितः सन्यमो
द्वेष्यप्राप्तिसहोदरालयगतोऽन्यागारयातो न सन्।
स्वर्भाणुस्त्रिभवारिगः परिहरेद्दोषान् समग्रान्न
सन्नन्यस्मिन्भवने कबन्धखचरो भावस्य कर्त्ताऽगुवत् ॥४६॥

कामेति। सितः = शुक्रः, कामत्रित्रिकगतः = सप्तम-तृतीय-दुष्टस्थानगतः, चेत्तदा, अशुभः = नेष्टफलकारकः, अन्यभवने = प्रोक्तेतरस्थाने शस्तः = शुभफलदायकः स्यादिति शेषः।

तथा च पद्यपञ्चाशिकायाम्

"मीनोच्चो नीचकन्यस्तुलवृषभपतिर्वैरिणौ भानुचन्द्रौ
सामान्यौ पूज्यभौमौ तदनु च सुहृदौ सौम्यमन्दौ ग्रहौ द्वौ।
सम्प्राप्तो लाभगेहे तनुसुखजनके कोशकोणे प्रशस्तो
भावेऽन्यस्मिन्नशस्तो गणकमुनवरैः प्रोक्तमित्थं समस्तैः" इति॥

सन्निति। यमः = शनिः, द्वेष्यप्राप्तिसहोदरालयगतः = षष्ठ-लाभ-तृतीयगतः, चेत्तदा, सन् = शुभफलप्रदः। अन्यागारयातः = प्रोक्तेतरस्थानगतः, चेत्तदा, न सन् = शुभफलप्रदो न स्यादिति शेषः।

तथा च पद्यपञ्चाशिकायाम्

"तौलोच्चो मेषनीचोहरिणघटपतिः पद्मिनीपालपुत्रो
दुष्टा भान्विन्दुभौमा बुधसिततमसो यस्य मित्राणि खेटाः।
सामान्यो देवपूज्यो रसशिवसहजे अर्कजश्चातिशस्तो
भावेऽन्यस्मिन्न शस्तो मुनिगणसहितैर्भाषितः पूर्वधीरैः" इति।

स्वर्भाणुरिति। स्वर्भाणुः = राहुः त्रिभवारिगः = तृतीयै-कादश-षष्ठगतः, चेत्तदा, समग्रान् = सर्वान्, दोषान् = पापानि, कष्टफलनीत्यर्थः। परिहरेद्विनाशयति। अन्यस्मिन्भवने = प्रोक्तेतरस्थाने, न सन् = शुभफलप्रदो न स्यादिति शेषः।

तथा च पद्यपञ्चाशिकायाम्

"कामोच्चः कामिनीशः प्रणतशरधरः सिंहिकागर्भभूतो
दुष्टा सूर्येन्दुभौमा बुधसितशनयो यस्य मित्राणि खेटाः।
सामान्यो देवमंत्री सहजरसशिवे सर्वदोषप्रहर्त्ता
शेषे भावे न शस्तः कलियुगफलदः कालरुद्रा वदन्ति" इति ॥

कबन्धखचर इति। कबन्धखचरः=केतुः 'कबन्धं सलिले प्रोक्तमपमूर्ध कलेवरे' इति विश्वः। अगुवत्=राहुसमानः, भावस्य=तन्वादेः फलस्य, कर्त्ता=कारकः स्यादिति शेषः।

शुक्र तृतीय, सप्तम एवं षष्ठ, अष्टम, द्वादश में अशुभ फल करता है।

शेष सप्तमरहित केन्द्र, त्रिकोण एवं एकादश में शुक्र शुभ फलदायक होता है।

शनि तृतीय, षष्ठ व एकादश में शुभ फल एवं शेष स्थानों में सर्वत्र अशुभ फल करता है।

राहु व केतु भी तृतीय, षष्ठ, एकादश में शुभ फल एवं केन्द्र, त्रिकोण एवं द्वितीय द्वादश में अशुभ फल करते हैं।

फलादेश के कतिपय सूत्र :

ग्रन्थकार ने यह भावाश्रित फल संक्षिप्त एवं परस्पर आलोचनात्मक दृष्टि न रखकर कहा है। क्रमशः विचार करें। शनि को ३, ६, ११ भावों को छोड़कर अन्यत्र अशुभ कहा है। लेकिन शनि अष्टम में आयुवर्धक माना गया है। भावाश्रित फल वृद्धयवन ने बहुत सुन्दर एवं सटीक बताया है। पाठकों को उसे अवश्य मस्तिष्क में रखना चाहिए। सभी ग्रहों की स्थिति की गवेषणा करके तब सारांश रूप में साधक बाधक परिणामों की तुलना करते हुए फलादेश कहना चाहिए। अभ्यास एवं मन की निर्मलता से यह शनैः शनैः सम्भव हो जाता है। कोई भी ग्रह तभी शुभ या अशुभ फल देगा जब यह निर्णय हो जाए कि विचारणीय ग्रह कैसे भाव का अधिपति है। शुभ भावेश व अशुभ भावेश का निर्णय कर फल निर्णय करने की प्रणाली पीछे बताई गई है। उसे मस्तिष्क में बिठा लेना चाहिए। कहा गया है—

भवनाधिपैः समस्तं जातकविहितं विचिन्तयेन्मतिमान् ।
एभिर्विना न गन्तुं पदमपि शक्यं महाशास्त्रे ।।
(सारावली)

अतः भावेश निर्णय के बिना इस महाशास्त्र में एक भी कदम आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। कुछ अन्य आवश्यक संकेत यहां दिए जा रहे हैं। ये बातें आपको फलादेश में बहुत सहायक होंगी।

'यमः पतंगेन यमेन भूजनि
रार्योऽसृजा वाक्पतिना हिमद्युतिः ।
कविः कलेशेन सितेन सोमजः
सुधाकरः सोमसुतेन वर्धते ।।'
(मुकुन्द)

'अर्थात् सूर्य के साथ रहने से शनि का बल बढ़ता है। इसी प्रकार शनि से मंगल का बल, मंगल से बृहस्पति का बल, बृहस्पति से चन्द्रमा का, चन्द्रमा से शुक्र का, शुक्र से बुध का और बुध से चन्द्रमा का बल साथ रहने से बढ़ता है।'

सामान्यतः बलवान् ग्रह की पहचान इस प्रकार करनी चाहिए—

(i) स्वोच्च, स्वत्रिकोण राशि, निज राशि, मित्र राशि में गया ग्रह बली होता है।
(ii) इन्हीं नवांशों में स्थित ग्रह बलवान् होता है।
(iii) अधिमित्र की राशि या द्रेष्काण में स्थित ग्रह।
(iv) चन्द्रमा के साथ रहने वाला ग्रह। मित्र ग्रहों से, शुभ ग्रहों से दृष्ट ग्रह बलवान् होता है।
(v) शुभ भावेश हो या शुभग्रहों के मध्य में हो, शुभ भावों में हो।
(vi) युवावस्था वाला, उच्चाभिलाषी, जाग्रत, शुभ वर्गगत ग्रह बलवान् होता है।
(vii) अधिक रश्मियों वाला, शुभ भावेश युक्त, षड्बली एवं सूर्य से दूर स्थित होने वाला ग्रह बलवान् होता है।
(viii) वर्गोत्तमी, शुभ षष्ट्यंशगत, पारिजातादि वर्गगत ग्रह बली होता है।

(ix) उदित ग्रह, पापी ग्रह निद्रा या शयनावस्था में वली होता है।

इसके विपरीत अवरोही, (उच्चच्युत) अस्त, शत्रु क्षेत्री, नीच, शत्रु वर्ग में, नीचारि नवांश में गया हुआ, पापग्रहों के मध्य में स्थित, पापयुक्त, पापदृष्ट, अशुभ भावेश से युक्त, क्रूर षष्ट्यंश में गत, राशि के अन्तिम अंश में स्थित, वृद्ध या मृतावस्था में स्थित, अशुभ भावेश से दृष्ट, पराजित, रश्मिरहित, रूक्ष कान्ति वाला, नृपितावस्था वाला, कम वली (३° से कम), क्षोभित लज्जितावस्था में, बाईसवें द्रेष्काण के स्वामी, चौसठवें नवांश के स्वामी एवं गुलिक राशीश से दृष्ट या युक्त, नीचाभिलाषी इत्यादि ग्रह निर्बल एवं फल देने में असमर्थ होता है।

सात छिद्र ग्रह होते हैं। इनसे दृष्ट युक्त या प्रभावित ग्रह भी अपना फल कम देते हैं। सात छिद्र ग्रह वैद्यनाथ ने इस प्रकार बताए हैं—

अष्टमेश, अष्टमेश से युक्त ग्रह, अष्टम द्रष्टा ग्रह, खर द्रेष्काण (बाईसवां द्रेष्काण) का स्वामी, अष्टमगत ग्रह, चौसठवें नवांश का स्वामी तथा अष्टमेश का अति शत्रु ग्रह ये सात छिद्र ग्रह हैं।

फलादेश को धारदार बनाने के लिए पाठकों को लघुपाराशरी, भावमंजरी, उत्तरकालामृत, भावार्थरत्नाकर, सारावली, वृहज्जातक क्रमशः पढ़ना एवं मनन करना चाहिए। ग्रन्थों के अध्ययन का यही क्रम रखें तो उत्तम होगा।

ग्रन्थकारकृत उपसंहार :

शाकेऽनलाङ्गोरगभूप्रमाणे जीवान्वितायां नभसो नवम्याम्।
सीतात्रिमार्गासरिदन्तराले देवप्रयागे पुरि खण्डवासी॥४७॥
वडेथवालाभिधजातिजातो मुकुन्दनामाऽरचयत्सुखाय।
विमत्सराणां गणकोत्तमानां मनोहरं जातकभूषणाख्यम्॥४८॥

शाक इति। अनलाङ्गोरगभूप्रमाणे = त्रिषष्ठ्युत्तराष्टदशशततुल्ये, शाके = शकवर्षे शालिवाहनभूपतिराज्यरोहणकालादतीतवर्षे इत्यर्थः। जीवान्वितायां = गुरुवर संयुतायां, नभसः = श्रावणस्य, नवम्यां तिथौ, गङ्गालकनन्दासरिदन्तराले = भागीरथ्यलकनन्दासरितोर्मध्ये या देवप्रयागाभिधा पूस्तस्यां खण्डवासी = ढांगूगढ- समीपवर्त्तिखण्डग्रामनिवासी, वडेथवालाभिधजातिजातः = वडेथवालाह्वयज्ञातौ

यो जातः = समुत्पन्नः मुकुन्द स विमत्सराणां = गतमत्सराणां परसम्पत्यसहनशीलरहितानामित्यर्थः । गणकोत्तमानां = गणकेषु ये उत्तमा: श्रेष्ठा: सज्जनास्तेषां सुखाय = मनोरञ्जनाय, मनोहरं = सुन्दरं, जातकभूषणाख्यं जातकग्रन्थं, अरचयत् = अकारोदिति शम् ।

वेदाङ्गसिद्धीन्दुमिते शकेऽब्दे सिते तपस्ये दशमीकुजाह्ने ।
टीका कृता जातकभूषणस्य सद्बालतोषाय मुकुन्दनाम्ना ॥१॥

शक संवत् १८६३, श्रावण मास में नवमी गुरुवार के दिन, भागीरथी व अलकनन्दा नदियों के संगम पर स्थित गढ़वाल प्रदेश में देवप्रयाग नामक स्थान के निकट खण्ड ग्राम निवासी, बडेथवाल वंश में उत्पन्न, विप्रवर पं० रघुवरदत्त के पुत्र पं० मुकुन्दराम ने विद्वान् दैवज्ञों एवं निर्मत्सर, ईर्ष्यारहित विज्ञजनों की सुविधा के लिए एवं उनके मन को प्रसन्न करने के लिए प्रस्तुत 'जातकभूषण' नामक ग्रन्थ की रचना की।

प्रस्तुत ग्रन्थ की संस्कृत टीका (पीयूष धारा) की रचना स्वयं मुकुन्द दैवज्ञ ने १८६४ शक संवत् में फाल्गुन मास शुक्ल पक्ष दशमी मंगलवार को कोमलमति पाठकों के बोधसम्पादनार्थ लिखकर समाप्त की।

ममेह क्वापि स्खलनं, सद्भिर्दृष्टं भवेद् वाप्यल्पकृतम् ।
नूनं परिहरणीयं, न हि सर्वः सर्वं विजानीते ॥१॥
करेन्द्वंकंकेऽब्दे (१९१२) शक इति शुचौ शुक्लशकले,
द्वितीयायां पंकेरुहपतिदिने देवकृपया ।
कृतेन्द्रप्रस्थे या प्रणवरचना साधुवचना,
प्रणवव्याख्येयं विहरतु सदा प्राज्ञहृदये ॥२॥
जातकभूषणसंज्ञे, मिश्रोपनामा सुरेशचन्द्रोऽयम् ।
प्रणवरचनां टीका मगदच्छ्रीशंकरकृपया ॥३॥

॥ इति श्रीमुकुन्ददैवज्ञकृतौ पं० सुरेशमिश्रकृतायां
प्रणवरचनायांप्रकीर्णाध्याय: ॥

ज्योतिष का अनुपम साहित्य
(सरल हिन्दी व्याख्या सहित)

➲ **बृहत् पाराशर होराशास्त्र** खण्ड 2 अध्याय 101 पृष्ठ संख्या 944 ज्योतिष पितामह महर्षि पराशर की कालजयी रचना *व्याख्याकार:* ***डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य***	**400/- रुपये**
➲ **बृहज्जातकम्** महामति आचार्य वराहमिहिर विरचित पृष्ठ 400 फलित विषय का शिरोमणि ग्रंथ विशिष्ट संस्करण 200/- रु.	**150/-**
➲ **प्रश्न मार्ग** मलयालम भाषा से अनूदित खण्ड 2 पृष्ठ 590 दक्षिण भारत की श्रेष्ठतम धरोहर	**300/-**
➲ **वृद्ध यवन जातकम्** आचार्य मीनराज विरचित खण्ड 2 पृष्ठ 1000 वर्तमान मान्य फलित ग्रंथों की पावन गंगोत्री	**500/-**
➲ **ज्योतिष सर्वस्व** *लेखक:* ***डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र,*** ज्योतिषाचार्य पृष्ठ 540 जातक, ताजिक, प्रश्न तथा मुहूर्त चारों विभाग *विशेषता:* इस कोटि का ग्रंथ आज तक नहीं छपा	**150/-**
➲ **शरीर लक्षण एवं चेष्टाएँ** ***डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य***	**150/-**
➲ **पूर्व कालामृत** कवि कालिदास सर्वप्रथम, तेलुगु भाषा की सहायता से	**100/-**
➲ **उत्तर कालामृत** कवि कालिदास	**100/-**
➲ **हस्त रेखाओं का गहन अध्ययन** सजिल्द दोनों भाग **अमेरिकन विद्वान बेन्हम द्वारा लिखित,** विषय स्पष्ट के लिये चित्र **450**	**125/-**
➲ **अष्टक वर्ग महानिबन्ध** आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय' पृष्ठ 424	**200/-**
➲ **आयु निर्णय** आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय' पृष्ठ 468	**200/-**
➲ **जातक भूषणम्** आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय' पृष्ठ 302	**150/-**
➲ **भाव मंजरी, नष्टजातक, प्रसवचिंतामणि** आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय'	**प्रत्येक 50/-**

विलक्षण प्रतिभा के धनी आचार्य वराहमिहिर की अपूर्व रचनाएँ

बृहत् संहिता	बृहज्जातकम्
विश्व का एकमात्र सम्पूर्ण संहिता ग्रन्थ समस्त ज्योतिष शास्त्र का महासागर जिसका पूरे साहित्य में कोई सानी ग्रंथ नहीं खण्ड 2 अध्याय 101 पृष्ठ संख्या 1024 मूल्य: 600/- रु. डाक व्यय पृथक	फलित ज्योतिष का शिरोमणि ग्रन्थ जिसका अक्षर-अक्षर सत्यता से पूर्ण व्याख्या की विशेषता, विशिष्ट संस्करण पृष्ठ संख्या: 400 मूल्य: 200/- रु. डाक व्यय पृथक

दोनों ग्रन्थों के व्याख्याकार *डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य*

भाषा में सरलता, स्पष्टता एवं ताजगी

आपके संग्रह में दोनों ग्रन्थ अनिवार्य, उपहार में भी दीजिए, दिल जीतिए

डाक द्वारा मंगाने के लिए पत्र लिखें, ज्योतिष ग्रन्थों की सूची अलग से मंगायें

प्रामाणिक व मौलिक रचना

शरीर-लक्षण एवं चेष्टाएँ

(अंग-विद्या Body Language)

लेखक: **डॉ॰ सुरेशचन्द्र मिश्र**

ज्योतिषाचार्य, एम॰ए॰, पी-एच॰ डी॰

प्रस्तुत ग्रंथ शरीर पर विद्यमान लक्षण चिन्ह, रेखाएं, तिल, मस्सा आदि के साथ साथ विभिन्न अंगों की बनावट, रंगत, सौन्दर्य व लावण्य मानवीय भविष्य के बहुत से अनकहे पहलुओं को छूते हैं। जिस प्रकार जन्मकालीन ग्रह स्थिति से भविष्य का निर्धारण होता है उसही प्रकार लक्षण विज्ञान द्वारा भी पूर्ण जानकारी मिलती है विशेषता यह कि आप बिना किसी दूसरे की सहायता के स्वयं भविष्य पढ़ सकते हैं।

ग्रंथ में आप पाएंगे:

शरीर लक्षण व चेष्टाओं का प्रामाणिक विवेचन; शरीर के प्रमुख दस भागों का सरल व सारगर्भित विश्लेषण; धन, स्वास्थ्य, वाहन, सम्पत्ति, अधिकार व राजयोगों का निश्चित निर्णय; जीवन का त्रिकाली विवेचन; लक्षणों से दशा अन्तर्दशा जानना व उनका फलादेश।

- चेष्टाओं के अपने निराले संकेत
- जन्मपत्री का कोई बंधन नहीं
- अपने को पहचानने का अनोखा साधन
- इस विषय पर इतनी ठोस सामग्री के साथ आज तक कोई पुस्तक नहीं लिखी गई ऐसा निःसंकोच कहा जा सकता है
- श्रेष्ठता में ग्रंथ प्रथम पंक्ति का
- जन्मपत्री की सत्यता की परीक्षा

पृष्ठ संख्या: 256 **मूल्य: 150 रुपये** (जिल्द से सज्जित)

✆ 327 88 35 *डाक व्यय:* 20 रुपये अलग

डाक द्वारा भेजने की सुविधा उपलब्ध; पोस्टमैन लेकर आपके द्वार पर।

रंजन पब्लिकेशन्स

16 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002